हिमाचली सांस्कृतिक शब्दावली

संस्कार खंड

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

हिमाचली सांस्कृतिक शब्दावली
संस्कार खंड

संपादक
डॉ. तुलसी रमण

संकलन-शोध-आलेख
डॉ. श्यामा वर्मा
सूनृता गौतम

भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर से प्राप्त वित्तीय सहायता के अंतर्गत प्रकाशित

ISBN : 81–86755–60–8

प्रकाशक : **सचिव**
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी शिमला,
171001 हि. प्र.

प्रथम संस्करण : 2011

मूल्य : ₹ 250.00 सजिल्द
₹ 150.00 पेपरबैक

कम्पोज़िंग : रविन्द्र नाथ

मुद्रक : भारत ऑफसेट वर्क्स
3550, जाटवाड़ा स्ट्रीट, दरयागंज
नई दिल्ली - 110 002

Himachali Saanskritik Shabdawali : SANSKAAR KHAND

Published by : Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture & Languages, Shimla-171001

Edition : 2011

Price : ₹ 250/-

Paperback ₹ 150/-

आमुख

प्रेम कुमार धूमल

मुख्यमन्त्री हिमाचल प्रदेश एवं अध्यक्ष, हिमाचल अकादमी

पूर्व से पश्चिम और आसेतु-हिमाचल भारतवर्ष में अनेक भाषाएँ, बोलियाँ, खान-पान, रहन-सहन की शैलियाँ आज भी चलन में हैं। इन सबको मिलाकर भारतीय सामासिक संस्कृति का स्वरूप सामने आता है। हमारा हिमाचल प्रदेश भी कुछ इसी तरह की विविधता लिये हुए है। शिवालिक की पहाड़ियों से लेकर पश्चिमी हिमालय की पर्वत शृंखलाओं तक, भूगोल का क्रम बदलने के साथ-साथ, यहाँ के मनुष्य जीवन पर पर्यावरण भी अपना प्रभाव छोड़ता है। इस विविधता का दूसरा कारण पर्वतों और नदी-नालों से विभाजित घाटियाँ भी हैं। इसके साथ ही स्वतंत्रता पूर्व की छोटी-बड़ी 31 रियासतों का क्षेत्र होने के कारण, भाषायी और सांस्कृतिक बहुरंग आज तक यहाँ विद्यमान हैं।

चम्बा-पांगी से सिरमौर और कांगड़ा से किन्नौर तक पहाड़ी मनुष्य जीवन के आचार-व्यवहार में विलक्षण भिन्नताएँ पायी जाती हैं। जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत हिमाचल के समाज में प्रचलित संस्कारों से सम्बंधित विभिन्न रीति-रिवाज़, आस्थाएँ और विश्वास, धर्म-कर्म और लोकाचार देखने को मिलते हैं। स्वतंत्रता के बाद अनेक स्तरों पर हो रहे विकास के साथ, जहाँ बहुत कुछ पुरातन लुप्त हो रहा है, वहीं इसमें नया भी काफी जुड़ रहा है। यह बदलाव जहाँ जीवनचर्या में दिखाई देता है, वहीं इसे व्यक्त करनेवाली भाषा में भी निरंतर परिवर्तन लक्षित हो रहे हैं।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी द्वारा 'हिमाचली सांस्कृतिक शब्दावली' के संकलन-प्रकाशन की योजना, पहाड़ों में हो रहे भाषायी एवं सांस्कृतिक संक्रमण के दौर में, पुरातन सांस्कृतिक सम्पदा के संरक्षण की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इससे ज्ञान एवं अनुसंधान की इस सम्पदा को भावी पीढ़ियों के लिए बचाये रखा जा सकेगा। हमारी संस्कृति के आधारक संस्कार ही हैं। इन्हीं के माध्यम से भारतीय संस्कृति समृद्ध होती है। इसीलिए अकादमी द्वारा इस सांस्कृतिक शब्दावली का यह प्रथम 'संस्कार खंड' प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है संस्कृति-निष्ठ समाज के लिए यह उपयोगी सिद्ध होगा।

प्राक्कथन

मनीषा नंदा

प्रधान सचिव (भाषा-संस्कृति) एवं उपसभापति, हिमाचल अकादमी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी की विभिन्न योजनाओं में प्रदेश की सांस्कृतिक शब्दावली का संपादन-प्रकाशन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इस प्रदेश के विभिन्न ज़िलों और क्षेत्रों में आचार-व्यवहार के स्तर पर सुरुचिपूर्ण विविधता है। यहाँ के एक क्षेत्र का व्यक्ति दूसरे इलाके में जाता है तो उसे भी बहुत कुछ नया देखने-सुनने को मिलता है। पहले विवाह आदि सम्बंध सीमित दूरी पर ही होते थे, लेकिन अब दूर के क्षेत्रों में भी रिश्ते जुड़ने लगे हैं। ऐसी स्थितियों में सांस्कृतिक लोकाचार के आदान-प्रदान पर रोचक बातें होती हैं और भाषा-व्यवहार के माध्यम से भी इस पर संवाद चलता रहता है।

प्रदेश के बाहर से आनेवाले पर्यटकों को भी इस प्रदेश के लोकाचार की विविधता सबसे अधिक आकर्षित करती है। हर घाटी में अलग तरह के रहन-सहन और खान-पान के साथ नयी 'नाटी' देखने-सुनने को मिलती है तो दूर-पार के यात्री भी यहाँ के सांस्कृतिक रहस्यों में गहरे उतरने की जिज्ञासा रखते हैं। लेकिन इस बीच ऐसे गूढ़ सांस्कृतिक शब्द भी आते हैं जो स्थानिक बोलियों के हैं और यहाँ के आदिम जीवन से लेकर आज के समय तक का बहुविध लोकाचार संजोये हुए हैं। इसलिए पहाड़ी जीवन के रहस्यों और संस्कार विशेष के तथ्यों की जानकारी के उद्देश्य से इन सांस्कृतिक शब्दों का खुलासा ज़रूरी हो जाता है।

प्रदेश में प्रचलित ऐसे सांस्कृतिक शब्दों पर शोध कर कई खंडों में शब्दावली प्रकाशित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य अकादमी द्वारा आरंभ किया गया है और इस 'हिमाचली सांस्कृतिक शब्दावली' का यह पहला 'संस्कार खंड' है। हिन्दू परम्परा में षोडश संस्कार गिनाये जाते हैं और देशाचार के अनुसार प्रत्येक संस्कार की विधि में भी भिन्नता रहती है। इस खंड में जन्म, विवाह और मृत्यु, इन तीन संस्कारों को प्रमुखता से लिया गया है। इसी क्रम में शब्दावली के कई अन्य खंड भी आगामी वर्षों में प्रकाशित करने की योजना है। आशा है पाठकों तथा शोधार्थियों को अकादमी का यह प्रकाशन पसंद आएगा।

प्रस्तावना

डॉ. तुलसी रमण

सचिव, हिमाचल अकादमी

संस्कार शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृत की कृ धातु + घञ् प्रत्यय से बना है, जिसका मूल अर्थ पूर्ण बनाना, संस्कृत या परिष्कृत करना है। यह शब्द विचार-भाव, मनःशक्ति, कर्म-गुण, शुद्धि और शास्त्र विहित कृत्य आदि का बोधक है। संस्कार से ही संस्कृति है। संस्कृति शब्द आज की हिन्दी में अंग्रेज़ी शब्द 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है। मानव विज्ञान के अनुसार व्यापक अर्थ में 'संस्कृति' समस्त सीखे हुए अथवा सामाजिक परम्परा से प्राप्त व्यवहार का नाम है। इस अर्थ में संस्कृति को सामाजिक प्रथा (कस्टम) का पर्याय भी कहा जाता है। दूसरे अर्थ में संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय है, जो व्यक्ति को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं। इतिहासकारों ने संस्कृति को किसी समुदाय या देश के विशेष कलात्मक और बौद्धिक विकास के रूप में ग्रहण किया है; परन्तु मानव वैज्ञानिक सामान्य व्यवहार-प्रकारों को भी संस्कृति का अंग मानते हैं। संसार की महान् सभ्यताएँ एक तरफ हैं, जबकि आदिवासियों को भी संस्कृतिविहीन नहीं कहा जा सकता। अतः 'सीखे हुए व्यवहार-प्रकारों की समग्रता' या 'ऐतिहासिक विकास में जीवन यापन के विशिष्ट स्वरूप' को किसी मानव समूह की संस्कृति कहा जा सकता है।

संस्कृति और सभ्यता में अंतर किया जाना चाहिए। 'सभ्यता' का तात्पर्य उन आविष्कारों, निर्माण क्रियाओं, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक, राजनैतिक संस्थाओं से है, जिनके द्वारा मनुष्य का जीवन सरल और स्वतंत्र होता है। जबकि 'संस्कृति' का अभिप्राय चिंतन तथा कलात्मक सर्जन की उन संतोषप्रद क्रियाओं से है, जो व्यक्तित्व और जीवन के लिए, भले ही प्रत्यक्ष उपयोगी न दिखाई दें, मगर मनुष्य जीवन को ये क्रियाएँ सर्वांगीण समृद्ध बनाती हैं।

संस्कृति-निर्माण की क्षमता में मनुष्य के मस्तिष्क का प्रमुख योग रहा है। वाणी और भाषा की शक्तियों से आदमी ने संस्कृति का निर्माण, विकास और विस्तार किया है। मेधावी मनुष्य ने बोधगम्य प्रतीकों का निर्माण करके शब्द-शक्ति द्वारा इन प्रतीकों का प्रसार किया। आज दुनिया की हर छोटी-बड़ी भाषा के पास ऐसी अमूल्य

शब्द-सम्पदा है, जिसमें मानव इतिहास क्रम में विकसित संस्कृति-तत्त्वों के गहन अर्थ निहित रहते हैं।

'सांस्कृतिक शब्दावली' से तात्पर्य ऐसे शब्दों के संग्रह से है, जो अपने अर्थों से संस्कृति के संश्लिष्ट परिप्रेक्ष्य में रोशनी के गवाक्ष खोलते हैं। हिमाचल प्रदेश में स्वतंत्रता पूर्व की बड़ी-छोटी रियासतों और भौगोलिक घाटियों में अनेक बोलियाँ प्रचलन में रहीं। मगर संस्कृति के आधार पर इन घाटियों का जनजीवन जहाँ एक ओर समग्र भारतीय चिंतनधारा और आचार-व्यवहार से जुड़ा रहा, वहीं दूसरी ओर यहाँ की आदिम जातीय संस्कृति के तत्त्व भी चलन में रहे। समाज वैज्ञानिकों का मानना है कि एक संस्कृति में कई उप-संस्कृतियाँ और इन उप-संस्कृतियों में भी कई स्थानीय संस्कृतियाँ हो सकती हैं। हिमाचल प्रदेश के जनजीवन में यह बात पूरी तरह घटित होती है। यहाँ अनेक आदिम जातियों और मैदानों से आकर बसे जन-समुदायों की विविधता से बना समाज है। इस रोचक भाषायी और सांस्कृतिक विविधता के रहते अकादमी की ओर से 'सांस्कृतिक शब्दावली' के प्रकाशन की योजना बनाई गई है। इसके पीछे एक धारणा यह भी रही कि भाषायी और सांस्कृतिक घालमेल के चलते, इस पहाड़ी समाज के सदियों से अर्जित सांस्कृतिक तत्त्व तेज़ी से विलुप्त हो रहे हैं और प्रथाओं में द्रुत परिवर्तन के साथ यहाँ का समाज अपनी सांस्कृतिक पहचान भी खो रहा है।

'सांस्कृतिक शब्दावली' को संजोये रखने से भविष्य की पीढ़ियों के लिए भाषा, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज़ और संस्कार का कुछ बचा रह जाएगा; इस सोच के साथ तैयार की गई योजना के अंतर्गत यह पहला 'संस्कार खंड' प्रस्तुत है। इसमें जन्म, विवाह और अंत्येष्टि इन तीन बड़े संस्कारों के साथ हिमाचली समाज में परम्परा से प्रचलित अनेक संस्कारों से सम्बंधित शब्दों का बड़ा संग्रह है। इनमें जहाँ एक ओर शास्त्रविहित शब्द आए हैं, वहीं दूसरी ओर विभिन्न आदिम जातीय संस्कारों के द्योतक शब्द भी हैं। हिमाचल प्रदेश की विविध लोक-सम्पदा और लोकाचार को संजोये हुए, यह महत्त्वपूर्ण शब्द-संग्रह है। इस संकलन के लिए प्रदेश के लोक साहित्य के विद्वानों का परामर्श लिया गया और अनेक सांस्कृतिक सर्वेक्षकों ने शब्द भेजकर सहयोग दिया। सोमसी, हिमभारती, विपाशा और हिमप्रस्थ जैसी पत्रिकाओं व पुस्तकों से भी शब्दों के संदर्भ लिए गए हैं। उसके बाद अकादमी की अनुसंधान अधिकारी डॉ. श्यामा वर्मा और सुश्री सूनृता गौतम ने शोध करके संकलित सामग्री का आलेख तैयार किया, जो संपादित-प्रकाशित रूप में पाठकों के समक्ष है। लोकाचार से जुड़े ऐसे कार्य के परिपूर्ण और पूरी तरह सही होने का दावा नहीं किया जा सकता; इसलिए सुधी पाठकों और विद्वानों के सुझावों की अपेक्षा रहेगी, ताकि इसके दूसरे संस्करण और अन्य खंडों में परिष्कार किया जा सके।

अनुक्रम

संकेत चिह्न

ऊ.	ऊना
कां.	कांगड़ा
कि.	किन्नौर
कु.	कुल्लू
चं.	चम्बा
बि.	बिलासपुर
मं.	मंडी
ला.	लाहुल-स्पीति
शि.	शिमला
सि.	सिरमौर
सो.	सोलन
ह.	हमीरपुर
सं.	संस्कृत
दे.	देखिये
' '	वाक्य में आया पहाड़ी शब्द जिसकी यथा स्थान व्याख्या की गई है।
( )	वाक्य में आये पहाड़ी शब्द का हिन्दी अर्थ
बोल्ड फेस	वाक्य में प्रयुक्त पहाड़ी शब्द जिसकी व्याख्या नहीं है, इसके लिए दे. शब्द आया है।
इटेलिक	शब्द व्याख्या की पूर्ति के लिए प्रयुक्त पहाड़ी वाक्य तथा गीत

नोट : चार ज़िलों से अधिक में प्रचलित शब्द को मानकीकृत मानकर उसके आगे ज़िला का नाम नहीं दर्शाया गया है।

जन्म सम्बंधी संस्कार

अठमाह्याँ : अष्ट+मासिक। आठवें महीने में पैदा हुआ बच्चा। लोक विश्वास है कि आठवें महीने में जन्म लेनेवाला बच्चा प्रायः जीवित नहीं रहता। धारणा है कि ऐसा बच्चा जीवित रह जाए तो घर में या तो खूब समृद्धि होती है या बिलकुल गरीबी आ जाती है। इस सम्बंध में कांगड़ा में एक कहावत प्रचलित है–

अठमाह्याँ रेल् कैंह ठेल्।

ऐसा बच्चा या तो बहुत अमीर होता है या फिर अति गरीब।

अठवीं : अष्टमी। गर्भ ठहरने के आठवें महीने किया जानेवाला संस्कार। गर्भवती महिला आठवाँ महीना आरंभ होने पर लाल चौकी पर स्थापित गणपति की एक सप्ताह या दो सप्ताह तक पूजा करती है। इस बीच वह न तो नहाती है, न कपड़े बदलती है और न ही किसी नदी-नाले को लाँघती है। कुल पुरोहित से मुहूर्त निकलवा कर गर्भवती महिला को नदी के पास ले जाया जाता है। उसके साथ उसकी सास या अन्य कोई बुज़ुर्ग स्त्री तथा कुल पुरोहित होते हैं। वहाँ पुरोहित पूजा करता है और उसके बाद गर्भवती महिला को पेड़ की छाया में कपड़ों व आभूषण के साथ ही नहलाया जाता है। इसके बाद वह अपने मायके से लाए गए कपड़े पहनती है और पहले पहने हुए कपड़े पुरोहित को दे देती है। पुरोहित एक बार फिर से गणपति और नवग्रह की पूजा करता है। यह संस्कार केवल पहले बच्चे के जन्म के समय ही पुत्र प्राप्ति की इच्छा से किया जाता है। इसे **ठ्वाँह** तथा **बरावाँ** भी कहते हैं।

अड़ना : (मं.) दे. कड़ोज।

अन्नोदक : अन्न+उदक। इस संस्कार में पाँचवें या छठे मास बच्चे का नाम रखा जाता है। नाम प्रायः दो रखे जाते हैं। एक प्रचलित नाम तथा दूसरा जन्म राशि के अनुसार, इसे गुप्त रखा जाता है। इसी दिन शिशु को प्रथम बार अन्न खिलाया जाता है और जल पिलाया जाता है।

अपी : (कि.) दाई। किन्नौर क्षेत्र में दाई को अपी कहा जाता है। इसका कार्य प्रसव के तुरंत बाद बच्चे का नालछेदन करना, उसे नहलाना, प्रसव के समय उपयोग किए गए सारे वस्त्रों को गाँव के निकट बहनेवाली नदी या खड्ड में ले जाकर धोना होता है। अपी के सम्बंध में लोकमान्यता है कि जो भी महिला यह कार्य करती है उसके आचार-विचार का नवजात शिशु के भावी जीवन पर आंशिक प्रभाव पड़ता है। इसलिए इस कार्य को करने के लिए शुद्ध आचार-विचारवाली महिला को बुलाने का प्रयास किया जाता है। किन्नौर के कुछ क्षेत्रों में अपी को सूतक काल में शिशु की माँ के साथ ही रहना होता है और जच्चा को जो भोजन दिया जाता है, उसे भी वही भोजन दिया जाता है। शुद्धि के बाद ही वह अन्य लोगों के घरों में आ-जा सकती है।

अलरा : बच्चा जनने के बाद का आरंभिक दूध। कोई स्त्री जब प्रसूता हो जाती है तो उसके स्तनों से आरंभ में तनिक गाढ़ा दूध निकलता है, जिसे अलरा दूध कहते हैं। इस दूध को दुह कर पहले तीन दिनों तक फेंक दिया जाता था, लेकिन आजकल इसे पौष्टिक मानकर बच्चे को उसी समय पिलाया जाता है। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में इसी के पर्याय **कीड़, लैरा** (कां.), **लायरा** (बि.), **काल** (शि.,सो.), **कौल** (कु.) हैं।

अली : (कि.) गले का एक आभूषण, जिसमें एक फिरोज़ा, चाँदी का छल्ला और मूँगा इस क्रम से पिरोये जाते हैं कि पूरी माला बन जाती है। इसे नवजात शिशु के नाना-नानी 'कारताङ' उत्सव के दिन बच्चे को उपहार स्वरूप देते हैं।

अष्टम राहु : जन्मांग में राहु अष्टम भाव में हो तो बच्चा रोगग्रस्त रहता है। इससे रक्षा के लिए राहु की पूजा करना आवश्यक माना जाता है। इसलिए गर्भवती महिला से सातवें-आठवें मास में राहु की पूजा करवाई जाती है, जिसमें ब्राह्मण को कुछ वस्तुएँ दान में दी जाती हैं।

आओल़ : अंग्रेज़ी शब्द प्लेसेंटा। यह नवजात शिशु के साथ माता के गर्भ से निकलनेवाला मांसपिंड होता है, जिससे बच्चे की नाभि की नलिका जुड़ी रहती है। बच्चा गर्भ में रहते हुए इसी से आवश्यकतानुरूप भोजनांश प्राप्त करता है। बच्चे के पैदा होने के बाद आओल़ भी माँ के पेट से बाहर आ जाती है, जिसे किसी साफ-सुथरे स्थान पर दबा दिया जाता है। यदि यह पेट में ही रह जाए तो जच्चा की मृत्यु भी हो सकती है। जब तक

आओल़ बाहर नहीं आती, तब तक बच्चे की नाभि काटी नहीं जाती है। इसे उच्चारण भेद से **औल़, औगर** (कु.), **शाल** (शि.), **सू** (चं.), **धोरूण** (सि.) भी कहा जाता है।

आशोंग : (सि.) समरूपता। बच्चे का रूप व आकार जिस व्यक्ति से मिलता है, उसे उस व्यक्ति का आशोंग लगना कहते हैं। बच्चे में नानके की तरफ या दादके की तरफ से गुण, रूप व आकार की जो झलक मिलती है, उसे ही आशोंग कहते हैं।

आह्‌रा : (चं.) दे. भारा ढोल़ना।

ओंस : (कु.) दे. ल्यार।

औगर : (कु.) दे. आओल़।

औल़ : दे. आओल़।

कंडला : (ऊ.) नज़र बट्टू। सिंगी, बाघनख तथा ग्रह के अनुसार चाँदी की बनी चंद्रमा की आकृति को रेशम की काली डोरी में पिरोकर बनाया जाता है। इसे बच्चे के गले में डाला जाता है, ताकि वह कुदृष्टि व दुष्ट ग्रहों के प्रकोप से बचा रहे।

कख त्रिण दखाणा : (चं.) घास-पात। गर्भवती को प्रसव पीड़ा शुरू होने पर प्रसूति-कक्ष के एक स्थान को गाय के गोबर से लीप कर, उस पर दूर्वा के कुछ तिनके बिखेर कर, ऊपर बिस्तर बिछा दिया जाता है। बच्चे के पैदा होते ही उन तिनकों को उठा कर पंडित के पास ले जाया जाता है। वह इन्हें देखकर व शिशु के पैदा होने का समय, लग्न आदि जानकर बच्चे का भविष्य बताता है।

कच्चा जाणा : (चं.) दे. भारा ढोल़ना।

कच्चे लगणा : (मं.) दे. छेड़।

कड़ोज : (शि.) एक परम्परा, जिसके अंतर्गत बच्चा होने की सूचना के तुरंत बाद प्रसूता के मायकेवाले अपनी बेटी के लिए कुछ खाद्य, विशेषकर घी तथा आटा लाते हैं। इसके साथ सामर्थ्यानुसार नवजात शिशु और जच्चा के लिए वस्त्र आदि भी लाते हैं। इसे **लुम्बड़ोज** व **सुहाइथा** (कु.), **छूछक** (कां.), **अड़ना** (मं.), **सूइतू** व **तातो** (सि.), **सोयता** व **संभाल़** (शि.,सो.) भी कहते हैं।

कनबाल़ : (शि.,सो.) कन+बाल़। कान बेधने तथा बाल काटने का संस्कार। यह कर्णवेध और चूड़ाकर्म दो संस्कारों का संयुक्त रूप है, जो जन्म के तीसरे या पाँचवें वर्ष होता है। यह संस्कार केवल बालक का होता है। इसके लिए पंडित से शुभ मुहूर्त निकलवा कर दिन निश्चित किया जाता है। इस दिन शांति हवन करने के पश्चात् बालक के शरीर पर उबटन लगाया जाता है। बच्चे को स्नान करवा कर उसके बाल कटवाए जाते हैं और कान छेदे जाते हैं। यदि बाल पहले कटवाए हों तो केवल कान ही छेदे जाते हैं। लेकिन संस्कार के लिए कनबाल नाम ही रूढ़ हो गया है। इस शुभ अवसर पर सगे-सम्बंधियों को आमंत्रित कर उन्हें भोज दिया जाता है। वे शगुन के तौर पर बच्चे के लिए कपड़े लाते हैं। इसे **पटबाल़** भी कहते हैं।

कनबाली : (मं.) लड़की का कर्णछेदन व बाल काटने का संस्कार। दे. कनबाल़।

कपड़े आओणा : दे. भांडे बाहर।

कर थ्वाङेन : (कि.) सूर्यावलोकन संस्कार। जनजातीय क्षेत्र किन्नौर में सूतक समाप्ति के बाद सूर्यावलोकन के लिए बौद्ध ज्योतिष विद्या के अनुसार लामा से शुभ दिन निकलवाया जाता है और उस दिन माँ अपने शिशु को कक्ष से बाहर धूप में निकालती है, जिसे कर थ्वाङेन कहते हैं। छह-सात महीने के बाद शिशु को उसके ननिहाल ले जाते हैं। शिशु को ननिहाल ले जाने को भी कर थ्वाङेन ही कहा जाता है।

काज़ी : (सि.) निमंत्रण। केवल जन्म, विवाह व अन्य शुभ अवसरों पर दिए जानेवाले निमंत्रण को काज़ी कहते हैं और संदेशवाहक को काज़ू।

कारताङ : (कि.) निष्क्रमण। किन्नौर क्षेत्र में शिशु जब एक मास का हो जाता है तो उसे घर से बाहर लाया जाता है और शुभ मुहूर्त देखकर सर्वप्रथम उसे नाना-नानी के घर ले जाया जाता है। वहाँ पर बच्चे के साथ गए व्यक्तियों का आदर-सत्कार 'दू' से किया जाता है, फिर अन्य व्यंजन परोसे जाते हैं। नाना-नानी बच्चे को उपहार स्वरूप सोने या चाँदी के 'दुहू', 'अली' एवं वस्त्र इत्यादि देते हैं। स्थानीय लुहार चाँदी, ताँबे या लोहे के छोटे-छोटे औज़ार बनाकर सिर की टोपी में बाँधने के लिए देता है। लोकविश्वास है कि ऐसा करने से बच्चा सभी प्रकार की कुदृष्टि से बचा रहता है।

काल : (शि., सो.) दे. अलरा।

काहारण : (चं.) बच्चे के जन्म से सम्बंधित एक कृत्य। यह बच्चे के जन्म के तीन मास बाद किया जाता है। इस दिन बच्चे को कमरे से बाहर निकाल कर उसे सूर्य के दर्शन करवाए जाते हैं। बच्चे के ऊपर पैसे और अखरोट घुमा कर फेंके जाते हैं, जिन्हें वहाँ उपस्थित बच्चे बटोरते हैं।

कीड़ : दे. अलरा।

कीला मानणी : (मं.) स्तनों को संचरित करना। प्रथम बार प्रसूता के स्तनों से दूध का प्रवाह चालू करने के लिए चूचुक को ज़ोर से दबाया जाता है, जिससे स्तनों के अग्रभाग में जमी कीलें निकल जाती हैं।

कुंडली : दे. टिपड़ा।

कुनली जड़ोलण : (मं., शि.) कर्णवेध तथा चूड़ाकरण संस्कार। यह जन्म के पहले, तीसरे व पाँचवें अथवा विषम वर्षों में सम्पन्न होता है। इसका शास्त्रीय स्वरूप बालक के लिए चूड़ाकरण तथा बालिका के लिए कर्णवेध रूप में देखा जाता है। इसमें पहली बार नवजात के केशों को काटा जाता है। बालों को पंचगव्य से शुद्ध किया जाता है तथा 'तेलपाणा' विधि को भी सम्पन्न किया जाता है। यह लोक संस्कार कुलदेवता अथवा कुलदेवी के स्थान में सम्पन्न किया जाता है। इस से शत्रुओं द्वारा किए जानेवाले जादू-टोने से बचा जा सकता है।

कोड़ी : (शि.) सूतक अवस्था का पहला चरण। शिशु के पैदा होने के बाद के तीन दिन अत्यंत अशुद्धता के माने जाते हैं, इन्हें कोड़ी कहते हैं। इन दिनों जच्चा-बच्चा को गोशाला में ही रखा जाता है।

कोड़ी उजियावण : (शि.) सूतक के प्रथम चरण की समाप्ति। प्रसव के चौथे दिन सारे घर में पंचगव्य का छिड़काव किया जाता है और जच्चा-बच्चा को गोशाला से ऊपरवाली मंज़िल यानी फौड़ में ले आते हैं। इस दिन दाई को वस्त्र, पैसे तथा 'मूड़ी' दी जाती है।

कोलर : दे. गुल्ह। वह स्थान जहाँ प्रसव के बाद जच्चा-बच्चा को कुछ दिनों तक रखा जाता है। पहाड़ों में प्रसव प्रायः गोशाला में कराया जाता है और तीन दिन तक उन्हें वहीं रहना पड़ता है। इसके बाद जच्चा-बच्चा को नहला कर ऊपर की मंज़िल के ऐसे कमरे में सवा महीने तक रखा जाता है जहाँ हवा प्रवेश न करती हो। यहाँ उनके सोने के लिए धान या जौ की पराल बिछाई जाती है जो बहुत गर्म होती है। इससे इन्हें ठंड लगने का भय नहीं रहता। बाद में इस पराल को फेंक दिया जाता है।

कौल : (कु.) दे. अलरा।

क्राङो : (कि.) दे. जट्टू।

खड़ोलदू : (शि.) अखरोट के आकार का आटे का गोला जिसे आग में डाल कर पकाया जाता है। पकने पर बाहर से वह सख्त हो जाता है और अंदर से नरम रहता है। उस नरम भाग से बच्चे का अन्नप्राशन कराया जाता है।

खाबरी : (शि.) दे. छेड़।

खीरटू : (चं.) अन्न प्राशन संस्कार, जिसमें बच्चे को चाँदी के रुपए या चम्मच से खीर खिलाई जाती है। यह सोलह संस्कारों में एक संस्कार है, जो बच्चे के जन्म के छठे महीने किया जाता है। खीर खिलाने से पहले बच्चे के आगे कई चीज़ें रखी जाती हैं, जैसे–खीर, लेखनी, पुस्तक, कृषि औज़ार, खिलौने आदि। यह माना जाता है कि बच्चा सामने पड़ी चीज़ों में से जिस पर सबसे पहले हाथ लगाये, बड़े होने पर वह उसमें सर्वाधिक रुचि लेता है। यदि खीर की ओर लपके तो पेटू होता है, यदि पुस्तक की ओर जाए तो पढ़ाई में निपुण आदि-आदि। कुछ स्थानों पर बच्चे के आगे मांस का टुकड़ा और रुपए का सिक्का रखा जाता है। यदि वह मांस का टुकड़ा उठाए तो उसे मांस चखाया जाता है और यदि सिक्का उठाए तो माँ और बच्चा तब तक मांस नहीं खा सकते जब तक बच्चा बोलना शुरू न कर दे। कांगड़ा में इसे **खीरपू** और सोलन में **जठालणा** यानी भोजन कराना कहते हैं।

खीरपू : (कां.) सं. क्षीर। बच्चे के जन्म के छह मास बाद किया जानेवाला एक संस्कार। दे. खीरटू।

खौईतर : (कु.) दो पहाड़ों के बीच का गहरा गड्ढा। इसी से पहाड़ी में विकसित शब्द खौईतर भौरना है। यदि किसी स्त्री के संतान न हो रही हो या गर्भपात होता हो तो देवता के गूर से इसका इलाज करवाया जाता है। इसके लिए गूर दिन निश्चित करता है। इससे पहले घर की सफाई की जाती है। सम्बंधित स्त्री नहाकर धुले कपड़े पहनती है। गूर द्वारा बताए गए कुछ खाद्य तैयार किए जाते हैं। निर्धारित तिथि को आधी रात में उस औरत को एकांत स्थान पर ले जाया जाता है। उसके साथ उसका पति भी जाता है। कुछ अन्य पुरुष भी शामिल होते हैं। गूर द्वारा बताए गए स्थान पर गहरी खाई खोदी जाती है। वह गेहूँ के आटे से खाई में विशेष प्रकार की चौकोर आकृति बनाता है, जिसे मांदल कहते हैं। औरत को तब उस खाई में मांदल के बीच बिठाया जाता है। उसके चारों ओर मांदल के कोनों पर

घी के दीये जले होते हैं। खाई को पहले लकड़ी के तख्ते से ढक दिया जाता है और फिर उस पर मिट्टी बिछा कर जौ के बीज बोये जाते हैं। गूर मंत्रों का उच्चारण करता रहता है और साथ में बना कर लाई खाद्य सामग्री को बीच-बीच में फेंकता रहता है। इसके पीछे यह धारणा है कि इस समय राक्षस, भूत-प्रेत आदि कार्य में विघ्न डालने के लिए आते हैं। अतः इन्हें प्रसन्न करने के लिए यह खाद्य सामग्री फेंकी जाती है। लगभग आधे-पौने घंटे बाद मिट्टी और तख्त हटाया जाता है। गूर मुट्ठी में सरसों के दाने ले कर उस पर मंत्र फूँकता है और इन्हें एक कपड़े के छोटे टुकड़े में लपेटता है। इसे हाथ से कात कर बनाई डोरी की सहायता से औरत की कलाई में बाँधता है। औरत को खाई से बाहर निकाला जाता है और खाई को इस तरह भर दिया जाता है ताकि किसी को पता न चले कि यहाँ इस प्रकार का उपचार कर्म हुआ है। इसे खौईतर भौरना या खौई भौरना कहते हैं।

गंतरयाला : बच्चे के जन्म के पश्चात् ग्यारहवें दिन किया जानेवाला संस्कार, जिसमें गोमूत्र का छिड़काव कर सूतक सम्बंधी शुद्धि की जाती है। दे. गूंतर।

गब्भ बोलणा : दे. छेड़।

गाची : कमरबंद। यह ऊन, पश्म या सूत का कम चौड़ा वस्त्र होता है, जिसकी लंबाई तीन मीटर के लगभग होती है। प्रसव के बाद जब स्त्री का पेट ढीला हो जाता है तो इसे पूर्व स्थिति में लाने के लिए जच्चा के पेट पर गाची को थोड़ा कस कर लपेटा जाता है। इसे कम से कम सवा महीने तक बाँधते हैं।

गियारी : (कु.) सं. यज्ञ। यज्ञ का छोटा रूप। कुल्लू के कुछ क्षेत्रों में सूतक की शुद्धि गियारी जला कर की जाती है। यह एक तरह का छोटा यज्ञ है, जिसके लिए किसी पंडित की आवश्यकता नहीं होती। इसे घर की बुजुर्ग स्त्री स्वयं करती है। यह बच्चे के जन्म के तीसरे या पाँचवें दिन होता है। इस दिन जच्चा को प्रसव के बाद पहली बार नहलाया जाता है। उसके कपड़े धोए जाते हैं। उसे और बच्चे को नए कपड़े पहनाए जाते हैं। दोनों को ऊपर की मंज़िल में लाया जाता है। इन्हें गियारी के सामने बिठाया जाता है। गियारी जलाने के लिए एक चपटे व चौड़े पत्थर पर मिट्टी बिछाई जाती है। इस पर सूखे आटे से रेखा खींच कर चौकोर खाना बनाया जाता है। इस पर बिरोज़ेयुक्त पतली लकड़ी को चिना जाता है।

इसके साथ भेखल और हल की अंकुड़ी की लकड़ी भी प्रयुक्त होती है। इसमें घी और जौ की आहुति दी जाती है। जच्चा और बच्चे को इसे छुहाया जाता है और हवन का टीका लगाया जाता है। *अश्का-भश्का भौंतर शुचि* मंत्र का उच्चारण करते हुए पूरे घर में गंगा जल या गोमूत्र छिड़का जाता है। इसके बाद घर पवित्र हो जाता है, लेकिन जच्चा को अभी भी अपवित्र माना जाता है। सिवाय अपने प्रयोग की वस्तु के वह घर की वस्तुओं को नहीं छू सकती।

घर में किसी की मृत्यु होने के बाद भी तीसरे दिन गियारी जलाई जाती है। इस दिन से बाहर से आए लोग सम्बंधित घर में खाना खा सकते हैं।

गुंटली : (ऊ.) दे. गुल़सत।

गुण : (सि.) गुण। गुण शब्द जहाँ हिन्दी-संस्कृत के शब्द गुण का ही अर्थबोधक है, वहीं यह एक अन्य विशेष अर्थ में रूढ़ हो गया है। नवोढ़ा वधू जब गर्भधारण करती है तो उसकी गर्भावस्था को *गुण लागे रा* कहा जाता है।

गुल़सत : एक घुट्टी जो जायफल, अजवायन और मिश्री के घोल से बनायी जाती है। बच्चे के पैदा होते ही उसे गुलसत चटाई जाती है। इससे बच्चे का गला और पेट साफ हो जाता है। विश्वास है कि जो बच्चे को गुल़सत चटाता है, उसका कुछ स्वभाव बच्चे में भी आ जाता है। गुल़सत संस्कृत के दो शब्दों गुल और सत के योग से बना है। सम्भवतः इसमें आरम्भ में मिश्री के स्थान पर गुड़ का प्रयोग होता होगा; इसी कारण इसका नाम गुल़सत पड़ा हो। आज के समय में गुल़सत के स्थान पर शहद का प्रयोग किया जा रहा है। अंगुली या चाँदी की अँगूठी में शहद लगा कर उससे बच्चे की जीभ पर ऊँ लिखा जाता है। विश्वास है कि ऐसा करने से बच्चा बुद्धिमान होता है।

गुल्ह : (चं.) सं. गुह, जिसका अर्थ ढकना, छिपाना, परदा डालना, गुप्त रखना है। इससे निकला गुल्ह शब्द प्रसूता को ढके रखने के लिए बिछाये गये बिस्तर के लिए है। गुल्ह प्रायः खिड़की या गवाक्ष रहित कमरे में लगाया जाता है, जिससे शीतल हवा कमरे में न आए। सर्दी हो या गर्मी गुल्ह हमेशा गरम रखा जाता है, जिससे प्रसूता को ठंड लगने से बचाया जाता है। इसे मंडी में **सौहड़** कहते हैं।

गुहातरू : (कु.) दे. फालड़ू।

गूंतर : गोमूत्र। बच्चा होने के ग्यारहवें दिन किया जानेवाला संस्कार। प्रसव प्रायः गोशाला या ओबरी में करवाया जाता है। दस दिनों तक जच्चा को यहीं रखा जाता है। इतने दिनों तक इस घर में तथा पूरे खानदान में सूतक रहता है। दूसरे गोत्रवाले इन दिनों प्रसूतिवाले घर में भोजन-पानी ग्रहण नहीं करते। उसी घर के लोग भी प्रसूता के थाली, गिलास आदि बरतन जुदा ही रखते हैं। ग्यारहवें दिन जच्चा को गोमूत्र युक्त गर्म पानी से स्नान करवा कर ऊपर की मंज़िल में लाया जाता है और पंडित से शुद्धि पूजा करवाई जाती है। जच्चा-बच्चा और पूरे परिवार के सदस्यों को पूजा का चरणामृत दिया जाता है और पूरे घर में गोमूत्र छिड़का जाता है। पुत्र जन्म पर मिट्टी की 'बिहाई' घड़ी जाती है। बच्चे को अनाज व अन्य बहुमूल्य पदार्थों के साथ तोला जाता है और उस सामग्री को दाई को दे दिया जाता है। कुलदेवी के नाम से सुंड, बबरू, चावल आदि के 'पत्तलु' डाले जाते हैं। यह संस्कार ब्राह्मण परिवार में ग्यारहवें दिन, राजपूत और खत्री में तेरहवें दिन और महाजन के यहाँ सोलहवें दिन होता है। इस दिन सगे-सम्बंधियों को धाम परोसी जाती है। वे बालक के लिए उपहार लाते हैं। प्रसूता के मायकेवाले बालक के लिए कंगन और कपड़े आदि लाते हैं। इस संस्कार में गोमूत्र का विशेष रूप से प्रयोग होने के कारण इसका नाम गूंतर पड़ना युक्तिसंगत है। इसे **गंतरयाला़**, **गोंत्रयाला़**, **गौंच** तथा **पंजाप** भी कहते हैं। इस संस्कार से पूर्व बच्चे के पिता को बच्चे का मुँह देखने से रोका जाता है। इस दिन कुल पुरोहित द्वारा मुहूर्त देखने के बाद पिता अपने बच्चे का मुँह देखता है। महासू क्षेत्र में अट्ठाईसवें दिन जन्म नक्षत्र आने पर होनेवाली ग्रहशांति पूजा के अवसर पर भी मुँह देखने की परम्परा है।

गोंत्रयाला़ : दे. गूंतर।

गोद-भराई : गर्भधारण के आठवें मास में किया जानेवाला संस्कार। यह संस्कार प्रायः गर्भवती स्त्री के मायके में किया जाता है। इस अवसर पर निकट सम्बंधी भी शामिल होते हैं। पंडित शुभ मुहूर्त में गर्भवती से पूजा करवाता है। उपस्थित सभी लोग लड़की की गोद में मेवे, वस्त्र आदि डालते हैं। यदि लड़की मायके न आ पाए तो मायकेवाले उसकी ससुराल जा कर गोद-भराई की रस्म पूरी करते हैं। भीतरी पहाड़ी क्षेत्र में लड़की अपने मायके आकर इष्ट के मंदिर में पूजा करती है। कहीं-कहीं यह पूजा

नारियल की बलि से की जाती है, परन्तु कुछ स्थानों पर देवता को बकरे की बलि भी दी जाती है। यह पूजा गर्भस्थ शिशु की रक्षा के निमित्त की जाती है।

गोबर-गणेस : गोबर गणेश। पुत्र जन्म पर कुलपुरोहित द्वारा गौ के गोबर से गणपति की प्रतीक मूर्ति बनाई जाती है, जिसे गोबर-गणेस कहते हैं। यह जन्म के तीसरे या पाँचवें दिन बनाई जाती है तथा जच्चा-बच्चा व बच्चे के पिता से इसकी पूजा करवाई जाती है। 'गूंतर' वाले दिन इसे जल में प्रवाहित किया जाता है।

प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में पुत्र जन्म के पाँचवें दिन किसी बड़ी-बूढ़ी से गौ के गोबर की 'बिहाई' बनवा कर उस पर हरी दूब लगाई जाती है और ऊपर लाल वस्त्र ओढ़ा कर उसे किसी ऊँचे स्थान पर रखा जाता है, फिर ग्यारहवें दिन या तीसरे, पाँचवें अथवा सातवें महीने उसे कुएँ या बावड़ी पर छोड़ने के लिए जच्चा को बाजे-गाजे के साथ ले जाया जाता है। इस उत्सव में उपस्थित महिलाओं में से एक महिला मार्ग के दोनों ओर कुमकुम से मंगलसूचक गोल चिह्न बनाती हुई चलती है और दूसरी महिला इसके मध्य में पीले रंग से टीका लगाती है। वहाँ पहुँच कर जच्चा से शक्कर व भीगे चनों से जलाशय की पूजा करवाई जाती है और वह 'बिहाई' को इस पर रख कर जल चढ़ाती है। तत्पश्चात् वहाँ से किसी पात्र में पानी भर कर सिर पर रखती है और गीत गाते हुए सभी घर लौटते हैं। जब तक बिहाई विसर्जित न की हो जच्चा जलाशय पर नहीं जाती।

गोहरड़ा : (ऊ.) एक खाद्य पदार्थ जो घर में बच्चा पैदा होने की खुशी में 'गूंतर' वाले दिन बनाया जाता है और सभी सगोत्रियों व मित्रों में बाँटा जाता है। इसे बनाने के लिए गुड़ या शक्कर में सौंफ, सोंठ, अजवाइन तथा देसी घी मिलाकर हलके-हलके दबाकर तीन या चार इंच के टुकड़ों में काटा जाता है। इसे तैयार करने के लिए कुटुम्ब की महिलाओं को बुलाया जाता है।

गौंच : दे. गूंतर।

गौलोचन : गोरोचन। एक सुगंधित पदार्थ, जिसकी उत्पत्ति गाय के पित्त से मानी जाती है। इससे विकसित एक रस्म है जो नवजात शिशु के स्वास्थ्य के लिए सम्पन्न की जाती है। इसमें गोरोचन और जायफल को घिसकर बच्चे के नासापुटों व नाभि पर लगाया जाता है। इसके बाद यह क्रिया वर्ष तक चलती रहती है।

घुट्टी : नवजात शिशु को दी जानेवाली रेचक-पाचक दवा, जिसमें वंशलोचन, असगंध तथा मधु मिलाये जाते हैं, ताकि नवजात शिशु की पाचनशक्ति ठीक रहे। कहीं-कहीं यह घुट्टी हरड़, अजवायन, मिश्री और जायफल को पीसकर बनाई जाती है। यह लगभग एक वर्ष तक दी जाती है।

चकंधू : (कां.) बिना विवाह के, अवैध प्रणय सम्बंधों से उत्पन्न संतान। विधवा औरत जो अपने ससुराल में ही रहती हो, उसका किसी अन्य व्यक्ति के साथ प्रणय सम्बंध होने पर उत्पन्न संतान। उसे स्त्री के मृतक पति की सम्पत्ति का कानूनन अधिकार होता है, चाहे वह पति की मृत्यु के कितने ही समय बाद पैदा हो। क्योंकि वह बच्चा भी चार कंधों यानी चार दीवारी के अंदर पैदा होता है, इसलिए इसे चकंधू नाम दिया गया है, भले ही वह बाहरी संसर्ग से जन्मा हो। यह विधवा स्त्री को एक सम्मानजनक सामाजिक छूट है। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में इसी के पर्याय **झाटा, झाला, झालू, हाल्लड़** और **सरतेड़ा** हैं।

चिंचोल़ी : (सि.) तिलचावली। तिल, गुड़, घी और चावलों का बना एक खाद्य, जिसे नामकरण संस्कार के बाद प्रसाद के रूप में सभी आमंत्रित सम्बंधियों और बच्चों में भोग के रूप में बाँटा जाता है। इसे **छिनणी** भी कहते हैं।

चिच्चू धोणे : स्तन धोना। शिशु जन्म से सम्बंधित एक कृत्य। प्रसव से तीसरा पहर गिन कर गाय के दूध, गंगाजल तथा दूर्वा से किसी कन्या के हाथ से जच्चा के स्तन धुलवाए जाते हैं और उसे उसका लाग दिया जाता है। फिर जच्चा तारों की छाया में बच्चे को दूध पिलाती है।

चो़लू-कांगणू : बच्चे की कमीज़ और कंगन। इसे **झग्गु-टोपु** भी कहते हैं। नवजात शिशु यदि लड़का हो तो ननिहाल, बुआ और निकटस्थ रिश्तेदारों की ओर से बच्चे के लिए चाँदी के बोरयुक्त कंगन उपहार स्वरूप आते हैं। इसके साथ बच्चे को कपड़े भी दिए जाते हैं। इन्हें चो़लू-कांगणू की संज्ञा दी जाती है। बच्चे के माँ-बाप चो़लू-कांगणू लानेवालों को बधाई के तौर पर धाठू (स्त्री के सिर का वस्त्र) भेंट करते हैं। अब धाठू के स्थान पर सूट देने का प्रचलन आ गया है।

चौके बाहर : दे. भांडे बाहर।

छ़ङ् छ़ङ् शेन्न : (कि.) शिशु जन्म के समय किया जानेवाला एक संस्कार। प्रसव के बाद का शुद्धिकरण। किन्नौर में सूतक काल की समाप्ति पर

जितने दिन का सूतक होता है उतनी ही संख्या में शोन नामक वृक्ष की टहनियाँ, बेहमी वृक्ष की दातुनें तथा छोटे-छोटे सफेद गोल पत्थर लाये जाते हैं। जिस कक्ष में माँ तथा शिशु होते हैं, वहाँ फर्श पर एक पतले तख़्ते को ऊपर से गोबर से लीपकर रखा जाता है और उस पर प्रत्येक टहनी को शीर्ष भाग से घुमाकर चक्र बनाकर रखा जाता है। उन चक्रों पर पत्थरों को गर्म करके रखा जाता है। जच्चा शिशु को गोद में लेकर तख़्ते के किनारे पर दायीं ओर खड़ी होती है। उसे पहले से तैयार रखी गई दातुनों में से एक दातुन दी जाती है। वह उससे प्रतीक रूप में दातुन करके उसे वहीं गिरा देती है। एक महिला टहनियों के शीर्ष चक्र पर रखे गर्म पत्थरों पर गोमूत्र छिड़कती है। इसके बाद जच्चा तख़्ते पर रखी टहनियों में से एक टहनी को अपने दाहिने पैर के पंजे से खींच कर एक ओर को गिरा देती है और स्वयं तख़्ते को लाँघ कर दूसरी ओर जाकर तख़्ते की तरफ मुँह करके खड़ी हो जाती है। अब उसे दूसरी दातुन दी जाती है और फिर वही प्रक्रिया दोहराई जाती है और टहनियों को एक-एक करके तख़्ते के दायीं-बायीं ओर गिराया जाता है। इसके बाद उन टहनियों, पत्थरों तथा नीचे गिराई दातुनों को इकट्ठा करके तख़्ते पर रखा जाता है और 'अपी' उस तख़्ते को घर के मुख्यद्वार से बाहर ले जाकर टहनियों आदि को फेंक देती है। इस प्रकार सूतक शुद्धि का कार्य सम्पन्न होता है।

छठ : षष्ठी। एक धार्मिक कृत्य। पुत्र जन्म के छठे दिन षष्ठी देवी कात्यायनी की बच्चे के कल्याण के लिए पूजा की जाती है। इस दिन कुल पुरोहित जच्चा के मायके जाकर उन्हें बधाई देता है और वे उसे कुछ पैसे, अन्न और यदि सामर्थ्य हो तो भेड़ भी देते हैं। इसी दिन जच्चा के माता-पिता इसके लिए घी, सोंठ और अन्य वस्तुएँ लाते हैं। परिवार और गाँव की महिलाएँ जच्चा के घर एकत्र होकर गीत गाती हैं और सम्बंधियों को प्रीति-भोज दिया जाता है। यही संस्कार लड़की का पाँचवें दिन होता है।

छ़ालि़दी : (कु.) दे. दुप्पराणी।

छ़ालि़ना : (कु.) दे. हो़लकीणा।

छाउरा : छाया। यदि गर्भवती स्त्री पर शव की छाया पड़े तो धारणा है कि बच्चा सूखता जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार यदि एक ही समय में दो स्त्रियाँ प्रसूता हो जाएँ तो उन्हें एक-दूसरे की परछाई से दूर रखा जाता है। उनकी एक-दूसरे पर परछाई पड़ना विघ्नकारी माना जाता है। शिमला में इसे **ढवावाँ** तथा बिलासपुर में **पड़छावाँ** कहते हैं।

छाओंरा : छाया। दे. छाउरा।

छाड छाडणी : (चं., मं.) भूतबाधा दूर करने के लिए किया जानेवाला तांत्रिक उपक्रम। यदि बच्चे पर किसी चुड़ैल, यक्षिणी, भूत-प्रेत आदि का साया पड़ गया हो तो उसे भगाने के लिए शाम के समय किसी निर्जन स्थान पर, वन में या खड्ड के किनारे मुर्गा, बकरा, पकवान आदि ले जा कर तांत्रिक अनुष्ठान किया जाता है और सारी सामग्री वहीं फेंक दी जाती है। इस तांत्रिक क्रिया को शिमला की पहाड़ियों में **निरवाह** कहते हैं।

छाबी : बाँस की बनी उथली टोकरी। पुत्र जन्म पर नवजात शिशु के ननिहाल से छाबी ले जाने का रिवाज़ है। यह बच्चे के जन्म के ग्यारहवें दिन जब शुद्धि होती है, उस दिन ले जाते हैं। छाबी को गोटेदार वस्त्र से खूब सजाया जाता है। इसमें जच्चा के लिए घी, मेवे, चावल, दलिया इत्यांदि और नवजात के लिए कंगन, वस्त्र तथा परिवार जनों के लिए कपड़े सजा कर ले जाते हैं। सात-आठ किलो शक्कर भी डाल कर ले जाते हैं, जिसे वहाँ उपस्थित सभी जनों में बाँटा जाता है। छाबी ले जाने के लिए ननिहालवाले अपनी ओर के सभी रिश्तेदारों को निमंत्रण देते हैं। ये सभी निश्चित दिन को इकट्ठे होकर बाजे-गाजे के साथ अपनी लड़की के घर छाबी ले जाते हैं। इनका सम्बंधित घरवाले तिलक लगा कर और भोज दे कर खूब स्वागत करते हैं। शिशु को दिए जाने वाले वस्त्र, आभूषण तथा अन्य उपहारों का वर्णन इस गीत के माध्यम से किया जाता है–

किने ल्याया झग्गू टोपू, किने ल्याया खेलणू
खेल्या मेरेया बालका, रंगीला तेरा खेलणू
नाना ल्याया झग्गू टोपू, मामा ल्याया खेलणू
खेल्या मेरेया बालका, रंगीला तेरा खेलणू

नवजात से उसकी माँ पूछती है कि तुझे ये कमीज़, टोपी व खिलौने कौन लाया है। तेरा यह खिलौना अत्यंत मनमोहक है, तू इससे खेल। उत्तर में स्वयं ही कहती है कि नाना झग्गू-टोपू व मामा सुंदर खिलौना लाया है।

छिनणी : दे. चिंचोली।

छिला : दे. लैरथी।

छ़ीन शेन्नु : (कि.) जनन अशौच की शुद्धि। किन्नौर ज़िला के कुछ क्षेत्रों में यदि किसी महिला का प्रसव अपने मायके में हुआ हो तो उसके मायके की पूरी बिरादरी में शुद्धि की जाती है। जिस कक्ष में महिला ने शिशु को जन्म

दिया हो, उस कक्ष में एक बकरे या भेड़ की बलि दी जाती है। बलि-पशु के रक्त से प्रसववाले कक्ष में छिड़काव करते हैं तथा सभी बिरादरों के रसोईघरों में छिड़काव किया जाता है। बलि-पशु के मांस को पकाकर पूरी बिरादरी में बाँटा जाता है। कहीं-कहीं इस मौके पर देवालय से पंचगव्य लेकर पाकशालाओं में और जच्चा के कक्ष में उसका छिड़काव किया जाता है।

छुहणा बैठणा : दे. भांडे बाहर।

छूंह : (मं.) दे. छोह्त।

छूछक : (कां.) दे. कडोज।

छेड़ : (सि.) किसी स्त्री के गर्भवती होने पर जो उलटियाँ होना, सुस्ती छाना या चेहरे पर झाइयाँ पड़ना जैसे लक्षण दिखाई पड़ते हैं, उस स्थिति में उस महिला के बारे में कहा जाता है कि इसे छेड़ पड़ा है। इस स्थिति में सम्बंधित महिला की भोजनादि की इच्छापूर्ति का विशेष ध्यान रखा जाता है। तभी तो किसी अन्य साधारण महिला द्वारा कोई इस प्रकार की इच्छा प्रकट करने पर कहा जाता है– *तां तो कीए छेड़ न पोड़ रेइयें*। इसे प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में **कच्चे लगणा**, **गब्भ बोलणा, सलाइसा** (कु.) **निम्मा लगणा** व **खाबरी** (शि.), **लिउणा लगणा** (कां.) और **लिंगणा लगणा** व **जीऊ बोलणा** (मं.) कहते हैं।

छोह्णा : दे. भांडे बाहर।

छोह्त : छूत, स्पर्श जनित अशुचिता। सूतक तथा पातक दोनों अवस्थाओं के लिए छोह्त कहते हैं। इस दौरान जिस परिवार में जन्म या मृत्यु की घटना हो, उस परिवार के लोगों का मंदिर आदि पवित्र स्थलों पर जाना वर्जित होता है। उनके घर में कुछ भी खाने-पीने का परहेज़ किया जाता है। जन्म के समय दसवें दिन तथा मरने के समय बारहवें दिन घर की लिपाई-पुताई करके हवन द्वारा घर की शुद्धि की जाती है। सारे घर में पंचगव्य का छिड़काव किया जाता है। तत्पश्चात् ब्राह्मण और कन्याओं को जिमाने के बाद छोह्त खुल जाती है। स्त्रियाँ प्रायः मास में एक बार रजस्वला होती हैं। इसमें तीन दिन-रात्रि तक उन्हें अशुद्ध माना जाता है। कुछ ब्राह्मण परिवारों में यह अशुद्धि पाँचवें तथा सातवें दिन तक भी मानी जाती है। इस अवधि में स्त्री घर के भीतर का कोई काम नहीं करती। यहाँ तक कि किसी वस्तु या व्यक्ति का स्पर्श भी नहीं करती। इस अवस्था के

समाप्त होने पर सारे वस्त्र तथा बर्तन आदि धोने के बाद ही वह शुद्ध होती है। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में इसी के पर्याय **सूत** (कां.), **ज़ूठ** (कु.), **छूंह** (मं.) हैं।

छौं : जन्म सम्बंधी एक संस्कार। यह संस्कार स्थान भेद से बच्चा पैदा होने के तीसरे, पाँचवें या छठे दिन किया जाता है। प्रसूता को नहलाया जाता है और घर में गोबर का चौका लगाकर उसे उसमें बिठाया जाता है। इसके साथ अनाज से भरा छाज भी रखा जाता है । गृह तथा प्रसूता को गोमूत्र के छींटे दिए जाते हैं और अनाज का छाज दाई को सौंपा जाता है। दाई जौ व घी या थोड़ी-सी ऊन को जला कर इसका धुआँ जच्चा-बच्चा को सुंघाती है, ताकि उन पर बाहरी छाया न पड़े।

जटलू चौरने : (मं.) दे. जट्टू।

ज़टी कुंडणा : (शि.) दे. जट्टू।

जट्टू : जटा। मुंडन संस्कार। इसे **जड़ोलण, ज़ौदू, जटलू चौरने** (मं.), **जमालू** (कां.), **जनालू** (बि.) तथा **ज़टी कुंडणा** (शि.) भी कहा जाता है। यह संस्कार बच्चे के जन्म के पहले, तीसरे या पाँचवें वर्ष में किया जाता है। इसके अंतर्गत बच्चे के बाल पहले-पहल कटवाये जाते हैं। लोक प्रथा के अनुसार मुंडन संस्कार प्रायः लड़कों का ही किया जाता है। लड़कों में भी प्रथम लड़के के बाल विशेष उत्सव के साथ कटवाए जाते हैं और शेष के साधारण रूप में। साधारण स्थिति में बच्चे के बाल कुल देवता के स्थान पर काटे जाते हैं और यदि यह कृत्य विशेष आयोजन के साथ किया जाता है तो यथाशक्ति नाते-रिश्तेदारों को भोज दिया जाता है और बाजे-गाजे के साथ लड़के के बाल उसके मामा से कटवाए जाते हैं। मामा इस अवसर पर बच्चे को कपड़े तथा यथासामर्थ्य बच्चे के माँ-बाप तथा दादा-दादी को भी उपहार देता है। कटे हुए बालों को कुल देवता के स्थान पर चढ़ाया जाता है। कई बार बाल उतारकर लाल वस्त्र में रख लिए जाते हैं और यथासुविधा पवित्र नदी में बहा दिए जाते हैं। शिमला क्षेत्र में बच्चे की जटाएँ गोबर में बंद करके भेड़ चरानेवालों के पास ऊँची चोटी पर पहुँचाने के लिए दी जाती हैं।

मंडी क्षेत्र के भीतरी पहाड़ी भागों में बच्चे को मेढ़े पर बिठा कर उसकी एक जटा कुलजा, कुल देवता का गूर काटता है और दूसरी मामा। फिर नाई उसकी पूरी हजामत कर देता है। क्योंकि संस्कार देवालय में

होता है अतः मेढ़ा वहीं काट दिया जाता है। यह संस्कार मंडी क्षेत्र के भीतरी पहाड़ी भागों में जेठ और श्रावण मास में सामूहिक रूप से चार देवताओं– शृंगी, शाटीनाग, चुंजवाला और मकड़ोहा के स्थानों पर पूरा किया जाता है और पाँच सौ से हज़ार तक बकरे और मेढ़े काटे जाते हैं। साधारण व्यक्ति घर पर इस संस्कार को इसलिए नहीं कर पाता क्योंकि यह बहुत महंगा बैठता है। इस क्षेत्र में पंडित की भूमिका केवल लग्न-मुहूर्त निकालने की है; शेष सारे काम लोग स्वयं करते हैं।

जनजातीय क्षेत्र में इस संस्कार को **क्राङो** तथा **रालटक** कहते हैं। यहाँ यह पुत्र जन्म के दो वर्ष के भीतर सम्पन्न किया जाता है। इसके लिए शुक्ल पक्ष के सोमवार और शुक्रवार को शुभ माना जाता है। नियत तिथि को सगे-सम्बंधियों और ग्रामवासियों को निमंत्रण दिया जाता है। उनके एकत्र होने पर क्राङो विधिपूर्वक सम्पन्न किया जाता है। शिशु को मामा द्वारा लाए गए वस्त्र तथा फूलों से सजाई टोपी पहनाई जाती है और उसे कमरे के मध्य में एक आसन पर बैठा कर दो बार पूजा की जाती है। उसके बाद बच्चे का मामा कैंची से उसके बाल काटता है और उन बालों को श्वेत वस्त्र में बाँध कर रखा जाता है। उपस्थित सम्बंधी शिशु को उपहार भेंट करते हैं। बच्चे की माता उन्हें पुष्प दे कर उनसे आशीर्वाद लेती है। मामा की ओर से सभी लोगों के लिए एक समय के भोजन व छंग (नशीला पेय) का प्रबंध किया जाता है।

जठालणा : (सो.) दे. खीरटू।

जड़ोलण : दे. जट्टू।

जड़ोलणू : मुंडन संस्कार में मुख्य बच्चे के साथ जिस दूसरे बालक के बाल काटे जाएँ उसे जड़ोलणू कहते हैं।

जनालू : (बि.) दे. जट्टू।

जनेऊ : उपनयन संस्कार। इसके लिए बालक की अवस्था वर्णक्रम से ब्राह्मण के लिए पाँच वर्ष, क्षत्रिय के लिए छह, वैश्य के लिए आठ वर्ष श्रेष्ठ मानी जाती है। चौदह वर्ष की अवस्था से पूर्व यह संस्कार श्रेष्ठ माना जाता है। वैसे यह संस्कार विवाह के अवसर पर भी किया जाता है। उस समय यह 'शांत' के साथ सेहरा बाँधने से पहले सम्पन्न किया जाता है। ब्राह्मण छह धागों का और वैश्य तीन धागों का जनेऊ धारण करते हैं। जनेऊ के एक दिन पहले से बालक को संस्कार के लिए तैयार किया जाता है। लोग अपने

सगे-सम्बंधियों तथा गाँव के लोगों को आमंत्रित करते हैं और रात्रि को सत्यनारायण की कथा तथा हवन आदि करते हैं। दूसरे दिन स्नान से पवित्र होकर बालक उपनयन के लिए प्रस्तुत होता है।

सिरमौर क्षेत्र में जनेऊ पहनने से पहले नाना अथवा मामा उसे घी का चुल्लू पिलाता है, जिसे लड़हौज पीणा कहा जाता है। तब उसे कठोर ब्रह्मचारी जीवन के उपकरण कौपीन, मेखला, ब्रह्मसूत्र, मृगचर्म व पलाश दंड प्रदान किए जाते हैं। आचार्य ब्रह्मचारी को आचार सम्बंधी उपदेश देता है। उसके बाद गायत्री मंत्र का उपदेश देकर कहता है कि ब्रह्मचारी को अपना पोषण समाज में भिक्षाटन के द्वारा करना चाहिए। परन्तु आजकल उपनयन के दिन केवल औपचारिक रूप से ही ब्रह्मचारी भिक्षा माँगता है। यदि यह संस्कार मंदिर में हो तो परिवार के सभी सदस्य वहाँ जाते हैं। हवन-शांति करने के पश्चात् बालक के शरीर पर उबटन लगाया जाता है। उसके बाद स्नान कराया जाता है। संस्कार के समय बटुक केवल लंगोटी पहने रहता है। बड़ और पीपल की छोटी-छोटी टहनियों का गुच्छा उसके हाथ में होता है। शरीर पर वह बाघंबर ओढ़ता है और साधु का वेश धारण कर भिक्षा माँगने का उपक्रम करता है। भिक्षा लेने के बाद काशी जाने की तैयारी करता है, ताकि वहाँ विद्याध्ययन कर सके। इसके लिए वह मंदिर की परिक्रमा करता है और हवन-स्थल पर लौट आता है। बालक गुरुधारण करता है और गुरु शिष्य के कान में गायत्रीमंत्र फूँकता है। जनेऊ को कुछ क्षेत्रों में **बडारन** तथा शिमला में **बडवारन** कहते हैं।

जन्मदिन : जन्म की तिथि। समस्त हिमाचल प्रदेश में जन्मदिन मनाने की प्रथा है। जन्मदिन घर के पुरुषों और पुत्रों का ही मनाया जाता है। कन्याओं का जन्मदिन मनाने का भी अब चलन होने लगा है। जिसका जन्मदिन होता है, उससे प्रातःकाल पूजा करवाई जाती है। जन्मदिन पूजने के लिए घर के पूजागृह की दीवार को गाय के गोबर से लीप कर गोलू (स्थानीय सफेद मिट्टी) से चमकाया जाता है। फिर उस पर तीली और रुई की सहायता से जन्मदिन लिखा जाता है। सामने गोबर का चौका डालकर उस पर अल्पना लिखकर पखड़ी हंडाई यानी पत्तियाँ-पंखुड़ियाँ बिछाई जाती हैं। आँगन, ड्योढ़ी और दहलीज पर भी पखड़ी बिछाई जाती हैं। पखड़ी बिछाने का उद्देश्य देवताओं का आह्वान करना और दुष्टात्मा के प्रवेश से रक्षा करना होता है। कुलपुरोहित या घर की सयानी गेहूँ के आटे या मिट्टी का मारकंडेय ऋषि बनाती है, जिसे चौके पर स्थापित कर

दीर्घायु की कामना सहित पूजा जाता है। इसी के साथ 'बिहाइं' षोडश मातृकाओं और नवग्रहों की पूजा कर नवग्रह ग्रंथि, तिलपात्र और तैलपात्र दान किया जाता है। दीवार पर सप्तवसुधाराएँ दी जाती हैं। इस अवसर पर महिलाएँ गीत गाती हैं –

तू ही कुलजे राणीए, फुलबाड़िया
निर्मल जल चढ़ाओ, जीओ जुग लाडलेया
रतड़ा कुंगू चढ़ाओ, जीओ जुग लाडलेया
रतड़े फूल चढ़ाओ, जीओ जुग लाडलेया
मिठड़े बबरू चढ़ाओ, जीओ जुग लाडलेया...

जन्मदिन के गीत गानेवाली स्त्रियों को भीगे काले चने और शक्कर दी जाती है।

जमालू : (कां.) दे. जट्टू।

जराड़ी : (शि.) दे. जट्टू।

जामणी : (मं.) दे. जन्मदिन।

जाली : गुज्जर जनजाति में शिशु जन्म के चौथे या छठे मास में किया जानेवाला संस्कार। इसमें प्रथम बार बच्चे के सिर के बाल काटे जाते हैं। बाल माँ या उसकी दाई काटती है। यदि सम्भव हुआ तो इस अवसर पर सहभोज भी दिया जाता है, जिसे अकीका कहा जाता है, परंतु सहभोज आवश्यक नहीं है।

जीऊ बोलणा : (मं.) दे. छेड़।

ज़ूठ : (कु.) दे. छोह्त।

जूब देणा : दूब देना। दम्पती के पहला लड़का होने की स्थिति में नाई, दाई, पुरोहित, रिश्तेदार एवं गाँववाले हरी दूब, ऊन या फूल हाथ में लेकर कुछ पैसों सहित बच्चे के माँ-बाप, दादा-दादी को देते हुए ढाल (नमस्कार) कह कर वधाई देते हैं। बच्चे का पिता दूब को अपनी टोपी में रखता है और वधाई स्वीकार करते हुए दी गई राशि को दुगुना कर लौटाता है। जूब को **बदाई** (शि.), **द्रुम देणी** या **द्रुम लुवाणा** (मं.) भी कहा जाता है।

ज़ौटू : (कु.) दे. जट्टू।

जौड़ू : दे. दोए।

झग्गु-टोपु : दे. चोलू-कांगणू।

झांटू : (सि.) दे. पेटोइंतो।

झांसबाँ : एक विशेष बूटी जिसे प्रसूति कक्ष के बाहर इस उद्देश्य से लटका देते हैं, ताकि उस कमरे में कोई भी दुष्टात्मा या बुरी छाया प्रवेश न करे। इस बूटी के सम्बंध में लोक विश्वास है कि यदि इसे रात्रि के समय उखाड़ा जाए तो यह लम्बे साँस लेकर मनुष्य को डराती है।

झाटा : माता के गर्भ से उत्पन्न अवैध पुत्र अर्थात् जारज को झाटा कहा जाता है।

झाला : दे. चकंधू।

झालू : दे. चकंधू।

झिकडुएणा : (कु.) दे. भांडे बाहर।

ञोवा : दे. स्रुङवा।

टालकू : दे. फालड़ू।

टिपड़ा : कुंडली, जन्मपत्री। जब बच्चा पैदा होता है तो इसके जन्म का निश्चित समय लिख कर या ज़बानी याद रखा जाता है और ग्यारहवें या अट्ठाईसवें दिन जब हवन कराया जाता है तो कुलपुरोहित इसके आधार पर बच्चे की कुंडली बनाता है। यह प्रायः पीले रंग के कागज़ पर बनाई जाती है। इस जन्मपत्री में बच्चे के जन्म का समय, दिन तथा तिथि एवं सम्वत् का उल्लेख होता है और जन्म लग्न के अनुसार ग्रहों की स्थिति व दशा आदि दर्शाई जाती है। पंडित द्वारा सुझाए गए जन्म के नाम का उल्लेख भी इसी में होता है। विवाह के समय भी लड़के और लड़की का टिपड़ा दिखा कर ही शादी का मिलान और मुहूर्त निश्चित होता है।

टीप : दे. टिपड़ा।

ठैल अखोड़ : (चं.) अखरोट के आकार का मक्की के आटे का गोला जिसे 'रुहयोज' के वक्त उछाला जाता है।

ठ्वाँह : (मं.) दे. अठवीं।

ठ्वाँही : (मं.) दे अठमाह्याँ।

डोडी अखोड़ फोकणा : (शि., सि.) बच्चे के जन्म के लगभग छह मास के *भीतर विशेषकर प्रथम, तृतीय, पंचम मास में किसी भी शुभ दिन का चयन* कर बालक का सूर्यावलोकन संस्कार करवाया जाता है। बच्चे को पहली

बार बाहर निकालने की खुशी में गाँव के बच्चों में बड़े रोमांचक तरीके से पोस्त-डोंड़ी व अखरोट फेंक कर बाँटे जाते हैं, जिन्हें बच्चे यथाशक्ति उठा कर एकत्र करते हुए आनंदित होते हैं। कहीं इसी दिन बालक को चाँदी के सिक्के से अन्नप्राशन करवाया जाता है और बच्चे का नामकरण भी किया जाता है।

डोरी गंढ : (चं.) प्रति वर्ष जन्म दिवस के अवसर पर लाल डोरी, जो 'बिहाई' के साथ रखी जाती है, में एक गाँठ लगा दी जाती है। यह गाँठ मृत्युपर्यंत प्रत्येक जन्म दिवस पर लगाई जाती है और अंत में उस डोरी को बिहाई के साथ ही बहा दिया जाता है।

ढवावाँ : (शि.) दे. छाउरा।

ढाल़ जाणा : दे. भारा ढोल़ना।

तरागड़ी : कटिसूत्र। यह काले रंग की रेशमी डोरी या चाँदी की ज़ंजीर होती है, जिसमें एक या दो तोले वज़न के घुँघरू पिरोए होते हैं। यह शिशु जन्म के ग्यारहवें या तेरहवें दिन 'गूंतर' के अवसर पर मामा द्वारा लाई जाती है और नज़र से बचाने के उद्देश्य से बच्चे की कमर में बाँधी जाती है। इसे पुरुष भी पहनते हैं। ऐसा विश्वास है कि घर की दहलीज को जितनी बार लाँघा जाता है, आयु उतनी कम होती जाती है, परंतु इसे बाँधने से आयु दीर्घ होती है। इसके साथ पहले कौपीन लगाया जाता था, परंतु अब यह परम्परा लुप्तप्रायः है।

तातो : (सि.) दे. कड़ोज।

तिंगणा : पाजामा। यह छोटे बच्चों को पहनाया जानेवाला पाजामा विशेष है, जिसका आसन बीच में से खुला होता है ताकि बच्चों को मल-मूत्र करने में सुविधा हो और पाजामा बार-बार न उतारना पड़े।

त्रियोआ : (चं.) प्रसव हेतु बिछाया गया बिस्तर।

दंद : दे. दोंद।

दछणा : दक्षिणा। गुरु को सम्मानस्वरूप दी जानेवाली भेंट अथवा यज्ञ, श्राद्ध और धार्मिक कृत्यों के अवसर पर दिए जानेवाले धन को दछणा कहते हैं। पहले जब विद्यार्थी गुरुकुलों में पढ़ने जाते थे तो गुरु और उसके परिवार की सेवा करके विद्या प्राप्त करते थे और विद्याध्ययन समाप्त कर जब घर को लौटने लगते थे तो गुरु को सम्मान और श्रद्धास्वरूप कुछ भेंट

अर्पित करते थे, जो दक्षिणा कहलाती थी। आज भी प्राचीन परिपाटी से पढ़नेवाले विद्यार्थी आषाढ़ मास की पूर्णिमा, जिसे गुरुपूर्णिमा के नाम से जाना जाता है, उस दिन अपने गुरुओं की पूजा करते हैं और सामर्थ्यानुसार दक्षिणा देते हैं।

दूसरी दक्षिणा धार्मिक कृत्यों से सम्बंधित है। कोई भी धार्मिक कार्य बिना दक्षिणा के सम्पन्न व पूर्ण नहीं होता और उसका कोई फल नहीं होता। अतः धार्मिक कृत्यों, यज्ञों, पूजाओं, श्राद्धों और अनुष्ठानों के अवसरों पर यजमान अपनी श्रद्धा व सामर्थ्य के अनुसार स्वर्ण, रजत, वस्त्र और अन्नादि के रूप में पुरोहित को दक्षिणा देता है।

दशरातो : (सि.) दे. दुशुटण।

दसीयोल़ा : दे. दुशुटण।

दाइया रा छीटा : (मं.) जन्म के समय किया जानेवाला एक कृत्य। इसमें बच्चे के जन्म के पाँचवें या सातवें दिन घर की लिपाई करने के बाद दाई जच्चा और बच्चा की आरती उतारती है, ऊन जलाकर टीका लगाती है और गोमूत्र का सारे घर में छिड़काव करती है।

दाई : धाय। वह महिला जो गर्भवती को बच्चा जनने में मदद देती है। प्राचीनकाल से परम्परागत दाई का काम प्रसूति के काम में सहयोग करना रहा है। उस कार्य के लिए इसे वस्त्र, धन और अन्न 'लाग' रूप में दिया जाता है। पुत्र पैदा होने की स्थिति में लाग की मात्रा बढ़ती है। दाइयाँ ऐसी जड़ी-बूटियों का ज्ञान भी रखती आई हैं, जिनसे गर्भवती का बच्चा आसानी से जन्म ले सके और देर तक उसे प्रसव पीड़ा न भोगनी पड़े। दाइयाँ प्रायः अपामार्ग या पुनर्नवा की जड़ों का रस इसके लिए प्रयोग करती हैं। परंतु इन रसों का प्रयोग बहुत सावधानी से करना होता है अन्यथा गर्भाशय बाहर आ सकता है। दाई को **अपी** (कि.), **सज़ाइण** (कु.) भी कहते हैं।

दाबड़ा : (ऊ.) जच्चा के लिए मायके से आया पौष्टिक खाद्य पदार्थ। घी में आटा भूनकर उसमें मेवे डालकर स्वादिष्ट पंजीरी बनाई जाती है, जिसे दाबड़ा कहते हैं। यह खाद्य केवल पुत्री के जन्म लेने पर ही भेजा जाता है।

दुंदवाणी : (सि.) शिशु के दूध के दाँत निकलते समय लगनेवाली टट्टियाँ। ऐसे समय में शिशु की बुआ एक विशेष प्रकार के घास की माला बनाकर

उसके गले में पहनाती है या उसके मसूढ़ों पर उंगली फेरती है जिससे दाँत आसानी से निकल जाते हैं।

दुग-ज़े : लामाओं द्वारा अभिमंत्रित किया गया गुग्गुल, सरसों और काले गंधक का मिश्रण। इसे नामकरण संस्कार किए जाने के पश्चात् लामा नवजात शिशु को देता है। जन विश्वास है कि इसे जलाकर धुआँ किया जाता है, जिससे प्रेतात्मा दूर रहती है।

दुपस्ता : (सि.) दे. दुप्पराणी।

दुप्पराणी : द्वि प्राणी। गर्भवती। जब स्त्री गर्भधारण करती है तो उसके पेट में दूसरा जीव पल रहा होता है। निःसन्देह दो प्राणी होने के कारण इसका दुप्पराणी नाम पड़ा है। इसे **पैर भारी**, **ध्याड़े सिकणा**, **छरालिदी** (कु.) भी कहते हैं।

दुशुटण : (सि.) दसठौन। दस दिवसीय जनन अशौच की निवृत्ति। घर में बच्चा होने की स्थिति में लड़की होने पर प्रायः दस दिन तथा लड़का होने पर बीस दिन बाद यज्ञ-हवन आदि द्वारा शुद्धि करवाकर यथासामर्थ्य या यथेच्छा परिजनों, रिश्तेदारों व ग्रामवासियों को बुलाकर सहभोज का आयोजन भी किया जाता है। प्रसव के बाद दसवें दिन होने के कारण इस संस्कार को दुशुटण कहते हैं।

दुहू : (कि.) सोने या चाँदी के बने कंगन। इन्हें नवजात शिशु के नाना-नानी 'कारताङ' उत्सव के दिन उपहार स्वरूप बच्चे को देते हैं।

दू : (कि.) एक व्यंजन। यह आटे को पतीले में उबलते हुए पानी में घोल कर बनाया जाता है। घोल को तब तक हिलाना पड़ता है, जब तक पानी पूरी तरह सूख न जाए। ठंडा होने पर इसके छोटे-छोटे गोले बनाए जाते हैं, जिन्हें घी के साथ खाया जाता है। पाचन में हल्का एवं पौष्टिक होने पर इसे प्रसूता को सात दिनों तक खिलाने की प्रथा है। इसके अतिरिक्त उत्सवों एवं त्योहारों के अवसर पर इससे अतिथियों का सत्कार भी किया जाता है।

दूस दिखाणा : (शि.) दे. धुप्पा रिहाणा।

दोंद : दाँत। बच्चे के जन्म के पश्चात् लगभग छठे या सातवें मास में दूध के दाँत निकलने आरम्भ होते हैं, जो लगभग पाँच-छह वर्ष की आयु में टूटते हैं। बचपन के दाँत निकलते समय बड़ा कष्ट देते हैं। दाँत बिना कष्ट के

निकल जाएँ, इस उद्देश्य से माताएँ अनेक प्रकार के उपचार करती हैं। मंडी व कुल्लू में विश्वास है कि यदि बच्चे की बुआ उसके मसूड़े पर अगुलि फेर दे तो बच्चे के दाँत आराम से निकल आते हैं। यदि ऊपर के जबड़े के दाँत पहले निकलें तो मामा के लिए अशुभ माना जाता है। मामा इसका उपाय बच्चे के लिए छत से कपड़े फेंक कर करता है। ज़िला कांगड़ा में ऐसे दाँत सबसे पहले सगे मामा को नहीं दिखाए जाते, बल्कि निम्नजाति के व्यक्ति को बच्चे का मामा बनाया जाता है, जो चाँदी के सिक्के से बच्चे के दाँत तीन बार दबाता है। बच्चे के जन्म से ही दाँत होना तथा आठवें महीने में दूध के दाँत निकलना भी अशुभ माना जाता है। मंडी में इसके निवारण हेतु मामा द्वारा बच्चे को काले कपड़े व गुड़ की भेली दी जाती है।

दोए : (कु.) जुड़वाँ, एक साथ जन्मे दो या अधिक बच्चे। आमतौर से महिलाएँ एक समय में एक ही बच्चे को जन्म देती हैं, किन्तु कभी-कभी एक साथ दो या तीन बच्चे भी उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे बच्चे यदि एक ही नाभि में जुड़े हों तो इनमें से कोई एक अगर बीमार हो जाए तो प्रायः बाकी बच्चों के भी बीमार होने की आशंका रहती है।

दोग्गा जीऊ : (शि.) दे. दुप्पराणी।

दोथ-साँझ : गर्भावस्था का नौवाँ-दसवाँ महीना। इसमें बच्चे के जन्म की सम्भावना रहती है। इस समय गर्भवती स्त्री को किसी भी कार्य के लिए घर से दूर नहीं भेजा जाता। सिरमौर में इसे **नुआसे-पुर्वासे** कहते हैं।

द्रभैणा : द्रुभ देने के बदले में दिया जानेवाला द्रव्य। दे. जूब देणा।

द्रुभ देणी : दे. जूब देणा।

द्रुभ लुवाणा : (मं.) दे. जूब देणा।

द्वारा बाहर काडणा : (कु.) नामकरण संस्कार। यहाँ निष्क्रमण और नामकरण दोनों मिले-जुले संस्कार हैं। यह संस्कार जन्म के तीसरे या पाँचवें महीने होता है। तब तक बच्चे को घर की ड्योढ़ी से बाहर नहीं निकाला जाता है। संस्कार के दिन मुख्य द्वार के साथवाले आँगन को गोबर से लीपा-पोता जाता है। गोबर से ही द्वार के साथ अर्द्धगोलाकार रेखा खींची जाती है, जिसके मध्य गोबर का पिंड रखा जाता है। इसे दूर्वा और फूलों से सजाया जाता है। निकट सम्बंधी स्त्रियाँ एकत्र होती हैं। बच्चे को नहला कर मामा के घर से आए वस्त्र पहनाए जाते हैं। माँ बच्चे को गोद में लेकर द्वार की पूजा करती है। तदुपरांत पुरोहित बच्चे का नाम बताता

है और माता वह नाम एकत्रित सम्बंधियों को बताती है। लेकिन कई स्थानों पर नामकरण संस्कार जन्म के अट्ठाइसवें दिन जन्म नक्षत्र की पूजा के अवसर पर होता है और घर से बाहर खुले आकाश के नीचे निकालने की रस्म किसी शुभ दिन में बाद में होती है। उस रोज़ बच्चे को निकटस्थ देव स्थान तक ले जाया जाता है और गाँव में 'मूड़ी', मिठाई आदि बाँटी जाती है।

कुल्लू के निरमंड क्षेत्र में बच्चे की बुआ यह नाम नवजात शिशु के कान में कहती है–*फलाँ नाओं डाहौ, सूने ओ रूपौ पाऔ डाहौ* । अर्थात् तुम्हारा फलाँ नाम रखा गया और तुम सोना और चाँदी पाओ यानी धनाढ्य बनो।

धुप्पा रिहाणा : (कु.) सूर्यावलोकन संस्कार। नवजात शिशु की दृष्टि आरम्भ में अस्थिर होती है। जब वह ठीक ढंग से देखने लगता है तो उसे सूर्य के दर्शन करवाए जाते हैं। यह सूर्य देव के अनंत प्रकाशयुक्त पिंड से नवजात शिशु के प्रथम साक्षात्कार का संस्कार है। इस अवसर पर गृह के अंदर नवग्रह पूजन, गणपति, सप्तर्षि आदि सभी देवताओं का कुलजा सहित आह्वान और स्थापना की जाती है। जच्चा अपने बच्चे के साथ दहलीज पर खड़ी होती है। शिशु का पिता उसके पीछे खड़ा होता है। वहाँ से वह एक बड़े आकार के रोट में, जिसके मध्य भाग में छिद्र किया होता है, स्थानीय झाड़ी से बनाए धनुष से तीर मारता है। कन्या होने पर तीर नहीं मारा जाता। उसके बाद प्रसूता बरामदे में आती है और बच्चे का मुँह सूर्य की ओर करती है, ताकि सूर्य की किरणें बच्चे के मुँह पर पड़ें। सूर्यावलोकन के पश्चात् वह सूर्य को जल चढ़ाती है। तब सभी उपस्थित मित्रों और सम्बंधियों को रोट बाँटा जाता है और भोज दिया जाता है।

लाहुल में शिशु जन्म के दो सप्ताह के भीतर शुक्ल पक्ष में किसी शुभ दिन शुद्धि के बाद नवजात शिशु को नहलाकर, श्वेत चादर में लपेट कर, पूर्व दिशा में किसी सम्बंधी या पड़ोसी के घर तक ले जाया जाता है। शिशु को उसकी माता या अन्य महिला जिसके माँ-बाप ज़िंदा हों, जिसे स्थानीय लोग फा-मा छड़ डी कहते हैं, उठाती है। शिशु के माथे पर काला टीका लगाया जाता है ताकि वह बुरी नज़र से बचा रहे। गाँव के बच्चों को बुलाकर उन्हें भोजन व मिष्टान्न खिलाते हैं।

धोरूण : (सि.) दे. आओल।

ध्याड़े सिकणा : (मं.) दिन टलना। अपेक्षित माहवारी के दिन आगे टलना। इससे गर्भाधान का अनुमान हो जाता है।

नरवालु : (कु.,मं.,शि.) मुंडन संस्कार से सम्बंधित स्वागत परम्परा। भीतरी पहाड़ी क्षेत्रों में मुंडन संस्कार के समय जब मातुल परिवार को आमंत्रित किया जाता है तो मामा के साथ उसके गाँव से अन्य बहुत से लोग आते हैं। इन सब का बाजे-गाजे सहित विशेष स्वागत किया जाता है। इस समारोह में एक समय की धाम मामा द्वारा दी जाती है, जिसमें बकरा या मेढ़ा काटा जाता है। अगले दिन मामा के सम्मान में भानजे का परिवार बकरा या मेढ़ा काटता है।

नरैंघ : (कु.,मं.) दे. आशोंग।

नशरावाँ : ब्राह्मणों को दान में दिया गया अनाज, दाल आदि। इससे बुरे ग्रहों का प्रभाव दूर होता है। यह जन्मदिन अथवा अन्य अवसरों पर ग्रहशांति हेतु दान किया जाता है।

नसोएगी : दे. लैरथी।

नसोगी : दे. लैरथी।

नाऊंकरण : नामकरण। यह संस्कार अक्सर शुद्धि के दिन किया जाता है। नाम प्रायः जन्म राशि के अनुसार होता है। पुरोहित या बच्चे का बाप शंख से बच्चे के कान में चुना हुआ नाम बोलता है। वह कहता है– हे बालक! तेरा फलाँ नाम रखा है, तुम्हारी लंबी आयु हो। पिछड़े क्षेत्रों और वर्गों में पहले यह संस्कार नहीं मनाया जाता था। वहाँ जिस वार को या जिस महीने में बच्चा पैदा हुआ हो, उसी के आधार पर बच्चे का नाम रखा जाता था, जैसे–सुआरू, मुंगलू, बुधू, ब्रेस्तु या कातकु, मुंगरू, पोषु, माघु आदि या बच्चे के खास गुण देखकर, जैसे– कालु, शेतु, लाह्नु (कमज़ोर), थुलू (मोटा) आदि। लेकिन आजकल ऐसे नाम रखे जाने कम हो गए हैं।

नाल़ : (कि.) दे. नालु।

नाल़ा देणा : (सि.) जब बच्चा चार-छह महीने का हो जाता है तब से लेकर उस के सात-आठ वर्ष का होने तक माताएँ उसे ग्रीष्म ऋतु में बैसाख मास से आषाढ़ तक प्रतिदिन थोड़े समय के लिए नाले के नीचे सुलाती हैं। किसी पानी के स्रोत से केले के छिलके अथवा अन्य किसी वस्तु के नाले द्वारा एक-डेढ़ फुट की ऊँचाई से पानी की धार बाँधी जाती है, जिसका जल

बालक के तालु के ऊपर गिरता रहता है। इसे आरम्भ करने के लिए पंडित द्वारा पहले शुभ दिन चुना जाता है। बालक इसके नीचे आराम से सोया रहता है। यह साधारणतः दिन के समय किया जाता है, परंतु विशेष बीमारियों अथवा अन्य दशाओं में रात्रि में भी बालक को सुलाया जाता है। कभी-कभी बड़ी आयु के लोग भी नाले के नीचे सोने का आनंद लेते हैं। लोक विश्वास है कि नाला देणा से बालक गर्मी के कारण उत्पन्न होनेवाले रोगों, जैसे–दस्त, मरोड़ तथा आँखें दुखना आदि से बचे रहते हैं। उनकी दृष्टि बड़ी उम्र तक अच्छी बनी रहती है और अधिक ठंड को सहने की शक्ति बढ़ती है। शिमला तथा सोलन में इसे **नाले सुतणा** कहते हैं।

नालु : नाल जिससे माँ-बच्चा दोनों जुड़े होते हैं। गर्भाशय से बाहर आने के कुछ समय बाद तक बच्चा बच्चेदानी से जुड़ा रहता है। यह नाल एक ओर गर्भाशय से और दूसरी ओर बच्चे की नाभि से जुड़ी रहती है। जच्चा के प्रसव के कुछ समय पश्चात् यह नाल गर्भाशय से बाहर आ जाती है, जिसके किनारे पर गोलाकार मल लगा रहता है। इसका जल्दी बाहर आना ज़रूरी होता है, अन्यथा जच्चा को विष व्याप्त होने की आशंका रहती है। बाहर आने पर इसका थोड़ा-सा भाग बच्चे की नाभि की ओर छोड़कर इसे सख्ती से धागे से बाँध कर काट दिया जाता है। परम्परानुसार दाई इसे चाँदी के रुपए से काटती थी और इसके बदले में उसे वस्त्र और पैसे दिए जाते थे। परंतु अब यह काम सरकारी नर्सें या दाइयाँ करती हैं। घर में प्रसव होने पर इसके शेष भाग को किसी मिट्टी के बर्तन में डाल कर गोशाला के कोने में दबा दिया जाता है। कुछ क्षेत्रों में इसे घर के भीतर दबाना अशौच माना जाता है। वहाँ इसे कोटर या किसी सुरक्षित स्थान में दबा दिया जाता है, ताकि यह किसी तांत्रिक या दुष्ट व्यक्ति के हाथ न लगे।

लाहुल में शिशु की नाल को दाई एक तेज़ चाकू से लकड़ी की बनी तकली यानी पङ पर रख कर काटती है। काटी गई नाल को श्वेत-नर्म ऊन से बाँध दिया जाता है। कुछ दिनों बाद काटी हुई नाल, जो शिशु की नाभि के साथ चिपकी रहती है, सूखकर गिर जाती है, उसे कपड़े में बाँधकर तावीज़ की शक्ल में बच्चे के कपड़े के साथ सिल दिया जाता है। किन्नौर में बच्चे की नाभि की नाल को दो तरफ से बाँध कर मध्य से काटते हैं, परंतु पूह में पुत्रोत्पत्ति पर नाल को ऊपर से नीचे की तरफ और पुत्री के पैदा होने पर नाल नीचे से ऊपर की ओर काटी जाती है। विश्वास किया जाता

है कि ऐसा करना मूत्राशय के लिए उपयुक्त होता है। सिरमौर में इसे चाँदी की डब्बी में डाल कर बच्चे के गले में बाँध दिया जाता है। लोक विश्वास है कि इसके गुम हो जाने से उसका जीवन छोटा हो जाता है।

नाले़ सुतणा : (शि.,सो.) चार-छह महीने की आयु के बच्चे को सात-आठ वर्ष का होने तक दिन में नाले के नीचे सुलाना। दे. नाला़ देणा।

नाहोण : दे. नुहाण।

निम्मा लगणा : (मं., शि.) दे. छेड़।

निरवाह : (शि.) दे. छाड़ छाडणी।

निरसु : चपटा व नर्म पत्थर। इस पर बादाम, छुहारा, जायफल आदि घिस कर बच्चे के लिए घुट्टी तैयार की जाती है। इसे ध्वनि भेद से **निरस** या **निरशु** भी कहते हैं।

निहाइणा : (कु.) दे. भांडे बाहर।

नुआसे-पुर्वासे : (सि.) दे. दोथ-साँझ।

नुसरौएँ : बच्चे के जन्मदिन के अवसर पर ग्रह-शांति के लिए पंडित को दिया जानेवाला अन्न और दालों का दान।

नुहाण : (मं.) स्नान। प्रजनन नाल काटने और जच्चा की जरायु निकलने के बाद स्त्रियाँ जच्चा-बच्चा को नहलाती हैं। इस अवसर पर बधाई गीत गाए जाते हैं। इसे **नाहोण** भी कहते हैं।

नुहार : (कु.) दे. आशोंग।

नौबत : नौ ताल, मंगल सूचक बाजा। बड़े घरों में जब बच्चा पैदा होता है तो उस समय नौबत बजती है।

नौहगुई : (कु.) दे. भारा ढोल़ना।

न्हौण : (बि.,मं.) दे. लटधिंघा।

पंजगव्य : गाय के दूध, दही, घी, गोबर और मूत्र को मिलाकर तैयार किया गया पवित्र पदार्थ। इसका प्रयोग हर धार्मिक कार्य में होता है। 'छठ' संस्कार के दिन इसे मंत्र पढ़कर पूरे घर में छिड़का जाता है। ऐसा दुष्ट आत्माओं को भगाने के उद्देश्य से किया जाता है।

पंजाप : (ऊ.,ह.) दे. गूंतर।

पटबाल़ : (शि.) दे. कनबाल़।

पड़छावाँ : (बि.) दे. छाउरा।

पतरेला पाणा : (मं.) निःसंतान व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति की संतान को विधिवत् गोद लेना। ऐसे बच्चे को वास्तविक संतान की भाँति सभी प्रकार के अधिकार प्रदान किए जाते हैं और वह उनकी सम्पत्ति का अधिकारी होता है। गोद लेने का मुख्य उद्देश्य अपनी जायदाद और वंश को कायम रखना होता है। गोद लिया गया व्यक्ति अपने जन्मदाता माता-पिता की सम्पत्ति का अधिकारी नहीं होता।

पत्तलु : (ऊ.) पत्तल। शिशु जन्म के शुद्धिवाले दिन भात को पत्तल पर डालकर साथ में 'गोहरड़ा' रखा जाता है और देवी-देवताओं के निमित्त चढ़ाने के बाद सभी मित्रों व सम्बंधियों को बाँटा जाता है। किसी कारणवश यदि **पंजाप** वाले दिन पत्तलु न दिया जा सके तो बाद में भी शुभ दिन देखकर दिया जाता है।

पराल़ : (कु.) पशुओं के गाहने के बाद बचा जौ व धान का नरम सूखा भूसा या पराल। प्रसव के तीसरे, पाँचवे या सातवें दिन जब प्रसूता को गोशाला से ऊपर की मंज़िल में लाया जाता है तो उसके लिए पराल़ का बिछौना बनाया जाता है। यह गरम और नरम होता है। उष्णता के साथ-साथ इसका उद्देश्य अधिक रक्तस्राव के कारण बिछौना खराब न होना भी है। प्रसूता अपने बच्चे के साथ इस पर पाँच या सात दिनों तक सोती है। उसके बाद पराल उठा कर कहीं दूर फेंका जाता है। इसे जलाया या दबाया नहीं जाता।

पांजरोग पाणा : (सि.) घर में प्रसूति हो जाने पर हुई अशुद्धि को दूर करने के लिए जल, गोमूत्र, घृत, दूध आदि को मिलाकर पंडित द्वारा अभिमंत्रित करवा कर तीसरे-पाँचवें तथा दसवें दिन घर के अंदर-बाहर छिड़क कर शुद्धि की जाती है। इसे ही पांजरोग पाणा कहते हैं।

पाणी भरणा : (ऊ.,कां.,ह.) जन्म सम्बंधी संस्कार। सूतक की शुद्धि के बाद जच्चा व अन्य औरतें सायंकाल में हवन की भस्म को बहते पानी में छोड़ती हैं तत्पश्चात् सिर पर पानी का कलश लेकर गीत गाते हुए चौके में प्रवेश करती हैं। इसे पाणी भरणा कहा जाता है। इसके बाद जच्चा चूल्हा-चौका कर सकती है।

पाथा भोरना : (सि.) पुत्र उत्पत्ति के समय एक पात्र को, जिसमें पाथा भर (लगभग 5 सेर) अन्न आ जाए, गेहूँ के दानों से भर कर दान करने के लिए सुरक्षित रख दिया जाता है तथा शुद्धिकरण के दिन हवन के बाद अन्न से परिपूर्ण उस पात्र को ब्राह्मण को दे दिया जाता है।

पिञा : (कि.) उबटन। नवजात शिशु की मालिश करने के लिए बादाम या खूबानी की गिरी को पीस कर बनाया गया उबटन। किन्नौर में जलवायु कठोर होने के कारण शिशु को जन्म के बाद काफी समय तक कम ही नहलाया जाता है। पानी के स्थान पर पिञा से मालिश की जाती है। इससे शरीर के मैल के साथ-साथ छोटे-छोटे बाल भी झड़ जाते हैं, लेकिन अब बहुत ही कम लोग इस विधि को अपनाते हैं। इसका स्थान अब आधुनिक प्रसाधनों ने ले लिया है।

पिन्नी : जंच्चा को दियां जानेवाला पौष्टिक आहार। गरी, दाख, बादाम, छुहारे, चारमग्ज़, सौंठ आदि सूखे मेवों को कूट कर इन्हें घी में आटे, सूजी या मूंग के आटे के साथ भूना जाता है। थोड़ा ठंडा होने पर इस की छोटी-छोटी पिन्नियाँ बनाई जाती हैं। यह प्रसूता को लड़की होने पर तीन दिनों तक और लड़का होने पर पाँच दिनों तक दूध के साथ खिलाई जाती है। इसे **सुंड** और **बल्ह** भी कहते हैं।

पुआसे : (मं.) उपवास रखने का लोक प्रसिद्ध संस्कार। संतान प्राप्ति की इच्छुक स्त्रियाँ शक्ति के मंदिरों में पुआसे पड़ती हैं। वे निराहार रहती हैं तथा मात्र जल व पेयों पर निर्भर करती हैं। भरपेट भोजन वर्जित है। पीने के लिए पानी भी मंदिर परिसर में स्थित जल स्रोत–बावड़ी या झरने से लिया जाता है। गुड़मिश्रित जल देवी को स्पर्श करके प्रसाद रूप में दिया जाता है। स्त्रियाँ निराहार रह कर मंदिर के साथ के चौबारे या ऐसे ही किसी स्थान में बैठती हैं तथा जप-स्तुति व अन्य पूजन-अर्चन करती हैं। यह देखा गया है कि देवी जिन स्त्रियों पर कृपा करती है उन्हें कन्या या अन्य रूपों में स्वप्न में दर्शन देती है तथा संतान प्राप्ति का आशीर्वाद देती है। विश्वास किया जाता है कि यदि स्त्री को सपने में आम, सेब, केला दिखाई दे तो पुत्र उत्पन्न होता है और यदि नाशपाती, भिंडी, तोरई आदि दिखाई दे तो कन्या पैदा होती है।

पुराङ : (कि.) नज़र उतारना। पैदा हुआ शिशु यदि आवश्यकता से ज़्यादा रोए तो उसकी नज़र उतारी जाती है। पुराङ में विशेष मंत्र का उच्चारण

किया जाता है, यथा–*दिरिङ आई जीवा ला लापकन, इञन, जोतकन, गोङबु-गोङमु डिवो-डिम्मु, शिंडी-सौंडी, थामचेत की खा ला ज्योबचिक धूरऽऽऽ धूर* ... और चूल्हे की राख, मिर्च का चूरा हाथ में लेकर बच्चे के शरीर पर से तीन बार घुमाया जाता है। मंत्र का अर्थ है कि बच्चे के बारे में किसी भी प्रकार के बुरे विचार रखनेवाले को धिक्कार है। पुराङ किसी नए कार्य को आरंभ करने से पूर्व भी किया जाता है।

पूज : (मं.) शिशु के जन्म पर कुलज या देवी-देवता को चढ़ाने के लिए ले जाई जानेवाली वस्तुएँ।

पेटोइंतो : (सि.) पेट में लाया हुआ बच्चा। जब पति-पत्नी के विचार आपस में न मिलते हों तो वे सम्बंध विच्छेद कर सकते हैं। सम्बंध विच्छेद की स्थिति कभी-कभी गर्भ धारण करने के बाद भी उत्पन्न हो जाती है। फिर सहमति पूर्वक जब कोई अन्य व्यक्ति उस महिला से विवाह करता है तो पेट में साथ आए बच्चे को पेटोइंतो या **झांटू** कहते हैं।

पैर भारी : दे. दुष्पराणी।

पोइतरी : (सि.) दे. फालड़ू।

पौड़ा : (शि.) दे. बाउड़।

फणूणू : (चं.) बच्चे को कुदृष्टि से बचाने के लिए किया जानेवाला एक टोटका। बच्चे को स्नान करवाने के उपरांत थाली या किसी अन्य पात्र में पानी ले कर उसमें काले घोड़े की नाल या चिमटा गर्म करके डाला जाता है। बच्चे को हाथों में पकड कर इसका धुआँ दिया जाता है। इससे बच्चे को किसी की बुरी नज़र नहीं लगती और बुरे साये का प्रभाव भी खत्म हो जाता है।

फालड़ू : नवजात शिशु की कमर पर बाँधने का वस्त्र विशेष, जिससे उपस्थ और नितंब ढके रहते हैं। इसे बच्चे के टट्टी-पेशाब आदि के लिए लपेटा जाता है, ताकि बिस्तर या अन्य वस्त्र खराब न हों। इसे प्रसव से पहले ही सिल कर रखा जाता है। इसे बनाने के लिए कपड़े के चौकोर टुकड़े को त्रिकोणाकार में सिल कर आगे की ओर एक फंदा लगाया जाता है और बाँधते समय दोनों ओर के कोनों को इस फंदे में से गुज़ारते हुए गाँठ लगाई जाती है। इसके स्थान पर साधारण कपड़े का प्रयोग भी किया जाता है, जिसे तिकोना तह कर बिना सिले पहनाया जाता है और तीनों कोनों को बाँधा जाता है। इसे बच्चे को तीन-चार महीने की आयु तक पहनाया जाता

है। इसके वाद पाजामे पहनाए जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में फालड़ू उस नर्म और मुलायम वस्त्र को भी कहा जाता है, जिसमें नवजात शिशु को पूरा लपेटा जाता है। यह एक मीटर लम्बा होता है, जो चारों ओर से सिला होता है। जो बच्चा बड़ा हो कर शरारती निकलता है, उस पर फालड़ू शब्द को मुहावरे के रूप में प्रयुक्त किया जाता है कि *ए ता फालड़ू रा बिगड़ु हुंदा सा* यानी यह तो बचपन का ही बिगड़ा हुआ है। फालड़ू को **पोइतरी, फालतरु, लंगोट**, **गुहातरू** और **टालकु** भी कहा जाता है।

फालतरु : (मं.) दे. फालड़ू।

बङ-दङ : (ला.) सूतक अवस्था। लाहुल-स्पीति में शिशु के जन्म लेते ही परिवार में एक सप्ताह या कुछ अधिक दिनों के लिए सूतक अवस्था आरम्भ हो जाती है। इन दिनों में जच्चा के बिस्तर या सिरहाने के नीचे उस चाकू या छुरी को रखने का रिवाज़ है जिससे नवजात शिशु का नाल-छेदन किया गया हो। इस प्रक्रिया द्वारा पैशाचिक शक्तियों को दूर रखा जाता है। बङ-दङ अवस्था में घर के पुरुष वहाँ खाद्य पदार्थ नहीं खाते। वे गाँव में किसी सम्बंधी या पड़ोसियों के घर खाना खाते हैं; परंतु स्त्रियों के लिए घर पर खाना वर्जित नहीं है। चौथे या पाँचवें दिन किसी लामा को बुलाकर शुद्धिकरण पूजा करवाने के पश्चात् सब सदस्यों के लिए घर में भोजन बनता है। स्वांगला जाति के लोग भट्ट (पुरोहित) द्वारा अभिमंत्रित गोमूत्र को घर में छिड़क कर शुद्धि करते हैं।

बङ्री : (कि.) पुत्र जन्म पर मनाया जानेवाला उत्सव। ऊपरी किन्नौर में सन्तानोत्पत्ति के बाद उत्सव का आयोजन किया जाता है। देवता को भेंट स्वरूप रुपए या बलि के लिए बकरा दिया जाता है। समस्त रिश्तेदारों और ग्रामवासियों को इस अवसर पर आमंत्रित किया जाता है। यह एक प्रकार का सामूहिक भोज होता है। प्रथम संतान की उत्पत्ति पर इस उत्सव का आयोजन आवश्यक है। परंतु उसके बाद की संतान होने पर यह परिवारवालों की इच्छा पर निर्भर है। इस अवसर पर निकट सम्बंधी समस्त महिलाएँ पारम्परिक आभूषणों से सुसज्जित होकर घी से बने ङङाया (पिरामिड) को थाली में सजा कर उत्सववाले घर में आती हैं तथा अन्य ग्रामवासी थालियों में अनाज भर कर उसके शिखर पर नमक का छोटा-सा ढेला रख कर लाते हैं। श्वेत नमक को पवित्र एवं शुभ माना जाता है। ग्रामवासी शिशु के परिवारवालों को फूल एवं पैसे भी भेंट करते हैं, फिर नाच-गाने एवं भोज का आयोजन होता है।

बडवारन : (शि.) दे. जनेऊ।

बडवारनू : यज्ञोपवीत संस्कार में मुख्य बच्चे के साथ जो दूसरा बालक यज्ञोपवीत धारण करे उसे बडवारनू कहते हैं।

बडारन : दे. जनेऊ।

बदाई : (शि.) दे. जूब देणा।

बधाई : ब्रह्मताल। लड़का पैदा होने पर परिवार और गाँव की महिलाएँ इकट्ठी को कर बधाई गीत गाती हैं। इन गीतों में नवजात के दादा-दादी, ताया-ताई, माँ-बाप, नाना-नानी, मामा-मामी आदि को शुभ कामनाएँ दी जाती हैं। इस अवसर पर उच्च वर्ग के लोग लड्डू और निम्न वर्ग के लोग गुड़ बाँटते हैं।

बधावा : दे. बधाई।

बन्हपट्टी : (मं.) बन्ध+पट्टिका। ऊन या सूत की बनी पट्टी जो लगभग दस इंच चौड़ी तथा चार मीटर लम्बी होती है, उसे प्रसव के बाद प्रसूता के पेट में बाँधा जाता है। इससे जच्चा को ठंड नहीं चढ़ती और वायु के प्रभाव से उसका पेट भी नहीं फूलता। यह गर्भवती के लिए सातवें महीने मायके से आती है।

बरावाँ : दे. अठवीं।

बल्ह : बल। जच्चा के लिए बलवर्द्धक खाद्य पदार्थ। दे. पिन्नी।

बाँधा : बंधन। कोई मन्नत मान कर सवा पाँच रुपये या श्रद्धानुसार इससे अधिक राशि को उठा कर किसी कपड़े या रूमाल में बाँध कर रखा जाता है। देवी-देवता के नाम पर बकरा, मुर्गा आदि भी बाँधा के रूप में रखे जाते हैं। मन्नत पूर्ण होने पर यह बाँधा सम्बंधित देवी-देवता को चढ़ाया जाता है। यदि इसे चढ़ाने में भूल-चूक हो जाए तो अनिष्ट होने की आशंका बनी रहती है।

बाइंडे बैठणा : (सो.) दे. भांडे बाहर।

बाइरे गड़ाउणो : (शि.) दे. द्वारा बाहर काडणा।

बाउड़ : (शि.) घर की पहली मंज़िल जिसमें परिवार के सदस्य रहते हैं। इसे पवित्र माना जाता है। रजस्वला को तीन दिनों तक तथा प्रसूता को ग्यारह दिनों तक बाउड़ में प्रवेश से परहेज़ किया जाता है।

बाउड़ी-आशणो : (शि.) ऊपरी मंज़िल में आना। प्रसव प्रायः धरातल मंज़िल की गोशाला में करवाया जाता है और ग्यारह दिनों तक प्रसूता को वहीं रखा जाता है। ग्यारहवें दिन घर को गोमूत्र आदि छिड़ककर पवित्र किया जाता है और जच्चा-बच्चा को ऊपर की मंज़िल में लाया जाता है। इस मौके पर हलवा-पूरी आदि यथा सम्भव पकवान तैयार करके इष्ट मित्रों को खिलाए जाते हैं।

बाड़ी : प्रसूता को खिलाया जाने वाला भोजन। गुड़वाले उबलते पानी में गेहूँ का आटा डालकर उसे लकड़ी के डंडे से तेज़ी से घुमाते हुए तीव्र आँच पर पकाकर देसी घी के साथ प्रसूता को बीस दिनों तक खिलाया जाता है। यह पौष्टिक और सुपाच्य होता है।

बिंडलू भानणे : (मं.) दे. कीला भानणी।

बिंदु : जन्म दिवस के अवसर पर सम्बंधियों में बाँटी जानेवाली मिठाई और हलवे आदि को बिंदु कहते हैं।

बिहाई : भट्टारिका। पुत्र जन्म की स्थिति में 'गूंतर' वाले दिन गोबर तथा मिट्टी की शंकु आकार की एक मूर्ति बनाई जाती है जिसके अंदर कौड़ी, सुपारी, रुई और चाँदी का रुपया डाला जाता है। इसे बिहाई कहते हैं। पुरोहित इसकी पूजा करता है और स्त्रियाँ मंगल-गीत गाती हैं–

बिध-बिहाई माता बिध बिहाई
तू म्हारे घर आई माता, तू म्हारे घर आई
बधाई हो माता तेरी बधाई

इसे एक पिटारी में रखा जाता है, जहाँ परिवार के अन्य पुरुष सदस्यों की बिहाइयाँ भी रखी होती हैं। इसकी प्रत्येक जन्म दिवस पर पूजा की जाती है। इसका टूटना अशुभ माना जाता है। यदि यह किसी दुश्मन के हाथ में पड़ जाए तो वह उस पर जादू-टोना करके सम्बंधित व्यक्ति को हानि पहुँचा सकता है। इसे जातक का प्राणपिंड माना जाता है और मरने पर इसे नदी में बहाया जाता है।

चम्बा में जन्म दिन पर मिट्टी या गाय के गोबर की लगभग पाँच इंच लम्बी और डेढ़ इंच चौड़ी पाँच या सात पिन्नियाँ बनाई जाती हैं। इन्हें मंदिर या घर की दीवार पर लगाकर दूर्वा, फूल, दूध से पूजा जाता है।

बूट : (कां.) दे. ल्यार।

बेच़णा : बेचना। यदि किसी स्त्री के पूर्व शिशु मरते आए हों तो उपचार के

लिए सद्यजात शिशु को नड़ या नाथ जाति की स्त्री की गोद में डाल दिया जाता है और फिर उसे अन्न, पैसे और वस्त्र देकर उससे वह बच्चा खरीदा जाता है। विश्वास किया जाता है कि ऐसा करने से उस स्त्री की भावी संतानें बच जाती हैं।

बेहाई : (मं.) दे. बधाई।

बोदाय : (सि.) 'बधाई' का सूचक शब्द। किसी के घर पुत्र होना निःसंदेह बधाई का सूचक है। इस दृष्टि से अब यह शब्द पुत्रोत्पत्ति के अर्थ में ही रूढ़ हो गया है। अतः किसी के घर पुत्र पैदा होने पर कहा जाता है–*तुआरे होय रेय बोदाय*।

बोदावा : (सि.) बधाई की लोक धुन। मंदिर प्रांगण में दमानु-नगारे के साथ बोदावा बजाया जाता है। पारम्परिक वादक किसी के घर पुत्रोत्पत्ति, विवाहादि होने पर उस घर में जाकर बोदावा बजाते हैं। घर का मालिक इन्हें नेग स्वरूप कुछ राशि प्रदान करता है।

बो-रक सोड्येयामो : (कि.) इस का शाब्दिक अर्थ है–गर्म पत्थर पर गोमूत्र का छिड़काव करने से निकली भाप से घर को सुवासित करना। जनजातीय क्षेत्र किन्नौर में सूतक शुद्धि के लिए केवल तीन छोटे-छोटे पत्थरों को चूल्हे में डालकर खूब गर्म किया जाता है। जच्चा को बच्चे सहित फर्श पर बिठाया जाता है। चूल्हे में डाले गए पत्थर जब गर्म होकर लाल हो जाते हैं तो उन्हें चिमटे से निकाल कर जच्चा के गिर्द रखा जाता है, इन पर गोमूत्र का छिड़काव किया जाता है। उसके बाद इन पत्थरों को इकट्ठा करके बीच-बीच में उन पर गोमूत्र का छिड़काव करते हुए, प्रत्येक कक्ष के द्वार की दिशा में आगे बढ़ाते हुए–द्वार से बाहर, सीढ़ियों से नीचे और अंत में घर के मुख्य द्वार से बाहर कर देते हैं और इस प्रकार सूतक शुद्धि का कार्य सम्पन्न होता है। यदि प्रसव मायके में हुआ हो तो मायके की पूरी बिरादरी में शुद्धि करना अनिवार्य होता है। इसके लिए वहाँ प्रसूति कक्ष में एक बकरे या भेड़ की बलि दी जाती है और इसके रक्त का छिड़काव प्रसववाले कक्ष में तथा बिरादरी के रसोईघरों में भी किया जाता है। यदि मायके या बिरादरी का कोई सदस्य सूतक के दिनों में अनजाने में किसी गैर-बिरादरीवाले घर में चला गया हो तो उस घर की रसोई में भी उक्त रक्त का छिड़काव किया जाता है। बलि पशु के मांस को भी पकाकर पूरी बिरादरी में बाँटा जाता है। किन्नौर में सूतक काल में एकरूपता नहीं है।

कुछ क्षेत्रों में यह सात दिनों का और अन्य में आठ या पंद्रह दिनों का भी हो सकता है। कहीं लड़के की स्थिति में पाँच दिनों का और लड़की होने पर आठ दिनों का भी हो सकता है।

बोस : (कि.) भोज। किन्नौर की गोनयुल उपत्यका में परिवार में प्रत्येक पुत्र की उत्पत्ति पर ग्राम-देवता सहित पूरे गाँववालों को घर पर आमन्त्रित करके उन्हें बोस देना अनिवार्य होता है। बोस का आयोजन लोसर (कृषक नव वर्ष) के दिनों में ही किया जाता है। पिछले लोसर से इस वर्ष के लोसर तक जिन परिवारों में पुत्र उत्पन्न होते हैं, वे लोसर के दिनों में अपने यहाँ पुत्रोत्पत्ति की खुशी में बोस उत्सव का आयोजन करते हैं। पिता अपनी परम्परागत वेशभूषा में सज-धज कर अपने पुत्र को पीठ में बाँधकर, हाथ में धूप लेकर और पूजा-मदिरा के साथ घर के मुख्य द्वार पर ग्राम-देवता का स्वागत करता है। देवता अपने माली (देव पुरुष) के माध्यम से मंगल कामना स्वरूप शिशु को शूङ तोरोपिस पागखेमा (पगड़ी) देता है। तत्पश्चात् माली मदिरा की पूजा करता है। रात को देवता को उस परिवार के घर की छत पर रखा जाता है। देवता तथा उसके कारदारों व निकट सम्बंधियों को छोड़कर शेष गाँववाले अगली प्रातः अपने-अपने घरों को लौट जाते हैं। शाम को ग्राम-देवता के साथ-साथ अन्य स्थानीय देवी-देवताओं, गृह रक्षक देवों की भी पूजा की जाती है। बच्चे के दादा-दादी, माता-पिता व अन्य लोग लोक देवता को फूल मालाएँ व रुपयों की मालाएँ पहनाते हैं। पुत्रोत्पत्ति के लिए ग्राम-देवता से यदि पहले कोई मनौती की गई हो तो वह भी इसी समय देवता को प्रदान की जाती है। इसके बाद सभी कारकूनों के साथ देवता अपने देवालय को प्रस्थान करता है।

भढेहरी : (शि.) दे. भांडे बाहर।

भांडे बाहर : रजस्वला होना। मासिक धर्म की स्थिति में महिला को अपवित्र माना जाता है। उसके खाने के बर्तन, सोने के कपड़े अलग रखे जाते हैं। उसे गोशाला में ही सोना पड़ता है। चौथे दिन नहाने के बाद उसे शुद्ध माना जाता है। भीतरी पहाड़ी क्षेत्रों में आज भी इन नियमों का कड़ाई से पालन किया जाता है। ऐसे समय में महिलाएँ किसी भी मांगलिक कृत्य तथा धार्मिक संस्कार एवं अनुष्ठान में भाग नहीं लेतीं। अधिक धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य तो ऐसी स्थिति में रजस्वला महिला के हाथ का पानी तक नहीं पीते। लोक-विश्वास के अनुसार माता रोग में रजस्वला महिला यदि रोगी के सामने आ जाए तो रोग बिगड़ जाता है। ऐसी स्त्रियों का तीन दिनों तक

रसोईघर तथा सात दिनों तक मंदिर में प्रवेश निषेध होता है। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में इस के पर्याय **कपड़े आओणा**, **चौके बाहर**, **भढेहरी**, **बाइंडे बैठणा** (सो.), **छोह्णा** (कां.), **झिकड्डुएणा** व **निहाइणा** (कु.) हैं।

भाटके पाणा : (मं.) देवी-देवता के नाम समर्पित करना। पहले बच्चों के मरने की दर बहुत होती थी। इसका कारण भूत-प्रेत बाधा, ग्रहों का प्रकोप और देवी-देवताओं का दोष माना जाता था। इसलिए सुरक्षा के कई उपाय सोचे जाते थे। उनमें से एक उपाय था बच्चे को किसी देवी या देवता के नाम समर्पित कर देना और फिर उसी के नाम पर ही उसका नामकरण, पालन-पोषण और विवाहादि संस्कार किए जाते थे।

भाठ : (कु.) भाष्। भाष् का अर्थ पुकारना है। पहाड़ी में भाष् से उत्पन्न भाठ शब्द है। यह देवता को पुकार कर उसके नाम पर रखे पैसे हैं। पिछड़े क्षेत्रों में महिलाओं में एक गुप्त रीति है। वे जब गर्भधारण करती हैं तो सुखद प्रसव के लिए अपने गृह देवता या वीर के नाम पर कुछ पैसे रखती हैं, जिसे प्रसव के बाद कभी भी देवता को चढ़ाती हैं। पुराने समय में चम्बा के भरमौर क्षेत्र में गद्दी स्त्रियाँ भाठ के रूप में अपने हार के साथ चार चकलियाँ (पुराने सिक्के) कैलू वीर के नाम पर रख देती थीं।

भारथी गर्भवती। गर्भ में बच्चे का भार ढोने के कारण इसके लिए यह नाम पड़ा है।

भारा ढोल़ना : (सि.) गर्भपात। निश्चित समय से पूर्व ही प्रसव वेदना से शिशु का पूर्ण अथवा अपूर्ण अवस्था में मृत पैदा होना। यदि बच्चा छठे या सातवें मास में पैदा हो कर भी जीवित रहे तो उसे 'सूज़णा' या 'होलकीणा' कहते हैं, भारा ढोल़ना नहीं। भारा ढोल़ना को **ढाल़ जाणा**, **आह्रा** (चं.), **कच्चा जाणा**, **रुहा जाणा** व **नौहगुई** (कु.) भी कहते हैं।

भिट्टी : (चं.) अपवित्र। प्रसव के बाद प्रायः इक्कीस दिनों तक प्रसूता को भिट्टी माना जाता है। स्थान भेद से यह समय कम या अधिक दिनों का भी होता है। इस दौरान उस द्वारा छुई वस्तु का खान-पान निषिद्ध होता है। रसोईघर में उसका प्रवेश वर्जित रहता है।

भू छुहाणा : बच्चे का भू-स्पर्श संस्कार। यह सूर्यावलोकन के बाद किया जाता है। घर का आँगन या फर्श गोबर से लीपा जाता है और बच्चे का दायाँ पाँव उस स्थान पर छुआया जाता है।

भ्याई : (शि.,सो.) दे. बिहाई।

मखीर चटाणा : दे. शहद चटाणा।

मतबन्ना बणाणा : (शि.,सो.) दे. पतरेला पाणा।

माछ : (शि.) मृतवत्सा। जब बच्चा पैदा हो जाता है तो जच्चा के दूध का परीक्षण किया जाता है कि कहीं वह माछ तो नहीं है। इसके लिए माँ का दूध एक कटोरी में लिया जाता है और उसमें कोएड़ु नामक कीड़ा छोड़ा जाता है। वह मूर्छित हो जाए तो माँ को माछ समझा जाता है और यदि वह जीवित रहे तो दूध को सही माना जाता है। माछ होने की स्थिति में बच्चे को माँ का दूध नहीं पिलाया जाता और अगर पिला दिया जाए तो बच्चा मर जाता है। इसका इलाज स्थानीय जड़ी-बूटी से करते हैं, जिसे जच्चा को अठारह दिन खिलाया जाता है। उच्चारण भेद से इसे मोछ भी कहते हैं।

मुंड़न : दे. जट्टू।

मुनणी : डोर बाँधने का संस्कार। यह जन्म के ग्यारहवें दिन 'गूंतर' के साथ किया जाता है। कुल-पुरोहित सूत की तीन लड़ियों को बाटकर इसे बालक की कमर में बाँधता है। इस डोर को मुनणी कहते हैं। यह आजीवन बँधी रहती है। टूटने पर या तीन मास के बाद इसे बदला जाता है। बदलते समय पुरोहित की आवश्यकता नहीं रहती। इसके साथ लंगोट को कस कर बाँधा जाता है। लोक धारणा के अनुसार मुनणी काम को स्थाई व नियंत्रित रखने के लिए बाँधी जाती है। अब यह संस्कार लुप्तप्राय: हो गया है।

मुहाला : (सि.) दे. म्याला।

मूड़ी : गेहूँ, चावल, भांग आदि को भून कर बनाया गया चबेना। हर खुशी के मौके, यथा–शिशु जन्म, विवाह तथा मृत्यु शोक की समाप्ति पर और आम दिनों में जब कभी किसी सम्बंधी के घर जाना हो, तो मूड़ी साथ ले जाने की प्रथा है। बिना मूड़ी के किसी के घर जाना अशुभ माना जाता है। जिस घर में मूड़ी ले जाई जाती है, वापसी पर वे भी उसे मूड़ी लौटाते हैं। इसे कहीं मुड़ा भी कहते हैं।

म्याला : (शि.) पुत्र जन्म की खुशी में पहले, तीसरे, पाँचवें या नवें दिन बंदूक से चारों दिशाओं में किए जानेवाले धमाके। बंदूक चलाना पुत्र जन्म का सूचक है। ध्वनि सुनकर गाँव के लोग उस घर में 'जूब' लेकर आते हैं। इसे **मुहाला** भी कहते हैं।

मौ चटाणो : दे. शहद चटाणा।

रख : रक्षासूत्र। यह कुलदेवता की मौली या जंतर होता है, जिसे गर्भधारण के दूसरे-तीसरे महीने स्त्री अपनी और शिशु की रक्षा के लिए अपने गले या कमर में बाँधती है।

रणझुंझणे : (ऊ.,कां.,ह.) लड़का पैदा होने पर गाये जानेवाले गीत। लड़का होने की खुशी में स्त्रियाँ शुद्धिवाले दिन तक प्रतिदिन रणझुंझणे गाती हैं। इन गीतों में नवजात के दादा-दादी, ताया-ताई, माता-पिता और ननिहालवालों को शुभकामनाएँ दी जाती हैं। एक गीत कुछ इस प्रकार है –

हरसणु खेलणु घर आएया, रणझुंझणा माए
दादे घर जरमेयाँ पोतरा, रणझुंझणा माए
बाबे घर जरमेयाँ धियोह्तरा वे गोसंदिए माए
गोत्रे मंझे कुलदीया वे गोसंदिए माए...

रालटक : (ला.) दे. जट्टू।

रास : राशि। सूर्य बारह महीनों में जिस राशि से क्रमशः गुज़रता है, उसे सूर्य राशि कहते हैं और चन्द्रमा जिससे गुज़रता है उसे चन्द्र राशि कहते हैं। कुल मेषादि बारह राशियाँ होती हैं। एक राशि में सूर्य की यात्रा एक मास में पूरी होती है। जातक के ऊपर ग्रहों का अनुकूल-प्रतिकूल प्रभाव निश्चित करने के लिए रास मानक मानी जाती है। रास को ध्वनि भेद से राश भी कहते हैं।

रास गणना : राशि गणना। बच्चे के जन्म के बाद शुद्धिवाले दिन पंडित को घर बुलाया जाता है। वह बच्चे के ग्रहों की स्थिति देख कर कुंडली बनाता है और राशि के अनुसार नाम रखता है।

राहु भेदण : राहु दोष सम्बंधी एक संस्कार। यह शहरी इलाकों में ब्राह्मण परिवारों में किया जाता है। राहु की दशा में मिट्टी की एक मूर्ति राहु की बनाई जाती है। बच्चे का बाप इसमें तीर चुभाता है। ऐसा बुरे ग्रहों के दुष्प्रभावों को खत्म करने के लिए किया जाता है।

रुहयोज : (चं.) सूर्यावलोकन संस्कार। जनजातीय क्षेत्र चुराह में जब बच्चे को प्रथम बार सूर्य के दर्शन कराए जाते हैं तो अखरोट, पैसे, गरी गोला तथा अखरोट के आकार का मक्की के आटे का गोला बनाकर उछाला जाता है, जिसे गाँव के बच्चे या बड़े पकड़ते हैं।

रुहाजाणा : (कु.) दे. भारा ढोलना।

रे-बो : (कि.) याक के बालों से बना तम्बू। चङपा पशुपालकों में शिशु का जन्म रे-बो के भीतर होना आवश्यक माना जाता है। रे-बो में इन घुमन्तू लोगों का आवास होता है। यदि एक-दो कमरों का घर भी बनाया होता है फिर भी शिशु का जन्म रे-बो में ही होता है।

रेहाड़ू : नवजात शिशु को टखने पर पहनाया जानेवाला आभूषण जो अष्टधातु या पीतल का बना होता है। बच्चे को कुदृष्टि से बचाने के लिए इसे पहनाया जाता है।

लंगोट : दे. फालड़ू।

लटघिंघा : तांत्रिक स्नान। यदि किसी विवाहिता के दो-चार साल तक बच्चा न हो तो देवी-देवता के चेले द्वारा उसका तांत्रिक उपचार करवाया जाता है। उसे लुहाण, जो लाल रंग का पतला पारदर्शी वस्त्र होता है, पहनाकर नहलाया जाता है और फिर उस कपड़े को फेंक दिया जाता है। लोकविश्वास है कि ऐसा करने से बच्चा हो जाता है।

लड़हौज पीणा : यज्ञोपवीत संस्कार की एक रस्म। सिरमौर क्षेत्र में 'जनेऊ' पहनने से पहले नाना अथवा मामा उसे घी का चुल्लू पिलाते हैं, जिसे लड़हौज पीणा कहा जाता है।

लथरोण : दे. लैरथी।

लसेउगी : दे. लैरथी।

लसोगी : दे. लैरथी।

लायरा : (बि.) दे. अलरा।

ला-सूई : (चं.) दे. लैरथी।

लिंगणा लगणा : (मं.) दे. छेड़।

लिउणा लगणा : (कां.) दे. छेड़।

लिङ्चेच़ : (कि.) नवजात शिशु को लपेटने की छोटी चादर। यह प्रायः काली या रली-मिली ऊन की होती है। इसे दादी या नानी की ओर से देने की प्रथा है।

लुंबड़ोज : (कु.) पुत्र जन्म से सम्बंधित एक कृत्य। पुत्र जन्म पर प्रसूता के मायकेवालों को सूचित करने के लिए पुरोहित या किसी अन्य व्यक्ति के

हाथ जूब (दूर्वा) भेजी जाती है, जिसे बधाई का प्रतीक माना जाता है। तब मायकेवाले कुछ दिनों बाद प्रसूता के लिए खाने-पीने की सामग्री तथा बच्चे के लिए वस्त्र लेकर आते हैं, जिसे लुम्बड़ोज कहते हैं। अब कन्या जन्म पर भी यह प्रथा निभाई जा रही है।

लुई : दे. लैरथी।

लुगड़ू : जन्म सम्बंधी एक संस्कार। इसका शास्त्रीय स्वरूप अन्नप्राशन तथा नामकरण के रूप में देखा जा सकता है। यह बच्चे के जन्म के पहले, तीसरे तथा पाँचवे महीने में सम्पन्न किया जाता है। इस अवसर पर सर्वप्रथम गणेश पूजा और मंडल पूजा होती है, फिर हवन किया जाता है। पुरोहित बच्चे के माथे पर तिलक लगाता है और कलाई में लाल डोरी बाँधता है। बच्चे को प्रथम बार दूध, चावल और चीनी से तैयार किये गये खाद्य पदार्थ लुगड़ू से अन्नप्राशन करवाया जाता है। सम्भवतः इसी कारण इस संस्कार का नाम लुगड़ू पड़ा हो। इसी समय नामकरण संस्कार भी किया जाता है। पीपल के पत्ते को ले कर उसे गोल मोड़ कर उसके चारों ओर डोरी बाँध दी जाती है। घर का बड़ा बुज़ुर्ग इसका एक सिरा बच्चे के कान पर रख कर, दूसरी ओर से अपना मुख रख कर उसके कान में नाम का उच्चारण करता है। नवजात शिशु के नाना-नानी के यहाँ से कपड़े, मिठाइयाँ, बबरू, भल्ले आदि भेंट स्वरूप आते हैं तथा कभी-कभी वे प्रीतिभोज का भी आयोजन करते हैं।

लैरथी : जच्चा। यह अवस्था बच्चा पैदा होने से चालीस दिनों तक रहती है। लैरथी को बच्चा पैदा होते ही घी की एक कटोरी पिलाई जाती है और ग्यारह दिनों तक घी, सोंठ तथा मेवेवाला दूध दिया जाता है। जच्चा को बाहरी हवा, ठंडे पानी से परहेज़ कराया जाता है तथा खाने के लिए पथ्य और पुष्टिवर्धक वस्तुएँ दी जाती हैं। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में इसी के पर्यायवाची **नसोगी**, **नसोएगी**, **लसोगी**, **लसेउगी**, **लथरोण**, **छिला**, **सुतकुईहुंदी**, **सलोह्गी** (कु.), **सुई**, **ल्होक्योरी** (चं.) हैं।

लैरा : (कां.) दे. अलरा।

लौह्ल घालना : (कां.,ह.) जन्म सम्बंधी एक कृत्य। पुत्र जन्म के बाद इसे नहलाने के लिए पंडित से शुभ मुहूर्त निकलवाते हैं। इस शुभ घड़ी में कुंआरी कन्या बच्चे की केवल एक लट धोती है। कन्या को इसके बदले में नेग दिया जाता है।

ल्यार : (मं.) वंश। वधू जिस परिवार से लाई जाए, उस परिवार के खून और दूध से उसका एक विशेष प्रजातीय सम्बंध होता है। इसी प्रकार वर के परिवार के खून और दूध का प्रभाव उसकी नस्ल के लिए रूढ़ रहता है। ल्यार आकृति और गुण दोनों से सम्बंधित है।

ल्होक्योरी : (चं.) दे. लैरथी।

शदाणि दैणौ : (कु.) शुद्धि करना। बच्चा पैदा होने के तीसरे दिन से शिशु के पिता की भानजी गोमूत्र, दूध व पानी के मिश्रण की थोड़ी-थोड़ी मात्रा पाँच या सात दिनों तक जच्चा को पिलाती है, इसे शदाणि कहते हैं। वह इसके बीच सुमण फूल की तीसरे दिन तीन, पाँचवें दिन पाँच तथा सातवें दिन सात डालियाँ डाल कर लाती है। इन्हें वह गोबर के ऊपर खड़ा करके रखती है और शदाणि पिलाने के बाद इन डालियों को गोबर सहित कुज्जे आदि की झाड़ी पर फेंकती है। मान्यता है कि ऐसा करने से बच्चे के दाँत सीधे आते हैं। इसे पिलाने का मुहूर्त पंडित द्वारा दिया जाता है। धारणा यह है कि इसको पिलाने से बच्चे की शुद्धि होती है।

शहद चटाणा : नवजात को शहद चटाना। बच्चे के पैदा होते ही उसे परिवार का कोई व्यक्ति शहद चटाता है। आधुनिक समय में बच्चे की जीभ पर सोने या चाँदी की शलाका से ऊँ भी लिखा जाता है। कहा जाता है कि जो बच्चे को शहद चटाता है उसका स्वभाव बच्चे में भी आ जाता है। जब कोई बच्चा हठी, बातूनी, लड़ाका या भोंदू हो तो महिलाएँ पूछती हैं कि इसे शहद किसने चटाया है?

शाल : (शि.) दे. आओल़।

शुजे : दे. काज़ी।

शूल़ो : (शि.) गर्भवती महिला को प्रसूति काल में उठनेवाली दर्द शूल़ो कहलाती है। यह महिलाओं की शूल यानी वात संचालित असह्य पीड़ा होती है। एक कथानक है कि इससे अनभिज्ञ प्रथम बार प्रसववती बहू अपनी सास से कहती है-- *जोबे मूँ शूल़ो लागली तो उबी बिजाल़ी* अर्थात् सास जी, जब मुझे शूल (प्रसव पीड़ा) उठेगी तो जगा देना। बहू के इस भोलेपन पर सास केवल़ मुस्कराती रही।

षष्ठी देवी : शिशुओं की अधिष्ठात्री देवी। बच्चों को दीर्घायु बनाना, उनका रक्षण एवं भरण-पोषण करना षष्ठी देवी का स्वाभाविक गुण है। बच्चे के जन्म के छठे दिन प्रसूतिगृह में छठी-पूजन करवाया जाता है। मूलप्रकृति

के छठे अंश से प्रकट होने के कारण इसका नाम षष्ठी पड़ा है। यह ब्रह्मा की मानस पुत्री तथा कार्तिकेय की पत्नी है। इसकी गणना षोडश मातृकाओं में की जाती है। अपने योगबल से देवी शिशुओं के पास सदैव विद्यमान रह कर उनकी रक्षा करती है। भगवती षष्ठी देवी का पूजन बालक के माता-पिता द्वारा छठे दिन किया जाता है। इसमें अशौच का विचार नहीं किया जाता।

संभाल़ : (शि.) दे. कड़ोज।

सकोड़ : (कु.,शि.) सूतक। प्रसव के कारण अशौच। यह ग्यारह दिनों तक रहता है। परिवार के सदस्य इन दिनों किसी देवस्थान में नहीं जाते, देवानुष्ठान आदि में भाग नहीं लेते। देवता का गूर और ब्राह्मण आदि सूतकवाले घर में खाना नहीं खाते। ऐसे व्यक्ति को जो घर के अंदर ही रहता है, व्यंग्यार्थ में कहा जाता है–तेरे क्या सकोड़ है। मंडी में इसे **सुदक** कहा जाता है।

सकोड़ क्याउणी : (शि., सि.) सूतक की शुद्धि। प्रसव के ग्यारहवें दिन गृह व कपड़ों की सफाई तथा हवन आदि करके सारे घर में पंचगव्य छिड़क कर शुद्धि की जाती है। फिर माँ और नवजात शिशु को ऊपर की मंज़िल में लाया जाता है। उस दिन अपने ख़ास रिश्तेदारों को भोजन पर आमंत्रित किया जाता है और दाई को बधाई के रूप में वस्त्र, पैसे तथा 'मूड़ी' देकर विदा करते हैं।

सज़ाइण : (कु.) दे. दाई।

सतमाह्यॉं : सातवें महीने में पैदा हुआ बच्चा। कहा जाता है कि सातवें महीने में पैदा हुआ जो बच्चा जीवित रह सकता है, वह भाग्यवान् होता है। उसे चम्बा में **सत्तमावां** या **सत्तवांसा** और मंडी में **सत्तवाही** कहते हैं।

सबाहणा : (कु.,मं.,शि.) विवाहित बहन, बेटी, भतीजी आदि का मायके के हर घर में किया जानेवाला स्वागत। 'नरवालु' में बच्चे का मामा अपनी बहन को पूरे बर्तन, बिस्तर, ट्रंक, सूट आदि भेंट करता है। उसके साथ आए लोग भी उसे उपहार देते हैं। यह उपहार ही सबाहणा कहलाता है। परंतु जो उस घर से दूसरी जगह ब्याही लड़कियाँ, बहनें, भतीजियाँ इस समारोह में आई होती हैं, उन सबको वहाँ मायके का प्रत्येक परिवार विशेष रूप से अपने-अपने घर आमंत्रित कर गेहूँ, घी और 'मूड़ी' देता है। इस विशेष आतिथ्य और भेंट को सबाहणा कहा जाता है।

सरतेड़ा : दे. चकंधू।

सलाइसा : (कु.) दे. छेड़।

सलोह्गी : (कु.) दे. लैरथी।

साँसर बाँ : दे. झाँसबाँ।

साङ : (कि.) शुद्धि। जन्म सम्बंधी संस्कार। किन्नौर में संतानोत्पत्ति के सात दिन पश्चात् किसी लामा को बुलाकर साङ किया जाता है। शुरकू एवं असाधारण जड़ी-बूटियों के मिश्रण से तैयार शुकपा (धूप) जलाकर, गोमूत्र तथा केसरयुक्त जल का छिड़काव सारे घर में किया जाता है। यह सारी प्रक्रिया लामा विशेष मन्त्रोच्चारण द्वारा सम्पन्न करता है। इसके पश्चात् जच्चा नवजात शिशु के साथ रसोईघर में प्रवेश करती है।

सिंगी : (ऊ.,कां.,ह.) कैप्स्यूल के आकार का सोने या चाँदी का आभूषण जिसके मध्य में गोल कुंडा लगा होता है। बाबा बालक नाथ के भक्त बच्चे को भूत-बाधा, डाकिनी-शाकिनी तथा जादू-टोने के प्रभाव से बचाने के लिए उसे काली डोरी में पिरो कर उसके गले में बाँधते हैं।

सुंड : दे. पिन्नी।

सुई : (चं.) दे. लैरथी।

सुगसू : (चं.) नामकरण व अन्नप्राशन संस्कार। गद्दी जाति में जब बच्चा छह मास का हो जाता है तो शुभ मुहूर्त में उसका नाम परिवार के किसी निकटतम सम्बंधी या पुरोहित द्वारा रखा जाता है और उसे खीर खिलाई जाती है।

सुच्चे होणा : पवित्र होना। प्रसव के इक्कीस दिनों बाद जच्चा-बच्चा दोनों को स्नान करवा कर नये वस्त्र पहनाए जाते हैं। घर की सफाई करके देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। इसके उपरांत जच्चा को पवित्र माना जाता है और वह रसोईघर में जा सकती है।

सुतकुईहुंदी : (कु.) दे. लैरथी।

सुतगियारी : (सि.) दे. दाई।

सुतगोड़ : (सि.) जच्चा-बच्चा के एकांत में शयन व आराम के लिए प्रयोग किया जानेवाला वस्त्र। इसमें ऊन के मोटे वस्त्रों का अधिकांश उपयोग होता है।

सुदक : दे. सकोड़।

सुदक बाइयो : प्रसूति ज्वर। स्त्री के प्रसूता होने की प्रक्रिया में जिसमें नाल-छेदन भी होता है, कई बार ठंड लगने से ज्वर आने लगता है। उसका सही ढंग से उपचार न होने पर प्रसूता के जीवन को खतरा हो सकता है और कई बार मृत्यु तक हो जाती है। इसे शिमला में **सूतक बाय** तथा कुल्लू में **सूतक ज़ौर** कहते हैं।

सुनत संस्कार : गुज्जर जनजाति द्वारा बच्चे के जन्म के चार या छह महीने बाद किया जानेवाला संस्कार। इसका दिन निश्चित करने के लिए मौलवी से परामर्श किया जाता है। इस दिन अनुभवी नाई बुलाया जाता है, जो बच्चे की जननेन्द्रिय के अग्रभाग को बड़ी सावधानी से काटता है। फिर उस पर मरहम लगाता है। नाई को इस मौके पर कुछ भेंट दी जाती है। आमंत्रित सगे सम्बंधियों को भोज दिया जाता है। इसके सात दिन के बाद कोई लड़की जो सगी-सम्बंधी न हो, लड़के को मेहंदी लगाती है, जिसे उस लड़के की बहन मान लिया जाता है। इस संस्कार को खतना या सुन्नत भी कहा जाता है।

सुरगपैड़ी : (मं.) स्वर्ग पैड़ी। परदादा-परदादी, परनाना-परनानी बनने पर वे सोने या चाँदी का सीढ़ीनुमा लॉकेट बना कर नवजात शिशु के गले में डालते हैं। लोकविश्वास है कि इससे उनके लिए स्वर्ग की सीढ़ी बन जाती है।

सुहाइथा : दे. कड़ोज।

सुहाओ बाहणा : (मं.) झाड़ा करना। बच्चे के भयभीत होने पर या किसी तरह के अदृश्य उपद्रव होने पर उसे पुरोहित के पास झाड़ा करवाने के लिए ले जाते हैं। ग्रहों के प्रतिकूल प्रभाव आदि की संभावना मान कर बणे (निर्गुंडी) की पत्तोंयुक्त टहनियों, लोहे के चिमटे या मोर के पंखों से मंत्रोच्चारण के साथ झाड़ा किया जाता है। इस प्रक्रिया को सुहाओ बाहणा कहते हैं।

सू : (चं.) दे. आओल़।

सूइतू : (सि.) दे. कड़ोज।

सूज़णा : (कु.,सि.) दे. होलकीणा।

सूत : (कां.) दे. छोह्त।

सूतक : जनन अशौच। परिवार में बालक के जन्मते ही घर में दस दिवसीय सूतक लग जाता है। सूतकावस्था में देवकार्य, पितृकार्य आदि शुभ कार्यों का निषेध है। यहाँ तक कि देवमंदिर में प्रवेश तथा पूजन आदि करना भी वर्जित है। इस अवधि में घर में प्रतिष्ठित देवताओं का पूजन बहन-बेटी के परिवार या ब्राह्मण द्वारा कराया जाता है।

सूतक ज़ौर : (कु.) दे. सुदक बाइयो।

सूतक बाय : दे. सुदक बाइयो।

सूल़ : (चं.) दे. शूलो।

सूहड़ियाँ : (ऊ.) गर्भाधान काल सम्बंधी गीतों को सूहड़ियाँ कहा जाता है।

सोयता : दे. कड़ोज।

सौहड़ : (मं.) जच्चा का बिस्तर। इसे गर्म रखा जाता है ताकि जच्चा-बच्चा को ठंड न लगे। दे. गुल्ह।

स्रुङ्वा : रक्षायंत्र। जनजातीय क्षेत्रों में महिला के गर्भवती होने पर उसे लामा द्वारा अभिमंत्रित किया गया रक्षायंत्र धारण करवाया जाता है और इस बात का ध्यान रखा जाता है कि इसका पता कम से कम लोगों को लगे, अन्यथा बुरी नज़रवाले लोग पेट में पल रहे शिशु का अनिष्ट कर सकते हैं। स्रुङ्वा को **ञोवा** भी कहते हैं।

हड़ू : अवैध संतान। दे. चकंधू।

हसणू-खेलणू : जन्म दिवस पर गाए जानेवाले गीत। इन गीतों में वात्सल्य रस की प्रधानता होती है। इन गीतों में कृष्ण और राम की लीलाओं की अभिव्यक्ति होती है –

मत दिंदियाँ भैणो गाल़ी नी
गरीबणी दा जाया...

हाथीं-पाई : हाथ-पाँव। जन्म के छठे दिन शिशु के हाथ-पाँव में कुंकुम लगाकर उसकी छाप सफेद वस्त्र पर लगवाकर परिवार के दो व्यक्ति और दाई उस चिह्न-वस्त्र को बच्चे के ननिहाल लेकर जाते हैं। ननिहालवालों के लिए उनके पास मेवा और मिठाई आदि भी भेजी जाती है। बच्चे के जन्म की सूचना और उसके हाथ-पाँव के चिह्न पाकर वहाँ बधाई गीत गाए जाते हैं। बदले में ननिहालवाले दाई को वस्त्र देते हैं। हाथ और पाँव

के चिह्न अंकित करके बच्चे के जन्म की सूचना देने के कारण इस प्रथा का नाम हाथीं-पाई युक्ति संगत लगता है।

हाल्लड़ : दे. चकंधू।

हुआर चोड़ने : (मं.) कमर तुड़वाना। मुंडन संस्कार में कुलदेवता को बाल चढ़ाने के अलावा मुंडन करवानेवाले को पूरी देव-संस्था के भोजन की व्यवस्था करनी होती है, जिसमें तीन बोरी चावल-गेहूँ, पाँच-छह किलो घी, एक बोरी आटा, दक्षिणा के लिए कुछ पैसा और एक मेढ़ा या बकरा तो ज़रूर ही देना पड़ता है। इतने खर्च से आम आदमी की तो जैसे कमर ही टूट जाती है। इसलिए इस समारोह का नाम ही हुआर चोड़ने पड़ गया है।

हुणवास : (सि.) प्रसव मास। गर्भधारण के पश्चात् नौवाँ या दसवाँ महीना ही हुणवास कहलाता है। इस अवधि में गर्भवती महिला को घर के आसपास ही रहने की सलाह दी जाती है तथा उसकी पसंद की खाने-पीने की वस्तुएँ दी जाती हैं।

हूम : हवन। गृह शुद्धि के लिए किया गया हवन। एक चपटे पत्थर पर मिट्टी बिछाकर पंडित चावल, आटा तथा हल्दी से देवी-देवाताओं के रंग-बिंरगे चक्र बनाता है। उनके बीच देवदार तथा बिल्व, आम्र, ढाक, पुठकंडा आदि की समिधा जलाई जाती है। उसमें हवन सामग्री, जौ व घी की आहुतियाँ घर के सभी सदस्यों से डलवाई जाती हैं। गृह-शुद्धि की इस क्रिया को हूम कहते हैं।

होलकीणा : (सि.) हलका होना। प्रसव हो जाना। प्रसव से पूर्व जच्चा से घर के सारे ताले व चोटी में लगी परांदी की गाँठ भी खुलवाई जाती है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इससे प्रसव आसानी से होता है। प्रसव के लिए महिला को ओबरे में रखा जाता है, क्योंकि वहाँ पर हवा का प्रवेश नहीं होता और जच्चा-बच्चा ठंड के प्रकोप से बचे रहते हैं। प्रसव पीड़ा होने पर दाई जच्चा के पेट की मालिश करती है ताकि आसानी से प्रसव हो सके। होलकीणा को **सूज़णा** भी कहा जाता है।

विवाह सम्बंधी संस्कार

अंदरेड़ा : वधू को घर के अंदर ले जाना। बारात जब वापिस घर पहुँचती है तो वधू को डोली से उतारकर तोरण के पास लाया जाता है। 'पोह्ई' तोरण पर वर-वधू की आरती उतारती है और वधू को गृह प्रवेश कराया जाता है। गृह प्रवेश से पहले ननदें भाभी की राह रोकती हैं। जब भाभी का भाई इन्हें 'लाग' दे देता है तब वे प्रवेश की राह से हट जाती हैं। इस अवसर पर 'सिठणियाँ' गाई जाती हैं –

भाबो जी, स्हाडे लागां दुआई दे स्हाडिए भाबिए
माऊ बेच, स्हाडे लागां दुआई दे स्हाडिए भाबिए...

यदि किसी कारणवश बारात वापिस ऐसे समय पहुँचे जब अंदरेड़े का मुहूर्त न हो तो उसे किसी पड़ोसी के घर ठहराया जाता है और निध ारित मुहूर्त में अंदरेड़ा करवाया जाता है। चम्बा में इसे **अंदरेड़न** या **अंदरीहण**, सोलन में **अंदरेला** तथा बिलासपुर में **अंदरेरा** कहते हैं। नववधू के आगमन पर महिलाएँ गीत गाती हैं–

अंबे दी डालिया कोयल बोले
नी बोल मेरी कोयले सब्दसुहाना
नी सस्सू सहेठड़ी कुले बहु आई नी
आ मेरिए बहुए ए घर तेरा
ए घर तेरा बहुए सब कुछ तेरा
नी सौहरे सहेठड़ी कुले बहु आई नी
आ मेरिए बहुए आ बह राणी
नी कंते सहेठड़ी कुले नाजो आई नी
आ मेरी नाजो ए घर तेरा नी...

अंबदड़ूनी : (कां.) विवाह की एक रस्म। बारात लौटने के बाद धामवाले दिन वर-वधू को बाजे-गाजे के साथ दाड़िम पूजन के लिए ले जाया जाता है। स्त्रियाँ मंगल गीत गाती हैं। कुल पुरोहित द्वारा वर और वधू से दाड़िम के वृक्ष के नीचे पूजा करवाई जाती है। वे दाड़िम की पाँच या सात बार परिक्रमा करते हैं तथा हाथ से काते हुए सूत को उसके तने में लपेटते हैं। इसके पश्चात् 'कंगणा खुलाई' की रस्म निभाई जाती है। क्षेत्र भेद से दाड़िम के स्थान पर आम और पीपल के पेड़ की परिक्रमा भी करवाई जाती है। इन वृक्षों को फलदायी प्रतीक माना जाता है, इसलिए नवदम्पती से इनकी पूजा इस आशय से करवाई जाती है ताकि उन्हें भी संतान प्राप्ति का आशीर्वाद प्राप्त हो। पूजा से लौटने के बाद 'तोरण' को उखाड़ दिया जाता है और दुलहन घर में प्रवेश करती है। दाडिम के लिए दाड़ू शब्द का प्रचलन होने के कारण इस परिक्रमा को **दाड़ू पूज़णा** भी कहा जाता है। इस पूजन तक दुलहन की पालकी दूल्हे के सुखपाल से आगे चलती है तथा इसके बाद दूल्हे के पीछे चलती है। दाड़न पूजा से लौटती स्त्रियाँ देवी-देवताओं का नाम स्मरण करते हुए गाती हैं–

मन्नी चले मनाई चले मन दियाँ सुखना चढ़ाई चले
मन्नी चले मनाई चले लाड़िया दे भाऊआ जो चढ़ाई चले.

अगाऊ : (शि.) अगुआ। **बिष्टु** तथा एक अन्य व्यक्ति, जिन्हें बारात प्रस्थान से पूर्व कन्या पक्ष के घर भेजा जाता है। वे वहाँ जाकर बारातियों की संख्या की सूचना और विशिष्ट बारातियों का परिचय देते हैं ताकि वे उनके स्वागत की उचित व्यवस्था कर सकें।

अग्रीहण : (चं.) स्वागत बारात। जब बारात सहित वर कन्या पक्ष के गाँव पहुँचता है तो वहाँ बाजे-गाजे के साथ वर व बारात का स्वागत होता है और जब बारात वधू सहित वापिस दूल्हे के घर पहुँचती है तो वहाँ वर पक्ष के लोग वधू और उसके साथ आए सम्बंधियों का स्वागत करते हैं। इस प्रथा को अग्रीहण कहा जाता है।

अप्रेणा : (कां.) विवाह के समय या बहुत दिन बाद घर में आए विशेष सम्बंधी के सिर पर न्योछावर कर कुछ पैसे दान देना।

अरगणा : एक वैवाहिक कृत्य, जिसमें वर-वधू की आरती उतारी जाती है।

जब दूल्हा वरयात्रा के लिए तैयार हो जाता है तो पूजा कक्ष के द्वार पर उसकी पूजा की जाती है। पूजा के लिए टीका, अक्षत तथा पुष्प युक्त पीपल के पत्तों के पाँच दोने तथा आटे के पाँच पेड़ों में झिंझर नामक घास लगाकर दूल्हे की माँ एक-एक करके दोने तथा पेड़े को हाथ में लेकर दूल्हे के पाँव से धीरे-धीरे दायें-बायें घुमाते हुए सिर तक ले जाती है और कंधे से पीछे को फेंकती है। इस प्रक्रिया को तथा वधू प्रवेश से पूर्व वर की माता द्वारा उतारी जानेवाली दूल्हा-दुलहन की आरती को अरगणा कहते हैं। इसे **पोह्णा** और **परोह्णा** भी कहते हैं।

आँजण : (कु.) पीले या लाल रंग का वस्त्र जो धार्मिक अनुष्ठानों में पति-पत्नी को जोड़ने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। दे. लिंजड़ी।

आँजण गाँठ : (कु.) ग्रंथिबंधन। परिवार में किसी भी शुभ कार्य के समय जब हवन आदि किया जाता है तो पति-पत्नी को 'आँजण' से आपस में बाँध दिया जाता है, तभी हवन में आहुति डाली जाती है।

आरती-बेड़ा : (सो.) दूल्हे के स्वागत के लिए तैयार किया गया आटे का चौमुखा दीपक। विवाह अवसर पर इससे दूल्हा-दुलहन की आरती उतारी जाती है।

इज़ित : (कि.) इज्ज़त। किन्नौर में इज़ित प्रथा का सम्बंध चौर्य विवाह, अपहरण विवाह तथा हार विवाह के साथ है। इसका अर्थ है—मान हानि की क्षति पूरक धन राशि। क्योंकि किसी लड़की को भगाकर या बलपूर्वक उठाकर ले जाने से माता-पिता का अपमान होता है; अतः ऐसा करनेवाले व्यक्ति को आर्थिक दंड देना पड़ता है, यह इज़ित की राशि कहलाती है। ऐसा होने पर कोई व्यक्ति मध्यस्थ बनकर अपराधी व्यक्ति की आर्थिक स्थिति के अनुसार राशि का निर्धारण करता है। इसी प्रकार पत्नी को तलाक देने अथवा किसी अन्य की पत्नी को फुसला कर ले जानेवाला व्यक्ति भी समाज में अपराधी होता है। अपने इस कृत्य से वह उस महिला के माता-पिता अथवा पति की मान-हानि करता है। ऐसे व्यक्ति को भी अपने इस अपराध के लिए सम्मान की क्षतिपूर्ति के रूप में इज़ित की राशि देनी पड़ती है।

इज्ज़त देणा : दे. इज़ित।

उआरंडा : निछावर। दूल्हा-दुलहन के सिर के चौगिर्द घुमाकर न्योछावर किया जानेवाला धन। विवाह की कई रस्मों में वर तथा कन्या के सिर पर पैसों का उआरंडा करके वे पैसे नाई, बाजेवाले आदि को दिये जाते हैं। यह इस भावना से किया जाता है कि शरीर की बाधा उस वस्तु में चली जाए या दुष्ट ग्रहादि उस वस्तु के दान से शांत हो जाएँ।

उआर्ना : (कु.) वर-वधू के सिर के ऊपर से फेंकी जानेवाली भेड़। विवाह की एक प्रथा के अनुसार लड़का अपनी पसंद से या माता-पिता की सहमति से बात पक्की होने के बाद कभी भी किसी धार्मिक उत्सव से लड़की को अपने साथ भगा कर ले आता है, जिसकी सूचना लड़का अपने घरवालों को पहले ही दे देता है। घर पहुँच कर गृह प्रवेश से पहले घर के लोग बरामदे में खड़े हो कर उनके ऊपर से भेड़ का उआर्ना फेंक देते हैं। उसे तुरंत काट दिया जाता है और 'चुल्ह पूज' के बाद इसको पका कर भोज दिया जाता है। इस कृत्य के पीछे यह धारणा है कि वर-वधू पर पड़ी बाहरी छाया, भूत-प्रेत, जादू-टोनों, डाकिनी-शाकिनी आदि का प्रभाव नष्ट हो जाए।

उक्खल़ पूजा : संस्कृत उलूखल से व्युत्पन्न उक्खल़ पत्थर या लकड़ी का बना ऐसा उपकरण है, जिसमें अन्न कूटा जाता है। विवाह में इसे 'मौल़ी' बाँध कर 'साँद' के दिन पूजा जाता है। 'बुटणा', 'तेल शांति' के बाद दोनों पक्षों में अपनी-अपनी ओर वर व कन्या से इसमें धान कुटवाया जाता है। इस अन्न को सात सुहागिनें दोने में ले कर 'कौहरा' के पास रखती हैं। यह प्रक्रिया सात बार निभाई जाती है। धान कूटने के अवसर पर महिलाएँ गीत गाती हैं –

परोह्तो धान कुट्टो, परोह्तो धान कुट्टो
धान कुट्टी-कुट्टी होइगे ने चौल़
लाड़े दी माँ की लइगे चोर
परोह्तो धान कुट्टो, परोह्तो धान कुट्टो
धान कुट्टी-कुट्टी होइयाँ नी कणियाँ
लाड़े दी मामीए की लई गेया बणियाँ...

उनड़दी धाम : दे. छड़याह।

ओला : (सि.) परदा। ओ का स्पष्ट उच्चारण न कर उ और ओ की मध्यस्थ ध्वनि के साथ उच्चरित यह शब्द घूँघट का अर्थबोधक है। यद्यपि अब यह प्रथा समाप्तप्राय हो चुकी है पर पुराने ज़माने में स्त्रियाँ अपने से बड़ों अथवा आदरणीयों के सामने ओला डालकर ही आती थीं।

ओऴी : (कां.) झारी। मिट्टी का बना टोंटीदार कलश, जिसे मंगल पूजन में जल के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

कंगणा : कंगन। विवाह के अवसर पर वर-वधू के हाथ में बाँधा जानेवाला लाल सूत्र, जिसमें गुड़, कौड़ी, धनिया, चावल आदि डाल कर बनाई गई लाल वस्त्र की पोटली गुँथी होती है। पुरोहित इसे 'सांद' में बाँधते हैं। कंगणा बंध जाने के बाद वर तथा कन्या को अकेला नहीं छोड़ा जाता और कहीं दूर भी नहीं जाने दिया जाता। लोक विश्वास है कि इससे भूत-प्रेतों के आक्रमण का भय रहता है। इस कंगणे को धर्म भाई और धर्म बहन द्वारा 'दाड़न पूजन' के समय खोला जाता है। अनुष्ठान आदि के अवसर पर पुरोहित द्वारा मंत्रोच्चारण के साथ यजमान की कलाई में बाँधी जानेवाली डोरी को भी कंगणा कहा जाता है।

कंगणा खिलाई : विवाह सम्बंधी एक कृत्य जो धामवाले दिन किया जाता है। वास्तव में यह वर-वधू के बीच पहचान कराने के लिए खेलाया जानेवाला एक प्रकार का खेल है। एक परात में पानी और दूध भर कर उसमें चाँदी का एक रुपया, सुपारी, सोने की अँगूठी तथा कुछ दूब डाल दी जाती है। वर-वधू दोनों उसमें हाथ डाल कर छीना-झपटी करते हैं। दोनों का यह प्रयास रहता है कि अँगूठी उसके हाथ आ जाए। ऐसा सात बार किया जाता है। लोक मान्यता है कि जिसके हाथ अँगूठी ज़्यादा बार आए, गृहस्थी में उसकी प्रधानता रहती है।

कंगणा खुलाई : विवाह की एक रस्म। इसे धामवाले दिन 'दाड़न पूजन' में सम्पन्न किया जाता है। इसमें पुरोहित द्वारा नवदम्पती से दाड़न पूजन करवाने के बाद उनकी कलाई में बाँधे गए कंगणे खुलवाए जाते हैं। वर का 'कंगणा' पुरुष द्वारा तथा वधू का महिला द्वारा खोला जाता है। ये पति-पत्नी भी हो सकते हैं। उनके साथ नवदम्पती का धर्म का सम्बंध बन जाता है।

कटार : एक दुधारा हथियार। विवाह में सेहराबंदी के बाद वर के हाथ में नारियल के साथ कटार दी जाती है। ऐसी मान्यता है कि इसे हाथ में रखने से वर को भूत-प्रेत बाधा नहीं सताती। नारियल और कटार को वर का प्रतीक भी माना जाता है। इसलिए कई क्षेत्रों में बारात में वर के स्थान पर नारियल और कटार ही ले जाई जाती है।

कटारी पकड़ना : (चं.) 'सांद' के अवसर पर मामा एक थाली में तेल, दूध, जौ और सरसों के साथ कटार पकड़ कर उसे दूल्हे के सिर पर रखता है। इसे कटारी पकड़ना कहते हैं।

कड़ाही चढ़ना : एक वैवाहिक कार्य। विवाह से एक-दो दिन पूर्व मिठाइयाँ बनाने के लिए शुभ मुहूर्त देख कर हलवाई द्वारा अग्नि की पूजा की जाती है, फिर चूल्हे पर कड़ाही चढ़ाई जाती है। इस अवसर पर विशेष रूप से लड्डू, मठरियाँ और शक्करपारे बनाए जाते हैं। ये मिठाइयाँ विवाह में आए सगे-सम्बंधियों में बाँटी जाती हैं।

कठियाला : कोठाराध्यक्ष। उत्सव में जो व्यक्ति उपयोग में आनेवाली सारी वस्तुओं के भंडार की व्यवस्था संभालता है, उसे कठियाला कहते हैं। आयोजन में कठियाला का विशिष्ट स्थान होता है। 'कारज' करनेवाला व्यक्ति अपना सारा भंडार कठियाला को सौंप देता है। यह पद कारज समाप्त होने तक ही रहता है। कारज की सारी व्यवस्था कठियाला के हाथ में होती है। कठियाला भी दो होते हैं। पहला खाद्य सामग्री का भंडारी और दूसरा कठियाला अर्थ व्यवस्था की ज़िम्मेदारी निभाता है। विवाहोत्सव पर इन दोनों कठियालों की आवश्यकता होती है, जिनमें से खाद्य सामग्री के कठियाले की धाम बनाने की पूरी ज़िम्मेदारी होती है तथा दूसरा कठियाला पैसे के लेन-देन को देखता है। वह बारात में साथ जाता है। वधू के लिए जाने वाली 'सुहाग पिटारी' की चाबी उसके पास होती है तथा विवाह के समय होनेवाला सारा व्यय भी वही करता है।

कठोलण : (मं.) निरामिष भोजन। विवाहादि के अवसर पर दो तरह की धाम बनती है–सामिष तथा निरामिष। निरामिष भोजन को कठोलण कहा जाता है, जिसमें सेपूवड़ी, दाल, खट्टा, मीठा, राजमाश, मटर-पनीर और कोहल आदि बनते हैं।

कड़ेवा : (मं.) द्वितीय विवाह। इसमें पति के स्वर्गवास होने पर अथवा जीवित पति से सम्बंध विच्छेद हो जाने पर स्त्री किसी अन्य सजातीय व्यक्ति से विवाह कर सकती है। इस विवाह में दूल्हा बारात ले कर दुलहन लेने नहीं जाता है, अपितु उसके सगे-सम्बंधी, भाई, चाचा आदि जाते हैं। सर्वप्रथम खेवट नाम की तहरीर लिखी जाती है, जिसमें बिरादरी या पंचों द्वारा इस रिश्ते को दी गई स्वीकृति दर्ज होती है। तब वधू उपस्थित लोगों के चरण धोती है और बुज़ुर्गों के पैर छूती है। सुहाग के रूप में उसकी नाक में लौंग पहनाई जाती है और हाथ में कड़ा। वधू को कड़ा पहनाने के कारण इसका नाम कड़ेवा युक्तिसंगत है। कड़ेवा की स्थिति में यदि स्त्री गर्भवती अवस्था में अपने पति को छोड़ कर दूसरे पुरुष के साथ शादी करती है तो उसका गर्भस्थ शिशु पहले पति का रहता है।

कणदेओ : (बि.) दे. कौहरा लिखणा।

कनकोड़ी : (बि.) वह लड़की जो राजपरिवार की कन्या के विवाह के समय मायके से उसके साथ भेजी जाती है। यह ब्राह्मण कन्या होती है और उसका सारा व्यय मायके की ओर से ही किया जाता है। एक तरह से वह कन्या की सखी होती है, जो प्रत्येक कार्य में उसकी सहायता करती है।

कन्यादान : कन्या का दान। लड़की के विवाह के अवसर पर उसके माता-पिता व मामा-मामी तब तक कुछ नहीं खाते जब तक पाणिग्रहण संस्कार नहीं हो जाता। वेदी में माता-पिता कन्या का हाथ वर के हाथ में देकर संकल्प लेकर बेटी का दायित्व उसे सौंप देते हैं। उसके बाद वे अपनी लड़की के घर भोजन ग्रहण नहीं करते। यदि उन्हें विशेष परिस्थिति में करना भी पड़े तो उसके बदले उसे पैसे दे देते हैं। कन्यादान के समय महिलाएँ गाती हैं–

हथ विच गड़ुआ, मोडे पर परना, विच कुशा दी डाली ऐ
हुण किहां थर–थर कम्बे बाबा, हुण तेरे धर्मे दी बेला ऐ
लोक तां जांदे बाबा सौ सठ कोही, तेरे दर विच गंगा बगैंदी ऐ
गऊआं दे दान बाबा नित उठ करदा, धीयां दे दान छमाहिया ए
गऊआं दे दान ब्राह्मण लैंदे धीया दे दान जुआईं ए...

कपड़े धूपणे : (मं.) वस्त्र पूजन। सेहराबंदी से पहले स्नान के बाद दूल्हे को

'कौहरे' के पास ले जाया जाता है। वहाँ पर मामा या बहन द्वारा लाए गए कपड़ों को लौंग व छोटी इलायची की धूपनी देकर उसे वस्त्र पहनाए जाते हैं। यदि वस्त्रों के साथ कोई ओपरी बला आ गई हो तो धूपनी देकर उसे दूर भगाया जाता है।

कलछोर : (ला.) लाहुल क्षेत्र में समारोह के आरम्भ में अतिथि-सत्कार करते समय अथवा देवता का स्वागत करने के लिए जो पूजा की जाती है, उसे कलछोर कहते हैं। ऐसे विशिष्ट अवसरों पर घर की कोई कन्या या स्त्री पारम्परिक वेशभूषा में सुसज्जित हो कर हाथ में 'छंग' से भरा पात्र ले कर आती है। पात्र के मुख पर तीन कोनों में घी के तिलक लगे होते हैं। तब कोई बुजुर्ग मंत्र पढ़ता है और वह स्त्री फूल अथवा हरी घास के तिनके के साथ तब तक थोड़ा-थोड़ा छंग छिड़कती रहती है, जब तक मन्त्रवाचन समाप्त नहीं हो जाता। तत्पश्चात् वह मुख्य अतिथि के कटोरे में छंग भर कर उसके माथे पर घी का टीका लगाती है और प्रणाम करती है। यह प्रक्रिया वह बैठक में बैठे सभी मेहमानों के साथ क्रम से दोहराती है।

कलश : धार्मिक कार्य के शुभारम्भ का मंगल कलश। प्रत्येक संस्कार में पुष्प-पल्लव और जल से पूर्ण तथा नारियल से सुसज्जित कलश की प्रतिष्ठा, पूजा-अर्चना सर्वप्रथम की जाती है। इसे इस भावना से किया जाता है कि सभी देवी-देवता कलश में प्रतिष्ठित होकर शुभ कार्य को सम्पन्न कराएँ। कलश पीतल, ताँबा या मिट्टी का होता है, जिसे गोबर से सुंदर आकृतियों को चित्रित कर, सिंदूर से टीका लगाकर सजाया जाता है।

कलि : (मं.) वर और कन्या के विवाह से कुछ दिन पहले गाँववालों की ओर से उन्हें आमंत्रित कर दिया जानेवाला विशेष भोजन।

कलियारी स्नान : (मं.) विवाह से ग्यारह-बारह दिन पूर्व लड़के व लड़की द्वारा अपने-अपने घर पर किया गया स्नान। इसके बाद ये भोजन अपने घर पर न करके अपने सम्बंधियों और गाँववालों के घर ही करते हैं। विवाह हो जाने के बाद ही अपने घर भोजन करते हैं।

कलिहर : दे. कलीरा।

कलीचड़ी : बिना नग और नक्काशी की सोने या चाँदी की अँगूठी जिसे हाथ की अंगुली में पहना जाता है। दूल्हा इसे शादी की वेदी में अपनी सालियों

को भेंट करता है। पुराने समय में यह प्रायः चाँदी की दी जाती थी, लेकिन अब सोने की कलीचड़ी का प्रचलन हो गया है।

कलीरा : नारियल, कौड़ियों और मखानों आदि को गूँथकर बनायी हुई आनुष्ठानिक माला। इसे विवाह के समय 'सांद' में कन्या की कलाई में बाँधा जाता है। गरी के गोले को मध्य से दो बराबर हिस्सों में काटा जाता है। कटे हुए टुकड़े के केंद्र में छेद डाल कर इसमें चाँदी का एक छत्र पिरोया जाता है और मौली के तीन हिस्से करके इन्हें सुंदर गूँथा जाता है। लगभग चार इंच गूँथ कर तीनों लड़ियों में कौड़ियाँ, मखाने आदि पिरोए जाते हैं। इस प्रकार लड़ियों को बीच-बीच में गूँथकर तीन या पाँच बार कौड़ियाँ पिरोई जाती हैं और मौली में ऐसी गाँठ लगा दी जाती है कि दुलहन की बाजू में उसे आसानी से बाँधा जा सके। सांद में मामा द्वारा लाया गया कलीरा सबसे पहले बाँधा जाता है और इसके बाद अन्य लोग कलीरे बाँधते हैं। नारियल को श्रीफल-शुभ का सूचक और कौड़ी को आँख का प्रतीक मान कर कुदृष्टि से बचने के लिए इसे दुलहन को पहनाने की परम्परा है। ससुराल में धामवाले दिन प्रातः-स्नान के समय इन्हें उतारा जाता है और ननदों में बाँटा जाता है। शगुन के तौर पर एक-एक कलीरा दोनों बाज़ुओं में रखा जाता है, जो लड़की के मायके में उतारे जाते हैं और इसके साथ ही वापिस ससुराल भेजे जाते हैं।

कलीरा को **कलिहर** भी कहते हैं। कलिहर और कलीरे में अंतर सिर्फ इतना है कि कलीरे में नारियल का आधा टुकड़ा पिरोया जाता है, जबकि कलिहर में नारियल के पूरे गोले के साथ आधे-आधे चार नारियल पिरोये जाते हैं।

कहाणी लाणा : (बि.,शि.) दे. कुड़माई।

काजल़ बाहणा : एक वैवाहिक कृत्य। सेहरा बाँधने के बाद सभी निकट सम्बंधी वर को टीका लगाते हैं। इसी समय भाभी उसकी आँखों में काजल डालती है और दूल्हा उसे 'लाग' देता है। काजल सम्भवतः इसलिए भी डाला जाता है ताकि दूल्हे को नज़र न लगे और दुरात्माएँ उससे दूर रहें। इसके साथ काजल सौंदर्यवर्द्धक भी होता है। इस अवसर पर महिलाएँ

गीत गाती हैं--

सुरमा बाहेयां भाबो, मैं घर सौह्‌रेयां दे जाणा
हाखीं काचरियाँ द्‌योरा सुरमा बाही मैं गुआया
हाखीं खरियाँ भाबो, तिज्जो बाहणा नीं आया...

काठो भानणो : (शि.) तलाक का एक तरीका। इस शब्द की व्युत्पत्ति काष्ठ+भग्न से हुई है अर्थात् लकड़ी तोड़ना। शिमला ज़िला के रोहड़ू क्षेत्र में विवाह सम्बंध का विच्छेद बहुत आसान है। किसी भी कारण से यदि लड़की अपने ससुराल में नहीं रहना चाहती है तो वह स्वयं मायके आ जाती है। 'बोइदाल' भेज कर उसे ससुराल वापिस बुलाने के प्रयास किए जाते हैं, इस पर भी जब वह तैयार नहीं होती तो उसकी वापिस न लौटने की इच्छा को जान कर ससुराल वाले **बिष्टु** को ले कर लड़की के घर जाते हैं, जहाँ पर रस्मी बातचीत के बाद भी यदि समझौता न हो पाए तो बिष्टु चूल्हे से कोई लकड़ी या तिनका उठा कर लड़के और लड़की के बीच तोड़ देता है। उसे विवाह विच्छेद का प्रतीक माना जाता है। इसके पश्चात् स्त्री के मायकेवाले वर पक्ष की तरफ से वधू और उस के सम्बंधियों को दिए गए उपहार और रुपया-पैसा लौटा देते हैं, जिसका पूरा लेखा-जोखा लड़केवाले अपने पास तैयार करके लाए होते हैं। काठो भानणो रस्म को शिमला ज़िला के कुछ अन्य स्थानों में **डिंग चड़ाई** यानी लकड़ी तोड़ना, **चोठ** तथा **रीत** भी कहते हैं।

चम्बा ज़िला के जनजातीय क्षेत्र में काठ के स्थान पर धागा तोड़कर तलाक लिया जाता है। तलाक लेने की स्थिति में पति-पत्नी दो तीन व्यक्तियों के समक्ष एक धागे को दोनों सिरों से पकड़ते हैं और अपनी-अपनी तरफ खींच कर इसे बीच से तोड़ देते हैं। यदि तलाक सहमति से हो रहा हो तो इसका हरजाना नहीं देना पड़ता अन्यथा तलाक लेनेवाला दूसरे पक्ष को पैसे देता है।

कामण : (ऊ.) वशीकरण का एक तरीका। शादी के समय दूल्हा जब दुलहन के द्वार पर आता है तो 'सतनाला' खोलने की रस्म के बाद द्वार पर ही सालियाँ खूब बोरवाली पाजेब दूल्हे के आगे, कभी कान के पास और कभी पैर के पास बजाती हुई कामण गीत गाती हैं –

साजन देया कामनड़े बस आयाँ

हत्थी कामण पैरी कामण, कामण सुरमेदाणी
ऐसे कामण पा मेरी अति बीबी
सासे गोली बहुरानी
लड़ीकिए सास गोली बहुरानी
हत्थी कामण पैरी कामण, कामण पैर दी जुत्ती
ऐसे कामण पा मेरी अति लाडो
पैर मले दल सुत्ती...

लोकविश्वास है कि कामण गाने से पति अपनी पत्नी के वश में हो जाता है।

कामद : (कां.,ह.) दे. कौहरा लिखणा।

कारज : शादी, गृह प्रवेश, मुंडन आदि के अवसर पर मनाया जानेवाला उत्सव। कारज करवानेवाला व्यक्ति दिल खोल कर पैसा खर्च करता है और आमंत्रित व्यक्तियों को भोजन कराता है तथा निकट सम्बंधियों को उपहार स्वरूप वस्त्र देता है।

कार पूजणा : (शि.,सि.) विवाह की एक रस्म। शिमला व सिरमौर क्षेत्र में विवाह से सम्भवतः एक सप्ताह अथवा दस दिन पहले वर पक्षवाले अपने ब्राह्मण, नाई तथा गाँव के कुछ मुख्य व्यक्तियों के साथ दोनों पक्षों के गाँवों के बीच के रास्ते में किसी जलाशय के पास एकत्र हो जाते हैं। वहाँ कन्या पक्षवाले भी पहुँच जाते हैं और पुरोहित द्वारा पूरे विधि-विधान से कार (रेखा) बाँधी जाती है। लड़कीवाले वर पक्षवालों को एक निश्चित दिन पर बारात सहित अपने यहाँ आने का निमन्त्रण देते हैं और बारात आदि की संख्या भी निश्चित की जाती है। इसे कार पूजणा अथवा 'ब्याह गणना' कहते हैं। इस दिन के पश्चात् वर किसी भी स्थिति में बारात से पहले इसका लंघन नहीं करता अर्थात् उस रास्ते से नहीं गुज़रता और दोनों ओर विवाह की तैयारियाँ आरम्भ हो जाती हैं। रात को गाँव की स्त्रियाँ इकट्ठी हो कर गीत गाती हैं। कार पूजा के पश्चात् विवाह निश्चित तिथि को अवश्य किया जाता है, चाहे दोनों पक्षों के यहाँ किसी की मृत्यु भी क्यों न हो जाए।

काला महीना : भाद्रपद मास। इस मास को हिमाचल प्रदेश के शिवालिक

क्षेत्र में काला महीना कहा जाता है। नवविवाहिताएँ पूरे मास अपने मायके में ही रहती हैं। धारणा है कि इस महीने में सास तथा नई बहू साथ रहें तो उनकी आपस में लडाई होती है।

किड़ा : (कां.) शिविर। किड़ा चार-पाँच मीटर चौड़ा और नौ से दस मीटर ऊँचाई तक का बनाया जाता है। भूमि के परिमाण के अनुसार बाँस के डंडों को चारों ओर खड़ा कर दिया जाता है। इसके ऊपर खड़ (विशेष प्रकार का घास) का छप्पर डाला जाता है, जिससे ग्रीष्म में ठंडक व शरद ऋतु में उष्णता बनी रहती है। विवाहादि समारोहों में इसका निर्माण किया जाता है और भोज का आयोजन इसी के भीतर होता है। शिमला ज़िला के चौपाल क्षेत्र में इसे **कुल्ला** कहते हैं।

किलटी : (कु.,शि.) बाँस का बना शंकु आकार का उपकरण जिसे सामान ढोने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। 'दुणोज़' के उपरांत जब वर-वधू को ससुराल विदा किया जाता है तो वधू के मायके से पूरियाँ, पकवान आदि किलटी में भर कर दिए जाते हैं, जिसे ससुराल में नाते-रिश्तेदारों व सगोत्रियों में बाँटा जाता है। किलटी छोड़ने के लिए मायके से व्यक्ति भेजे जाते हैं। पकवान आदि को किलटी में भर कर भेजने के कारण इस प्रथा का नाम किलटी उचित लगता है। कहीं इसे **घिड्डी** भी कहते हैं।

कुंगू : सं. कुंकुम। हर मांगलिक कार्य में इसका प्रयोग किया जाता है। सगाई के पश्चात् विवाह की तिथि निश्चित होने पर लड़के के घर से कन्या के घर कुंगू भेजा जाता है और वापसी में कन्या पक्षवाले वर के घर कुंगू भेजते हैं। कुंगू भेजने के बाद शादी होने तक दोनों परिवार किसी भी शोक में सम्मिलित नहीं होते।

कुंडली : दे. टिपड़ा–जन्मखंड।

कुंडली मिलान : लड़का-लड़की व दोनों परिवारों की सहमति के बाद कुंडली यानी ग्रह मिलान किया जाता है। सफल विवाह के लिए दोनों के अधिक से अधिक गुणों और ग्रहों का मिलना शुभ माना जाता है।

कुंभ : दे. कलश।

कुआर झाती : (कां.) विवाह में किया जानेवाला एक कृत्य। इसमें बारात के कन्या पक्ष के यहाँ पहुँचने पर सबसे पहले वर को नहलाया जाता है।

उसे खड़ावें, धोती और जनेऊ पहनाए जाते हैं। कन्या का भाई उसे सोने की अँगूठी पहनाता है और दायें हाथ के अँगूठे में मौली बाँधता है। उसी से पकड़ कर वह दूल्हे को लग्न-मंडप में लाता है। उस समय कन्या को दूर से वर के दर्शन करवाए जाते हैं। ऐसा विश्वास है कि यदि कन्या वर को प्रसन्नता से देखे तो सारा जीवन सुखमय व्यतीत होता है। यह शब्द कुमार और झाँकी से बना है। झाँकी का अर्थ दूर से होनेवाला दर्शन है। क्योंकि यह कुँआरे में करवाया गया दर्शन है, इस लिए इसका नाम कुआर झाती युक्ति संगत है।

कुज़ी ब्याह : (ला.) विवाह का एक रूप। यह प्रेम विवाह है। जनजातीय क्षेत्र लाहुल-स्पीति में लड़का और लड़की की आपसी बातचीत के पश्चात् एक दिन लड़का अपने मित्रों के साथ लड़की को चुपके से अपने घर ले आता है। लड़की के माँ-बाप को इस बारे में कुछ पता नहीं होता। लड़के के घर में सारी विधियाँ 'तेबग्स्तोन' की भाँति की जाती हैं। दूसरे दिन दो व्यक्ति सरा (देसी शराब) के साथ लड़की के मायके जा कर चुपके से विवाह रचाने की क्षमा माँगते हैं। लड़की के माता-पिता के मान जाने के पश्चात् लड़के के घर से लाई गई शराब पी जाती है। तब लड़की को दी जानेवाली सम्पत्ति जिसे 'छेती' कहते हैं, निर्धारित करते हैं। यह पूँजी लड़की को लड़का देता है जो केवल रुपयों के रूप में दी जाती है। यह लड़की की निजी सम्पत्ति होती है।

कुज्जू : लोटे की आकृति का मिट्टी का बना पात्र। इसे विवाह में वर-कन्या के स्नान के लिए तथा अन्य मांगलिक कार्यों में प्रयोग किया जाता है।

कुड़माई : रिश्ता पक्का करने की रस्म। मूल रूप में कुड़माई शब्द हिमाचल के ऐसे समाज में प्रयुक्त होता है जहाँ लड़के और लड़की की सहमति को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता तथा उनके माँ-बाप ही शादी तय कर लेते हैं। कुड़माई वस्तुतः कुड़म-कुड़मणियों की रज़ामंदी और वचनबद्धता होती है। यहाँ की विशेषता यह है कि रिश्ते की बात लड़के की ओर से चलाई जाती है। आरम्भ में नाते-रिश्ते की स्त्रियाँ ही बात चलाती हैं। जब लड़की के माता-पिता की ओर से सकारात्मक उत्तर आता है तो रिश्ता लेकर लड़के का पिता अपने किसी निकट सम्बंधी के साथ लड़की के माँ-बाप

के घर जाता है। रिश्ता स्वीकार हो जाने पर किसी शुभ दिन पुरोहित के हाथ गुड़ भिजवाया जाता है। कहीं-कहीं कुडमाई के लिए गुड़ के अलावा लडकी के लिए आभूषण, वस्त्र आदि भी भेजे जाते हैं। लडकी के माता-पिता तथा छोटे भाई-बहन के लिए भी कपड़े भेजे जाते हैं। पुरोहित धूप-दीप से सूर्य, कुंभ और गणपति की पूजा कर आभूषण और वस्त्र लड़की की माता को सौंपता है और उपस्थित लोगों में गुड़ बाँटा जाता है। इस तरह विवाह की बात पक्की मानी जाती है। कुड़माई तोड़ना घोर सामाजिक अपराध माना जाता है। जब तक लड़के या लड़की में कोई बड़ा दोष न हो, कुड़माई नहीं टूटती। यदि अहंकारवश तोड़ दी जाए तो दोषी व्यक्ति को समाज अच्छी नज़र से नहीं देखता।

कुद-पा : (ला.) सूत तोड़ना, छूट, तलाक। लाहुल में यदि पति-पत्नी के मध्य अच्छा सम्बंध न हो तो दोनों तलाक देने के लिए स्वतंत्र हैं। परंतु आमतौर से छूट यहाँ बहुत नहीं होती। यदि कोई पुरुष अपनी पत्नी को छोड़ना चाहता है तो उसे क्षतिपूर्ति के रूप में पत्नी को सौ या उससे अधिक रुपए देने पड़ते हैं। यदि पत्नी तलाक लेना चाहती है तो उसे पति को कम रुपए देने पड़ते हैं। यानी पत्नी को छूट लेना अधिक सरल है। तलाक की रस्म अदा करने के लिए ऊन के एक पतले धागे के दोनों सिरों को स्त्री-पुरुष अपनी-अपनी कनिष्ठिका में लपेट कर कुद-पा कहते हुए खींच कर तोड़ देते हैं और इस प्रकार सम्बंध विच्छेद हो जाता है।

कुलज पूजणे : कुल देवी-देवता का पूजन। विवाह उपरांत धामवाले दिन या उससे अगले दिन कुलज पूजे जाते हैं। इस उपलक्ष्य में किसी-किसी परिवार में बकरा भी काटा जाता है।

कुलजा निंदरना : कुलदेवता को निमंत्रण देना। विवाहोत्सव में वर तथा कन्या पक्ष की ओर से सर्वप्रथम निमंत्रण अपने कुलदेवता को दिया जाता है। उसके बाद ही बाकी लोगों को आमंत्रित किया जाता है।

कुल़भोज : (सि.) विवाह के अवसर पर काम करनेवाले व्यक्ति यथा पुरोहित, बजंत्री, पत्तलें तैयार करनेवाले, 'दुणाठी' आदि को परिवार के सदस्यों की संख्या के अनुसार घर भिजवाया जानेवाला भोजन।

कुल्ला : (शि.) दे. किड़ा।

कोह्रा न्यूंदा : केवल एक व्यक्ति को दिया जानेवाला निमंत्रण। जहाँ 'चुल्ही न्यूंदा' में पूरे परिवार को निमंत्रण दिया जाता है, वहाँ कोह्रा न्यूंदा में परिवार के केवल एक व्यक्ति को ही आमंत्रित किया जाता है।

कौडी : सं. कपर्दिका। कौडी को शिवालिक क्षेत्र तथा इस क्षेत्र के मध्यभाग में कई स्थानों पर विवाह के अवसर पर नववधू की आनुष्ठानिक माला 'कलीरा' तथा 'कंगणा' में गूँथा जाता है। कौड़ी निश्चित रूप से प्रजनन क्षमता की द्योतक है। लोकमान्यता के अनुसार कौड़ी को आँख का प्रतीक भी माना जाता है। इसी कारण इसका प्रयोग जादू-टोनों और कुदृष्टि से बचने के लिए किया जाता है और काले धागे में कौडी बाँध कर बच्चों के गले में भी पहनाई जाती है। इस कार्य के लिए अरथी के ऊपर से फेंकी गई कौड़ी प्रभावपूर्ण मानी गई है। ऐसा विश्वास है कि बुरी नज़र पड़ने पर यह कौड़ी टूट जाती है। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग साज-शृंगार के लिए भी होता है।

कौर बुदरनो : (कु.) 'कौहरा' ढकना। वर को कन्या पक्ष में जब कौहरे के पास ले जाया जाता है तो उसकी सालियाँ वस्त्र पकड़कर कौहरे को ढक देती हैं और अपना 'लाग' लेने के बाद ही उसे कौहरा दिखाती हैं।

कौली खाणा : (कु.) भोजन कराना। 'ध्याड़ौ हेरनौ' से लेकर विवाह आरम्भ होने तक के समय में लड़के के सम्बंधी उसे भोजन पर आमंत्रित करते हैं जिसे कौली खाणा कहते हैं। इसी प्रकार लड़की के रिश्तेदार भी उसे भोजन पर बुलाते हैं। कई क्षेत्रों में इसे **टुकड़ा खाणा** भी कहते हैं। भोजन से पूर्व लड़के व लड़की को चुल्लू देने की रस्म निभाई जाती है, जिसमें हाथ पर दो चम्मच घी खाने को दिया जाता है और सिर पर भी डाला जाता है। अंतिम कौली मामा की ओर से दी जाती है, जिसमें पूरे गाँव के लोगों को आमंत्रित किया जाता है।

कौहरा : वह कमरा जिसमें कुलदेवता की स्थापना होती है। यहाँ विवाह सम्बंधी पूजा और कुछ रस्में अदा की जाती हैं।

कौहरा लिखणा : कोहबर। एक वैवाहिक कृत्य। विवाह से कुछ दिन पूर्व मुहूर्त के अनुसार घर के अंदर एक कोने में थोड़ी-सी दीवार को गोबर-मिट्टी से लीपकर उस पर गेरू से दूल्हा-दुलहन सहित बारात अंकित की जाती

है, जिसे कौहरा लिखणा कहते हैं। कौहरा लिखने का कार्य नाईन करती है। इसके नीचे लाल मिट्टी से रंगा पटडा रखा जाता है, जिस पर कलश और गणपति की स्थापना की जाती है। साथ ही प्रज्वलित कर दीपक रखा जाता है। विवाह सम्बंधी सभी कृत्य इसी स्थान पर किए जाते हैं। पाणिग्रहण संस्कार के बाद दूल्हा-दुलहन को वेदी से कौहरे के पास ले जाते हैं। पहले दुलहन अंदर जाती है और दूल्हे के प्रवेश करने से पूर्व उसकी सालियाँ दरवाज़े पर एक चादर पकड़ कर उसे अंदर आने से रोकती हैं। बिना अपना 'नेग' लिए उसे अंदर नहीं आने दिया जाता। कौहरा पूजन से पहले भी ये कौहरे को एक चादर से ढक देती हैं और अपना 'लाग' लेकर ही चादर हटाती हैं।

क्वाएँ : दे. लिंगचोला।

खनोढ : (मं.) विवाह सम्बंध करवानेवाला। दे. बचोला।

खाण-खाणा : (शि.) एक वैवाहिक कृत्य। विवाह हेतु 'बाँदा' डालने के उपरांत लड़केवालों की ओर से तीन-चार व्यक्ति किसी भी शुभ दिन में लड़की के घर जा कर शादी पक्की करते हैं। वहाँ उन्हें विशेष खाना खिलाया जाता है। निश्चित रूप से खाना खिलाने की परम्परा के कारण इस प्रथा का नाम खाण-खाणा पड़ा है।

खारे बदलणा : (का.,ह.) विवाह की एक रस्म। खारा बाँस का बना एक विशेष टोकरा होता है, जिसमें संस्कार कर्म की विविध सामग्री रखी जाती है। वस्तुओं के आदान-प्रदान के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। विवाह के अवसर पर कन्यादान के समय वर तथा कन्या को वेदी में खारे पर गद्दी बिछा कर बिठाया जाता है। पहले कन्या को वर की बायीं ओर बैठाया जाता है। चार फेरों के बाद कन्या को वर के स्थान पर और वर को कन्या के स्थान पर बैठाया जाता है। खारे बदलणा का लाक्षणिक अर्थ बेटी का माता-पिता को छोड़ कर पराये घर का हो जाना है। इस समय गाये जानेवाले गीत में भी इसका वर्णन आता है –

बाबे दी मैं लाडली वर अछड़ा पाया जी
जी वर अछड़ा पाया
बाबुल बेटड़िये हुण होई पराई

बाबे ने मणस दित्ती बस चलदा न कोई
खारियाँ बदल लइयाँ हुण होई पराई...

खासा : सन की रस्सियों से बुनी आसनवाली चौकी। इसके दायें-बायें दो बाँस के डंडे बंधे होते हैं। इन डंडों को दो और मोटे डंडों से सीधा जकड़ा जाता है, जिनकी सहायता से 'ज़माणी' इसे उठाते हैं। यह चारों ओर से बेपर्दा होता है, लेकिन ऊपर से गोटेदार लाल रेशमी वस्त्र से छाया होता है। इसके शिखर पर चाँदी का कलश लगा होता है। शादी के दिन वर को इसमें बिठा कर कन्या के घर ले जाते हैं।

खिन्नु : कपड़े की गेंद। इसे सितारों से जड़ कर शादी में लड़की को दहेज में दिया जाता है। इसके साथ एक छुनछुना भी दिया जाता है। इस प्रकार के तीन या पाँच खिलौने साथ भेजे जाते हैं। मंडी में इसे वर की ओर भेजी जानेवाली 'द्रुभा री छड़' के साथ कन्या के घर से भेजा जाता है।

खिल्लां खलाणा : (चं.,कां.) खीलें खिलाना। विवाह की एक रस्म जिसमें खीलों से खेला जाता है। कन्या का पिता वेदी में बैठे वर-कन्या के पाँव धुलाता है। हवन द्वारा चारों दिशाओं का पूजन कर सभी देवी-देवताओं का आह्वान किया जाता है। एक छाज में जौ या धान की खीलें रखी जाती हैं। वर कुछ खीलों को तीनों दिशाओं में रखता है, जिन्हें कन्या की बहनें जल्दी-जल्दी एकत्र कर छाज में डाल देती हैं। पुनः इस क्रम को दोहराया जाता है, परंतु खीलें इस बार वर को ही एकत्र करनी होती हैं।

खीत : (सि.) दे. रीत।

खेवट : (सि.) तहरीर। यह स्त्री के द्वितीय विवाह से पूर्व लिखी जाती है, इसमें बिरादरी या पंचों द्वारा रिश्ते की स्वीकृति दर्ज होती है।

गंढ पाणा : (चं.) विवाह की एक रस्म। विवाह को जब आठ दिन शेष रहते हैं तो लड़केवाले लड़की के घर शगुन डालने जाते हैं, जिसे गंढ पाणा कहते हैं। इस रस्म के बाद वर तथा कन्या को घर से दूर नहीं भेजा जाता। नदी-नाले पार करना वर्जित होता है।

गणेश पूजा ब्याह : (कु.) विवाह का एक प्रकार। इसमें वर पक्ष के कुछ आदमी वर सहित या वर के बिना ही लड़कीवालों के घर जा कर लड़की को घर लाते हैं तथा वर के घर में पुरोहित गणपति आदि तथा कुलदेवता

की पूजा करा कर विवाह सम्पन्न कराता है और कन्यापक्ष से आई हुई स्त्रियाँ या लड़की के भाई आदि को विदा किया जाता है। बाहरी सिराज में इसे **बदाणी** कहते हैं।

गरीबचारा : विवाह का एक प्रकार। इसमें दूल्हा दुलहन के घर बारात ले कर नहीं जाता, बल्कि वह किसी शुभ दिन अपनी बहन के साथ दुलहन के घर जाता है और द्वार पर कुम्भ की पूजा करता है। तब वह कम्बल पर बैठता है और दुलहन को उसकी माँ दूल्हे के साथ बिठाती है। खाना खाने के बाद लड़की के पिता से विदा ले कर दूल्हे के घर जाते हैं, जहाँ पुनः कुम्भ पूजा की जाती है। दोनों घरों में कुम्भ की पूजा के बाद विवाह सम्पन्न माना जाता है।

गरु : (ला.) अंतर्जातीय विवाह से उत्पन्न वर्णसंकर वर्ग। विशेषकर पट्टन घाटी में बौद्धों एवं स्वांगलाओं के बीच होनेवाले अंतर्जातीय विवाह से पैदा हुई संतान को गरु कहा जाता है। यह स्वांगला पिता तथा बौद्ध माता से उत्पन्न संतति होती है। इनके वैवाहिक एवं भोज सम्बंध या तो बौद्धों के साथ हो सकते हैं या अपने ही वर्ग के अन्य गरुओं के साथ। ऐसे पुरुष की मृत्यु पर उसका क्रियाकर्म स्वांगलाओं के रीति-रिवाज़ों के अनुसार किया जाता है और स्त्री की मृत्यु पर बौद्धों के अनुसार। इसी प्रकार यदि कोई गरु कन्या किसी बौद्ध कुमार के साथ विवाह करे तो उसकी मृत्यु पर भी बौद्ध रीति-रिवाज़ों का पालन किया जाता है। गरुओं को स्वांगलाओं से निम्न स्तर का किंतु बौद्धों से उच्च स्तर का समझा जाता है। इस वर्ग का संकेतक गरु शब्द गोजातीय शब्दावली से लिया गया लगता है। गाय तथा याक के मेल से उत्पन्न बछड़े को भी गरु कहा जाता है। इनमें परिलक्षित होनेवाले परिवर्तन के आधार पर ही गरुओं के सम्बंध में भी यह सामाजिक मान्यता पायी जाती है कि जब गरु लड़का किसी स्वांगला लड़की से विवाह कर लेता है और यह क्रम तीन-चार पीढ़ी तक चलता है तो वह अंत में विशुद्ध स्वांगला वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। दूसरी ओर वह यदि बौद्ध कन्या से विवाह कर लेता है और यह क्रम इसी रूप में तीन-चार पीढ़ी तक रहता है तो अंत में वह शुद्ध रूप से बौद्ध हो जाता है।

गाडर : (कु., शि.) द्वितीय विवाह। इसमें वर पक्ष की ओर से एक-दो व्यक्ति

स्त्री के घर जाते हैं और उस को अपने साथ ले आते हैं। स्त्री को उसके सम्बंधी व गाँव के लोग छोडने आते हैं। वर के घर के द्वार की दहलीज पर गेहूँ या धान की एक टोकरी, जलपूर्ण कुम्भ तथा दीपक रखा जाता है और दुलहन वहाँ पहुँच कर दहलीज की पूजा करती है। इसके बाद अंदर प्रवेश करने पर उससे चूल्हे की पूजा कराई जाती है। सम्पन्न लोग इस दिन सभी ग्रामवासियों और दुलहन के साथ आए लोगों को भोज कराते हैं और बजंत्री, नाई, पंडित और अन्य कार्यकर्ताओं को उनका मेहनताना दिया जाता है। जबकि गरीब लोगों के घर भोज नहीं होता, केवल दुलहन के सम्बंधियों को भोजन कराया जाता है।

गाली लाणा : दे. सिठणी।

गासी पूजणा : (मं.) कुलदेवी या देवता की पूजा करना। इन्हें विवाह के पूजा स्थल में दीवार पर गोबर से बनाया जाता है और पंडित इनकी पूजा घी-दूध से करता है। पुत्र का विवाह सम्पन्न हो जाने पर घर की सभी महिलाओं द्वारा सामूहिक रूप से पूजा-गृह में जा कर पूजा की जाती है। यह वस्तुतः प्रभु का धन्यवाद करने के लिए की गई पूजा है। महिलाएँ देवता के निमित्त बबरू, भल्ले और मिठाई का प्रसाद लगाती हैं। वे फूल, अक्षत और कुमकुम से देवता की पूजा और प्रार्थना करती हैं कि नवविवाहित दम्पती का वैवाहिक जीवन सुखमय हो।

गुड़ : ईख या ताड़-खजूर के रस को गाढ़ा करके बनाई गई भेली। पहले विवाहादि किसी भी खुशी के अवसर पर गुड़ बाँटने की प्रथा थी, परंतु अब मिठाई बाँटी जाती है।

गुड़त : (चं.) जब वरयात्रा निकलती है तो जाते हुए गुड़ और घी बाँटा जाता है। इसे गुडत कहते हैं। बारात जब किसी गाँव से होकर गुज़रती है तो उस गाँववाले भी बारातियों को गुड़-घी बाँटते हैं।

गुड़ बौरनी : (कु.) विवाह का एक भेद। कुल्लू घाटी में विवाह पहले माता-पिता द्वारा ही तय किए जाते थे। इसमें लड़की-लड़के को माँ-बाप का निर्णय किसी भी स्थिति में स्वीकार करना पड़ता था। लड़की-लड़के छोटे ही होते थे कि उनका विवाह निश्चित हो जाता था। विवाह निश्चित होने के पश्चात् लड़केवाले लड़की के घर जा कर एक छोटा विवाह रचाते थे।

इस अवसर पर गुड़ बाँटा जाता था। अतः इस छोटे विवाह को गुड बौरनी के नाम से जाना जाता था। इसके बाद लड़का-लड़की अपने-अपने घर में रहते थे और लड़की जब जवान होती थी तो लड़का कभी भी उसे अपने घर ले आता था।

गुड़ भनणा : (चं.) एक वैवाहिक रस्म। जब किसी लड़के के विवाह की बात पक्की हो जाती है तो उसके घरवाले गुड़ की भेली तोड़ कर आस-पास के सगे-सम्बंधियों में बाँटते हैं। इस प्रथा को गुड़ भनणा कहते हैं। गुड़ डाल कर बनाई गई मीठी रोटी को तोड़ कर एक-दूसरे का मुँह मीठा कराने की प्रथा भी है।

गुढणी : (चं.) दे. झंझराड़ा।

गुणे : विवाह के अवसर पर बनाया जानेवाला गेहूँ के आटे का मीठा खाद्य पदार्थ। आटे को मोयन डाल कर गुड़ के घोल से कुछ सख्त गूँथा जाता है और गुलाब-जामुन के आकार में लगभग एक इंच लम्बा और आधा इंच मोटा बनाकर इसे तेल में तला जाता है।

गुणे खेलना : वधू प्रवेश के बाद दुलहन से 'कौहरे' के पास बर्तन से घी-शक्कर निकलवाया जाता है। उसके बाद गुणे खेलने की रस्म निभाई जाती है। इससे नव वधू का सगे-सम्बंधियों से परिचय होता है। सर्वप्रथम वह अपने पति के साथ गुणे खेलती है। तत्पश्चात् अन्य रिश्तेदारों के साथ। गुणे कम व ज़्यादा देने से उसके कंजूस व दिलेर होने का पता चलता है। वह अँजलि भर गुणे लेकर बारी-बारी से रिश्तेदारों की अँजलि में देती है। वे गुणे उसी को वापिस कर देते हैं और वधू इसे पुनः उन्हीं व्यक्तियों को सौंप देती है और वे वधू के हाथ में कुछ पैसे दे कर गुणे अपने पास रख लेते हैं। गुणे खेलते समय महिलाएँ गीत गाती हैं –

गुणे खेल लाड़ीए अपणे मल्हौरे दे नाल
गुणे खेलेयाँ बी करेयाँ मामे जाचा बी करेयाँ
एहदे गुणेयाँ मन्नेयाँ एहदी आज्ञा मन्नेयाँ
गुणे खेल लाड़ीए अपणी मामी दे नाल
गुणे खेलेयाँ बी करेयाँ मामीए जाचा बी करेयाँ
एहदे गुणेयाँ मन्नेयाँ एहदे गोडेयाँ भन्नेयाँ...

गुलगुला : आटे और मीठे को मिला कर पूड़े की भाँति तेल या घी में पकाकर बननेवाला पकवान। यह विवाह के अवसर पर बनाया जाता है और दुलहन के साथ ससुराल भेजा जाता है। 'गोत कनाला' से पूर्व दुलहन ससुराल में भोजन ग्रहण नहीं कर सकती है, अतः उसे मायके से लाए गुलगुले खिलाए जाते हैं। गोल आकृति होने के कारण रूप सादृश्य से इसकी व्युत्पत्ति गोल शब्द से मानी जा सकती है। हिन्दी में भी गुलगुले के कई अर्थ–कोमल, नरम, मुलायम आदि मिलते हैं। सम्भवतः मुलायम होने के कारण भी इसे गुलगुला कहा जाता है।

गेओचारा : दूल्हे को उसके ससुराल में दिए जानेवाले उपहार। गेओचारा की रस्म मिलनी के बाद निभाई जाती है, इसमें दूल्हे को पैसे, कपड़े और दूसरे उपहार दिए जाते हैं। लोग दूल्हे को तिलक लगाकर उपहार की वस्तुओं को एक थाली में सजा कर उसे भेंट करते हैं। प्रथा अनुसार थाली खाली नहीं लौटाई जाती। इसमें दूल्हे की तरफ से कुछ रुपए डाले जाते हैं, जो कन्या पक्ष के पुरोहित को दिए जाते हैं।

गेरनू-फेरनू : (सि., सो.) द्विरागमन। गेरनू शब्द फेरनू के साथ व्यवहृत होता है। विवाह के पश्चात् वधू जब ससुराल आती है तो वहाँ से दूसरे या तीसरे दिन वर-वधू कुछ ग्राम-वासियों सहित लड़की के मायके जाते हैं। उनके साथ ससुराल से कुछ पकवान भेजे जाते हैं, जिन्हें वहाँ सगोत्रियों में बाँटा जाता है। जब वर-वधू वापिस अपने घर लौटते हैं तो उनके साथ मायके से भी पकवान भेजे जाते हैं, जो उसी प्रकार लड़के के यहाँ बाँटे जाते हैं। पहली बार के इस आदान-प्रदान को गेरनू-फेरनू कहा जाता है। इसे **फेरा-घेरा** तथा चम्बा में **फिरौनी** कहते हैं।

गेरे-फेरे : (सि.) विवाह के मंडप में वर-वधू द्वारा की जानेवाली अग्नि परिक्रमा को गेरे-फेरे कहा जाता है, जिसमें वर-वधू अग्नि को साक्षी मान कर उसकी सात बार परिक्रमा करके जीवन-बंधन में बंध जाते हैं।

गोज : (चं.) विधवा विवाह। दे. झंझराड़ा।

गोत : गोत्र। रक्त सम्बंध पर आश्रित इकाई। विवाह सम्बंध के समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वर और कन्या के गोत्र अपनी माँ और दादी के गोत्र से न मिलते हों। शास्त्रानुसार भी यह विधान है कि छह

पीढ़ियों तक दोनों के गोत्र एक-दूसरे से न मिलते हों; क्योंकि सगोत्र लड़के व लड़की को भाई-बहन माना जाता है।

गोत कनाळा : विवाह का एक संस्कार जिसमें वधू को वर पक्ष के गोत्र में मिलाया जाता है। वर पक्ष की सभी स्त्रियाँ धागवाले दिन वधू को अपने साथ बिठाती हैं और अपनी-अपनी पत्तल से थोड़े-थोड़े चावल उसकी पत्तल में डाल कर उसे भोजन कराती हैं और गीत गाती हैं –

तूं रहाड़े गोत्र रली जा कुड़माँ दिए बेटिए
तूं रहाड़ा खाणा खाई लै-कुड़माँ दिए बेटिए...

गोत रळाई : (कां.) दे. गोत कनाळा।

गोत्राचार : वर-वधू जब वेदी में बैठते हैं तो वधू का गोत्र परिवर्तन मंत्रों के साथ होता है। वर तथा कन्या का पिता वेदी के नीचे बैठ जाते हैं। पुरोहित दूब की एक टहनी कन्या के पिता के हाथ में देता है, जिसका दूसरा सिरा वर का पिता पकड लेता है। कन्या का पिता कहता है– अस्मत् कन्या तुस्मत् गोत्रा। उत्तर में वर का पिता कहता है–तुस्मत् कन्या अस्मत् गोत्रा; अर्थात् मैं आपके गोत्र की कन्या को अपने गोत्र में सम्मिलित करता हूँ। स्त्रियाँ गीत गाती हैं –

तुम पौढ़ो पौंडतो ए गोत्राचारा
बेटी हुई बाबुए गोत्रा का पारा
साँचो पौढ़ो ए पत्री परोहितो
साँचो पौढ़ो गोत्राचारा
तुम पौढ़ो पौंडतो ए पाणिए बरूरा
बेटी हुई बाबुए गोत्रा का दूरा
तुम पाओ पौंडतो ए फुला कैरी कौली
बेटी गेयी लाड़ये गोत्रा दी रौली...

ग्यारी : (कु., शि.) विवाह की वेदी में एक शिला पर स्थापित सप्तमातृकाएँ– ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इंद्राणी और चामुंडा, जिनकी कन्यादान से पहले पूजा की जाती है। वेदी में बनाए या रखे हवन कुंड को भी ग्यारी कहते हैं। इसकी पूर्व दिशा में नवग्रह स्थापित होते हैं। वर और कन्या के वेदी में आने पर उनसे ग्यारी की पूजा करवाई जाती है और

वे इसके गिर्द सात फेरे लगाते हैं, जिन्हें 'लावाँ' कहते हैं।

घड़ोज : विवाह का एक प्रकार। यदि कोई स्त्री विधवा हो जाए तो वह अपने मृत पति के भाई से शादी कर सकती है, जिसे घड़ोज कहते हैं। यह परिवार के सामंजस्य और विधवा समस्या का सामाजिक निदान है।

घरजुआंतरी : (चं.) गद्दी जनजाति में प्रचलित इस विवाह में दूल्हा बननेवाले लड़के को अपने होनेवाले ससुर के घर सात से दस साल तक घरेलू नौकर की भाँति काम करना होता है। यदि लड़का ससुर के घर चौबीसों घंटे रहकर काम करता है तो यह समयावधि सात साल की होती है, यदि काम केवल कुछ घंटों के लिए ही करे तो यह अवधि दस साल तक बढ़ जाती है। दूल्हे को अपने ससुर के अतिरिक्त और किसी सम्बंधी की बेगार नहीं करनी होती। ऐसा विवाह प्रायः तभी सम्पन्न होता है जब लड़का काम की अवधि पूरी करके अपने घर चला जाता है।

घिड्डी : (शि.) दे. किलटी।

घिड्डी तोल़े : (शि.) विवाह की एक रस्म। जब 'किलटी' छोड़नेवाले लड़की के ससुराल से वापिस जाते हैं तो उन्हें खाली न भेज कर किलटी में कुछ अनाज भर कर विदा किया जाता है, जिसे घिड्डी तोल़े डालना कहा जाता है। यह रस्म सम्बंध के आदान-प्रदान की सूचक है।

घींघा घोल़ : (मं.) विवाह में किया जानेवाला लोकाचार। घर से बारात निकलने के बाद एक-दो मर्दों को छोड़कर केवल औरतें ही घर में होती हैं। ये सभी एक कमरे में बंद हो जाती हैं। इनमें से कुछ औरतें मर्दों के वेश में उनकी उच्छृंखलताओं का स्वांग उतारती हैं और आपस में बहुत हँसी-मज़ाक करती हैं।

घूँड त्वारना : घूँघट उतारना। विवाह की रस्में पूरी होने तक वधू को घूँघट में रहना पड़ता है। 'मुँह दिखाई' की रस्म के साथ वर वधू का घूँघट हटा देता है। उसके बाद वह सिर पर चुनरी रखती है, लेकिन घूँघट नहीं निकालती। घूँघट उतारने के बदले में पति सूट, पैसे या गहने के रूप में पत्नी को 'नेग' देता है।

घेरा-फेरा : दे. गेरनू-फेरनू।

घेहड़ : दे. पंगत।

घोड़ी : विवाह के समय वर पक्ष की ओर गाए जानेवाले गीत। दूल्हे की यात्रा अब भले ही पालकी और कारों में होती है, परंतु वरयात्रा आरम्भ होने पर, वर को सर्वप्रथम घोड़ी पर चढ़ाने की रस्म कई जगह ज़रूर निभाई जाती है। घोड़ी एक परम्परा है जो लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त की जाती है। घोड़ी गाये बिना विवाह संस्कार पूर्ण नहीं होता। घोड़ी-गीत विवाह की रस्में आरम्भ होने के समय से ही गाए जाते हैं। गहनों और सुंदर वस्त्रों से सुसज्जित दूल्हा जब घोड़ी पर सवार हो कर प्रस्थान करता है तो महिलाएँ मधुर स्वरों में गीत गाती हैं –

तेरे ताये चाचे दियाँ जाइयाँ वीरा
तिजो घोड़ी चढ़ाउण आइयाँ वीरा
घोड़ी चढ़ वे
कोई बहणाँ कोई भरजाइयाँ वीरा
तिजो घोड़ी चढ़ाउण आइयाँ वीरा
घोड़ी चढ़ वे...

घौर बौसणा : (कु.) घर बसाना। जब कोई कुंआरी लड़की, सधवा या विधवा अपना परिवार छोड़ कर किसी लड़के या पुरुष के साथ भाग कर घर बसाए, उसे धौर बौसणा कहते हैं। ये अपनी इच्छा से या बड़ों की रज़ामंदी से घर बसा सकती हैं। जिस घर में ये जाती हैं वहाँ उन्हें पत्नी का पूर्ण अधिकार प्राप्त होता है।

चंगेर : खुले मुँह और संकरी पैंदीवाली टोकरी, जो ज़्यादा गहरी नहीं होती। इसमें धूप और हवा लगने का पर्याप्त स्थान होता है। गीली वस्तुएँ इसमें रख कर सुखाई जाती हैं। विवाहादि के दौरान पकवान इसी में रखे जाते हैं।

चंदुवा : वेदी के ऊपर लगाया जानेवाला रंगदार वस्त्र जिसमें सजावट के लिए गोटा आदि लगा होता है। इसके मध्य में कुछ पैसों सहित नारियल डाला जाता है।

चंद्रुआं : (मं.) दे. चंदुवा।

चखाउणी : धाम तैयार होने पर सबसे पहले पाँच, सात या नौ प्रौढ़ व्यक्तियों

को धाम चखने के लिए बिठाते हैं, जिन्हें चखाउणी कहते हैं। उन्हें भोजन करवाने से नमक-मिर्च आदि के स्वाद का परीक्षण हो जाता है। उसके बाद सभी आमंत्रित लोगों को धाम खिलाई जाती है।

चड़ : (चं.) विवाह के अवसर पर गाँववालों से लिया गया अन्न। इसे उसी माप में चड़ देनेवाले व्यक्ति के घर विवाह होने पर वापिस किया जाता है। जनजातीय क्षेत्र पांगी, भरमौर में बीस या पच्चीस किलोग्राम प्रति परिवार चड़ देने की प्रथा है। इस प्रकार जिनके घर विवाह होता है उन्हें अन्न खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कुछ क्षेत्रों में इसे **बौरौ** और **चाड़** भी कहा जाता है। यह विवाहादि संस्कारों के अवसर पर ग्रामीण सहकारिता का उदाहरण है।

चड़ी : (शि.) दे. मंजरौली।

चद्दर पाणा : विधवा विवाह। शिवालिक क्षेत्र में किसी स्त्री के पति की मृत्यु होने पर क्रियावाले दिन उसका अविवाहित देवर उसे सबके सामने चद्दर अर्थात् दुपट्टा ओढ़ाता है। इस रस्म के बाद वह उसकी पत्नी मानी जाती है।

चर : विवाह का चूल्हा। बड़े आयोजनों के मौके पर भोजन तैयार करने के लिए ज़मीन में दो फुट गहरी और सात-आठ फुट लम्बी खाई खोदी जाती है और उसमें आग जलाकर खाना पकाया जाता है। आकार में लम्बी होने के कारण इस पर भोजन बनाने के दो-तीन बड़े-बड़े पात्र पंक्तिबद्ध एक साथ रखे जा सकते हैं। भोजन बनाने से पहले चर की धूप-दीप से पूजा की जाती है तथा इसमें गुड़, घी और एक रुपये का सिक्का डाला जाता है। तात्पर्य यह कि अग्निदेवता का पूजन करने के बाद ही पाकशाला में कार्य आरम्भ किया जाता है। धाम के अंत में इसमें पुनः एक रुपये का सिक्का डालकर इसे मिट्टी से भर दिया जाता है।

चरलई : (चं.) विवाह का एक कर्म। 'खिल्लां खलाणा' संस्कार के बाद वर का पिता छाज में पैसे रखता है, जो पुरोहित को दिए जाते हैं। कन्या की भाभी पत्थर की शिला पर हल्दी पीसकर उसे तीन बार वर तथा कन्या के पैरों पर फेंकती है, जिसके बदले में उसे कुछ पैसे दिए जाते हैं। इसके बाद वर अपना हाथ कन्या के कंधे पर रखता हुआ अग्नि के फेरे लेता है। फेरे

सात या चार भी हो सकते हैं। हर फेरे के बाद कन्या का पिता दोनों के पाँव पूजता है, परंतु अंतिम बार कन्या का भाई उनके पैर पूजता है। तत्पश्चात् वर तथा कन्या आमने-सामने बैठ जाते हैं। दुलहन के हाथ में एक दोने में पुष्प, अक्षत तथा अखरोट रखे जाते हैं और दूल्हा अपने हाथों से इस दोने को ढक देता है। पुरोहित वर की पगडी से 'मनिहार' खोल कर वर तथा कन्या के हाथों में बाँध देता है। इस सारी क्रिया को चरलई कहते हैं।

चलणैउणो : (कु.) दूल्हे को वस्त्र पहनाना। बारात में जाने के लिए दूल्हे को धोती, शेरवानी, तथा पांबड़ी पहनाई जाती है। यह एक प्रकार का पटका होता है, जिसे आगे से पीछे की ओर अंग्रेजी वर्ण यू के आकार में पहनाया जाता है। कंधे से कमर की ओर पटका बाँधा जाता है। कमर में गाची, जिसमें कटार फँसाई जाती है तथा हाथ में नारियल व दुशाला दिया जाता है। कलाई में सोने या चाँदी के कंगन, गले में सनकंठा और कान में कुंडल पहनाए जाते हैं। अंत में पगड़ी और सेहरा दूल्हे की बहन पहनाती है। सेहरा पहनाते समय गीत गाया जाता है–

प्रौउड़ी खौड़ी होए बैहनणी सौ मूंजो पीहणा लाए
पीहणा लाए मूंजो मनाए प्रौउड़ी खौड़ी होए बैहनणिए...

चाड़ : दे. चड़।

चिन्हणा : ऐसे रिश्तेदारों को चिह्नित करना, जिन्हें आयोजन में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण दिया जाना हो। इन्हें घर के सभी बड़े इकट्ठे बैठकर चीह्नते हैं। निकट सम्बंधियों की सूची प्राथमिकता के आधार पर बनाई जाती है। इसके बाद दोस्त-मित्रों को भी इस सूची में शामिल किया जाता है।

चीरी : (चं.) विवाह अवसर पर किया जानेवाला एक संस्कार। इसमें कन्या वर को मालती लता की लकड़ी के सात छोटे-छोटे टुकड़े देती है। वर इन टुकड़ों को पैर के नीचे बारी-बारी से दबा कर तोड़ता है।

चुंडा : सं. चूड़ा। विवाह में बनाई जानेवाली बालों की चोटी। शुभ मुहूर्त में कन्या के बाल संवारे जाते हैं। बालों की बारीक-बारीक वेणियाँ बना कर इन्हें लाल डोरी से इकट्ठा गूँथ कर ऊँचा जूड़ा बनाया जाता है। यही चुंडा कहलाता है।

चुटणा : सामाजिक व्यवहार का टूटना। विवाह आदि शुभ अवसरों के लिए निमंत्रण प्राप्त होने पर भी यदि कोई व्यक्ति उसमें सम्मिलित न हो या किसी सम्बंधी को निमंत्रण देना भूल जाएँ तो भविष्य के लिए आपसी व्यवहार टूट जाता है। इसी प्रकार मृत्यु के अवसर पर भी सामाजिक 'बरतण' न बरतने पर सम्बंधित दो परिवारों का आपसी सम्बंध टूट जाता है, जिसे फिर जोड़ने के लिए सामाजिक रूप से क्षमा याचना जैसे रस्मी उपाय भी हैं।

चुन्नी चढ़ाणा : दे. सगण डालना।

चुल्ह पूज ब्याह : (कु.) विवाह का एक प्रकार। यह विवाह का सबसे साधारण तरीका है। इसमें लड़का व लड़की तथा उनके माता-पिता दोनों की रज़ामंदी के बाद किसी मेले या उत्सव से लड़का अपने मित्रों की सहायता से लड़की को भगाकर अपने घर ले आता है। लड़की की सहेलियाँ भी लड़की के साथ आती हैं। तब लड़के के घर पहुँचकर आँगन में लड़के-लड़की को साथ खड़ा करके उनके सिर के ऊपर से एक भेड़ को दूसरी ओर फेंका जाता है और तत्काल उसे काट दिया जाता है। भेड़ की बलि के बाद वे दोनों घर के अंदर प्रवेश करते हैं और लड़की से सबसे पहले चूल्हे की पूजा करवाई जाती है। वह धूप-दीप से चूल्हे की पूजा करके उसे कुमकुम का तिलक लगाती है। वहाँ उपस्थित सभी लोग भी चूल्हे को तिलक लगाते हैं। उसके बाद काटी गई भेड़ को पका कर दावत की जाती है।

चुल्ह पूजणा : विवाह की एक रस्म। जब वधू प्रवेश होता है तो सर्वप्रथम उसे रसोईघर में ले जाकर चूल्हे की पूजा करवाई जाती है।

चुल्हा नेऊग : (सि.) दे. चुल्ही न्यूंदा।

चुल्ही न्यूंदा : भोज के लिए निमंत्रण का एक प्रकार। पुत्र जन्म, विवाह, बडे-बूढ़े की मृत्यु आदि पर भोज के लिए जो चुल्ही न्यूंदा दिया जाता है उसमें किसी परिवार के सारे सदस्यों को बुलाया जाता है अर्थात् उस दिन उस घर में चूल्हा नहीं जलता और पूरा परिवार निमंत्रणवाले घर में ही भोजन करता है। यदि उनमें से कोई भोजन करने न आ पाए तो उसका हिस्सा साथ में दे दिया जाता है पर घर के चूल्हे पर खाना नहीं पकता।

चूची प्याणा : एक वैवाहिक रस्म। यह रस्म घोड़ी चढ़ने के समय निभाई जाती है। वरयात्रा से पहले दूल्हा अपनी माँ के स्तनों को मुँह लगाता है। इसके बदले में वर का पिता उसकी माँ को 'नेग' देता है, परंतु यह प्रथा अब कम होती जा रही है। आजकल दूल्हे को कप-गिलास से गाय का दूध पिलाया जाता है। कन्या को भी विदाई के समय इसी प्रकार माँ दूध पिलाती है। इसके पीछे माँ के दूध की लाज की धारणा रहती है।

चोठ : दे. काठो भानणो।

चोली डोरी : (चं.) दे. झंझराड़ा।

चौक पाणा : पूजन में आटे आदि की रेखाओं से चौकोर मंडल बनाना। मांगलिक तथा आनुष्ठानिक कार्यों में भूमि के ऊपर चौका लगाकर उस पर आटे व रंगों से गोल या चौकोर मंडल बनाया जाता है। यह कार्य कभी नाईन करती है तो कभी घर की स्त्रियाँ ही कर लेती हैं। विशेष संस्कारों पर इसे पंडित स्वयं बनाता है। पहले भूमि को गोबर से लीपा जाता है और उस पर रेत से चौकोर आकृति बनाई जाती है। उसके ऊपर रोली, चावल, गुलाल, गेहूँ या जौ के आटे से मंडल तैयार किया जाता है।

चौका : मिट्‌टी या गोबर का लेप। विवाह का शुभारंभ चौका स्थापन से होता है। कमरे के फर्श पर कुछ चौकोर स्थान घेर कर उसे गाय के गोबर से लीपा-पोता जाता है। उस पर कुम्भ, नवग्रह, गणपति आदि की स्थापना की जाती है। पोहई द्वारा जब चौका डाला जाता है तो महिलाएँ गीत गाती हैं –

परोहते दित्या मूहरत तैं कुती लाई एडी बेर
चौका पांदिए पोहइए, तैं कुती लाई एडी बेर
गई थी पाणी ल्योणे मैं जमना कनारे
उत्थी लगी एडी बेर, सहियो उत्थी लगी एडी बेर
गई थी मैं कपला गऊआ रे गोहे नूँ
उत्थी लगी एडी बेर, सहियो उत्थी लगी एडी बेर...

चौका पाणा : भोजनालय में जब देवी-देवता के लिए भोग बनाया जाता है तो पहले गाय के गोबर से रसोई को लीपा जाता है, इसे चौका पाणा कहते हैं। जब किसी उत्सव के मौके पर धाम का आयोजन होता है उस

समय पंक्ति में बैठे लोगों को पत्तल इत्यादि देकर भोजन बनानेवाला रसोइया, जो ब्राह्मण होता है कार (रेखा) देता है और पुकारता है--पंडितो चौका! चौका लग जाने पर धाम स्थल में धोती पहने भोजन परोसनेवाले पंडितों के सिवाय कोई प्रवेश नहीं करता।

चौकी : चौकी। 1. गले में पहनने की चौकोर पटरी, इसे शुभ मुहूर्त में बनाकर मंत्रोच्चारण के साथ इसकी प्राण-प्रतिष्ठा करके दुलहन के गले में पहनाया जाता है। इसे डालने से टोने-टोटके का प्रभाव नहीं पड़ता। 2. लकड़ी का चारपायोंवाला चौकोर आसन। शुभ कार्यों में इसका बड़ा महत्त्व है। इसका प्रयोग प्रायः पूजा के समय किया जाता है। शादी के अवसर पर वर व कन्या को इस पर बिठा कर नहलाया जाता है। इस पर पुरोहित पूजन व अनुष्ठान सम्बंधी मंडल बनाता है।

छंग : (कि.,ला.) एक नशीला पेय। इसे शादी-विवाह, उत्सव और त्योहारों में प्रयोग किया जाता है। जौ से बनी छंग उत्तम मानी जाती है। इसके अतिरिक्त यह गेहूँ, चावल तथा भ्रेस से भी तैयार की जाती है। किन्नौर तथा लाहुल-स्पीति में यह घर पर ही बनाई जाती है। यह यहाँ के धार्मिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन का अभिन्न अंग है। इसे दवाई के रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। प्रसव के समय जब अधिक रक्तस्राव होने लगे तो जच्चा को छंग पिलाई जाती है, जिससे खून का बहना बंद हो जाता है।

छंड : बिखेरने का भाव लिये एक वैवाहिक कृत्य। बारात के घर से चलते समय दूल्हे का पिता उसकी पालकी के ऊपर से पैसे व मिठाई पीछे की ओर फेंकता है जिसे निम्न वर्गीय बच्चे व महिलाएँ उठाते हैं। कन्या पक्ष में जब विदाई के बाद लड़की डोली या गाड़ी में बैठ जाती है, तब उस के ऊपर से उसके माता-पिता द्वारा छंड दी जाती है। इसे ध्वनि भेद से **छांडा** भी कहा जाता है। विश्वास किया जाता है कि ऐसा करने से वर और वधू के दुष्ट ग्रहों की शांति होती है।

छंदा : (कु.) दे. निऊंदर।

छक : विवाह की एक रस्म। जिस लड़के का विवाह होता है उसका मामा अपने भानजे को पालकी में बैठाकर बाजे-गाजे के साथ अपने घर ले जाता

है। वहाँ उसे भोजन कराया जाता है और उसी सम्मान के साथ वापिस घर पहुँचाया जाता है। बहुत-सी महिलाएँ व पुरुष उसके साथ आते हैं। कुछ पकवान भी उसके घर पहुँचाए जाते हैं। 'सांद' के मौके पर मामा द्वारा जो धाम दी जाती है, उसे भी छक या **तेल की धाम** कहते हैं। लड़की का मामा भी इसी प्रकार लड़की के घर छक पहुँचाता है, परंतु उसे मामा के घर पालकी में ले जाने की प्रथा नहीं है। तेल की धाम उसी प्रकार मामा की ओर से दी जाती है।

छक्की : (चं.) 'मंगवाली' विवाह का तीसरा चरण। इसमें वर अपने घर से परम्परागत वेशभूषा में सज-धज कर बारात के साथ लड़की के घर प्रस्थान करता है। बारात में वर के साथ केवल तीन व्यक्ति जाते हैं–मामा, 'पटमहारा' और 'दीवान'। पटमहारा वर का सहायक होता है। इसे कई क्षेत्रों में **लटिंगर** भी कहा जाता है। इसे विवाह में कई कर्तव्य निभाने होते हैं। इसके हाथ में तलवार होती है, जो जादू-टोने से बचाती है। बारात में सबसे आगे दीवान, उसके पीछे वर तथा अन्य व्यक्ति चलते हैं। बारात के साथ सामान उठाने के लिए भारी (भार वाहक) होते हैं, जो सामान छोड़कर वापिस आ जाते हैं। लड़की के घर में बारात का यथासम्भव स्वागत होता है। वर और वधू को ग्राम-देवता की पूजा के लिए बैठाया जाता है। पूजा के बाद विवाह संस्कार सम्पन्न समझा जाता है।

दूसरे दिन प्रातः वधू को वर पक्ष की ओर से लाए वस्त्र और आभूषण पहनाये जाते हैं और लड़की को विदा किया जाता है। बारात वापसी में लड़की का भाई भी उसके साथ जाता है। लड़की का मामा बाद में जाता है। लड़की के ससुराल में उनका खूब स्वागत होता है। वर के घर भी वर-वधू से पूजन कराया जाता है। फिर दोनों को सत्तू में घी डाल कर खाने को दिया जाता है, जो पहले खा ले उसे विजयी समझा जाता है। अब उपस्थित लोगों को भोज दिया जाता है। तीसरे दिन पटमहारा और मामा सभी वापिस चले जाते हैं। उन्हें भेंट स्वरूप घी और सत्तू दिए जाते हैं। जब सभी मेहमान चले जाते हैं तो गाँव के देवता के लिए जातरा का आयोजन किया जाता है। इसमें गाँव के लोगों को आमंत्रित किया जाता है।

छटिया रा खेल : (कु., मं.) छड़ियों का खेल। एक वैवाहिक कृत्य। लग्न-

वेदी का काम समाप्त हो जाने के बाद वधू की बहनें व सहेलियाँ वर-वधू को करीब लाने के लिए और वर के भाई-बंधुओं के साथ अपना भी परिचय बढ़ाने के उद्देश्य से उन्हें छड़ियों का खेल खिलाती हैं। वधू के हाथ में किसी पेड़ की लचकदार छड़ियाँ दी जाती हैं। वर को वधू के आगे हाथ करने होते हैं। वह छड़ियों से उसके हाथों पर मारती है। तब वर छड़ियों को पकड़ कर छुड़ाने की कोशिश करता है। इस प्रकार दोनों में हार-जीत के लिए प्रतिस्पर्धा चलती है और दोनों पक्षों के लोग हँसी-मज़ाक के साथ इसमें पूरी तरह से भागीदार रहते हैं।

छड़ : यह बाँस की तीलियों से बनी खुले मुँह की टोकरी है, जिसका किनारा विभिन्न रंगों से रंगा होता है। विवाहादि अवसर पर इसमें वस्त्राभूषण और श्रृंगार की वस्तुएँ प्रदर्शनी के रूप में सजाई जाती हैं।

छड़छुट्टी : (कु.) वैधानिक रीति से विवाह-सम्बंध का विच्छेद। यदि पति-पत्नी में तलाक की नौबत आ जाए तो दोनों परिवारों के मुखिया और दोनों पक्ष के एक-दो सम्मानजनक व्यक्ति तथा इस शादी के मध्यस्थों के बीच आपसी बातचीत से लेन-देन तय करके तलाक का फैसला किया जाता है। लेकिन 'शटाम ब्याह' की स्थिति में यदि वर तलाक देना चाहता है तो शटाम में दी गई सारी सम्पत्ति वधू के लिए छोड़ी जाती है और वधू तलाक लेना चाहती है तो उसे सारी सम्पत्ति छोड़नी पड़ती है।

छड़याह : (कु.) धाम से अगला दिन। इस दिन धाम के भांडे-बर्तन साफ किये जाते हैं और कारिंदों को भोज दिया जाता है। कुल देवता के नाम से बकरा या मेढ़ा काटा जाता है अथवा बाज़ार से मांस मंगवा कर पकाया जाता है। यह विवाह में काम करनेवालों की विशेष सेवा मानी जाती है। इसे **नछड़याह** भी कहते हैं।

छड़ियर : (कु.) वैवाहिक कृत्य। वेदी में किए जानेवाले कन्यादान, गोत्राचार और अग्नि के चारों ओर फेरे लगाने की रस्में।

छदैरू : (कु.) दे. छोंदू।

छपकभाटी : (मं.) एक विशेष प्रकार का तिलक जो विवाह के अवसर पर औरतों को लगाया जाता है।

छप्पर कट : पालकी के ऊपरी भाग में लगी लोहे या लकड़ी की जाली जिस पर 'झागण' लगाया जाता है।

छप्पर ब्याह : (कु.) पुराने समय में जिस दम्पती के बीस बच्चे हो जाते थे और यदि वे सभी जीवित रहते तो पति-पत्नी मकान के छप्पर पर बैठकर दोबारा विवाह रचाते थे। इस रस्म से स्पष्ट होता है कि उस ज़माने में इतनी संख्या में भी संतानें होती थीं। अब परिवार नियोजन के ज़माने में यह रिवाज़ भी समाप्त हो गया है।

छांइंजोल़ : (सि.,सो.) एक वैवाहिक प्रक्रिया। वधू के वर गृह में चले जाने के बाद दूसरे दिन लगभग मध्याह्न में वधू को वर तथा देवर के साथ एक विशेष विधान से ग्रामीण महिलाएँ पानी की बावड़ी तक ले जाती हैं। इसे **जलजात्रा** भी कहा जाता है। इस यात्रा के दौरान वर-वधू के सिर पर महिलाएँ पीला वस्त्र पकड़े चलती हैं। उसकी छाया में पंडित के साथ महिलाओं का काफिला गीत-संगीत के साथ बावड़ी की तरफ बढ़ता है। इस अवसर पर गाया जाने वाला गीत है –

राम रो सीया पाणी के चाली
बावड़ी देखण आई रे हीरा मुनिलाल
पाणी भरण आई रे...

बावड़ी पर पहुँच जाने के बाद पुरोहित वहाँ विशेष पूजन करवाता है। तत्पश्चात् बावड़ी के पास महिला नृत्य 'पढ़ूआ' काफी देर तक चलता है। इसके बाद पानी का लोटा भर कर वधू सिर पर उठाती है और वह काफिला उसी आमोद-प्रमोद के वातावरण में वापिस घर लौटता है। घर आकर वधू डाफी (छोटी खिड़की) से अपनी सास को लोटा अंदर पकड़ाती है। पानी के पास जाने की यही प्रक्रिया छांइंजोल़ कहलाती है। यह वधू को ससुराल से परिचित कराने के साथ वरुण पूजा का रूप भी है।

छांडा : दे. छंड।

छांदा : दे. निऊंदर।

छान : दे. टट्ठा।

छायादान : एक कृत्य। इसके अंतर्गत किसी लौह-पात्र में सरसों का तेल और कुछ पैसे डाले जाते हैं फिर उस तेल में मुँह देखा जाता है। ऐसा करने

से क्रूर ग्रह के दुष्प्रभाव नष्ट होते हैं, अतः यह कृत्य दुष्ट ग्रहों की शांति हेतु शुभावसरों यथा जन्मदिवस और विवाहादि के समय किया जाता है। तेल में मुँह देखने के बाद पात्र सहित वह तेल उस पांडे को दिया जाता है, जो शनि का दान लेता है।

छिटणी : (शि.) दे. सिठणी।

छुदि्द : (कु.) दहेज। निम्न वर्गीय लोगों में विवाह के अवसर पर माता-पिता द्वारा दिए जानेवाले दहेज को छुदि्द कहा जाता है। इसमें कन्या को कृषि औज़ार–दाच, दाची, किलण, कुदाल और वस्त्रों में–पट्टू, थिप्पू, गाची तथा बर्तनों में–थाली, गिलास और लोटा आदि दिये जाते हैं।

छेई : (शि.,सो.) समिधा। शुभ कार्य में भोज तैयार करने के लिए काटी गई समिधा का व्यवस्थित ढेर। कारज की तिथि निश्चित होने पर शुभ मुहूर्त निकाल कर गाँव के लोगों को बुला कर लकड़ियाँ काटी जाती हैं और उन्हें व्यवस्थित रूप में सजाया जाता है। लोक विश्वास के अनुसार इस प्रकार लगाई गई लकड़ियाँ यदि गिर जाएँ तो अपशकुन माना जाता है। इस अवसर पर गाए जानेवाले गीतों को छेई गीत कहते हैं –

मंगला खतरीयो लेइये छेइयो
कुणी सकसै पाइयो
मंगला खतरीयो लेइये छेइयो
लाड़े रै दादुए सकसै पाइयो
मंगला खतरीयो लेइये छेइयो
लाड़ै रै ताऊए सकसै पाइयो
मंगला खतरीयो...

चम्बा में इसे **छोई** कहा जाता है। छोई के लिए एक शाखा फलदार वृक्ष की भी काटी जाती है जो **तीण** में सर्वप्रथम जलाई जाती है। इसके बाद अन्य लकड़ियाँ जलाई जाती हैं।

छेचार : (मं.) षट् उपचार। एक धार्मिक रीति के अनुसार विवाह के समय जब वर बारात सहित कन्या के घर पहुँचता है तो द्वार पर दुलहन का पिता उसे पैर धोने के लिए पानी देता है। चंदन का तिलक लगाता है। हार पहनाता है। वस्त्र, सुपारी तथा सोने की अँगूठी देता है। इसे छेचार कहा जाता है।

छेती : (कु., शि.) निजी सम्पत्ति। हिमाचल के भीतरी पहाड़ी क्षेत्रों में लड़की को अत्यंत सम्मान दिया जाता है। रिश्ते की बात लड़की के माता-पिता की ओर से करना अच्छा नहीं माना जाता। अतः लड़के की ओर से ही लड़की माँगी जाती है। यहाँ परम्परा से दहेज प्रथा का प्रचलन नाममात्र भी नहीं रहा, बल्कि लड़की के भविष्य की सुरक्षा के लिए उसके पिता द्वारा माँगा गया धन लड़केवालों को चुकाना पड़ता है, जिसे छेती कहते हैं। यह लड़की की निजी सम्पत्ति होती है।

छ़ोंदा : (कु.)दे. निऊंदर।

छ़ोंदू : शादी-विवाह जैसे मांगलिक कार्य में सम्मिलित होने के लिए रिश्तेदारों तथा सगे-सम्बंधियों को निमंत्रण देने के लिए नियुक्त व्यक्ति। छोंदू एक या तीन की विषम संख्या में होते हैं, जिन्हें अलग-अलग क्षेत्र में भेजा जाता है। निमंत्रण के लिए शुभ दिन देखकर इन्हें घर बुलाया जाता है और भोजनादि करवा कर इनके सिर पर टोपियाँ पहनाई जाती हैं, जिनमें कान की ओर गेंदे के हार लटके होते हैं। ऐसी टोपीवाले को देखते ही लोगों को पता चल जाता है कि किसी का छ़ोंदू आया है। निर्मंड क्षेत्र में इसे **छदैरू** कहते हैं।

छोई : (चं.) विवाह की धाम के लिए काटी जानेवाली लकड़ी। दे. छेई।

जंज : दे. जणेत।

जजमान : यजमान यानी अनुष्ठान करवानेवाला। वह दान-दक्षिणा देकर अपने पुरोहित से संस्कार कर्म करवाता है। बिना पुरोहित के जजमान के यहाँ कोई भी कार्य, जैसे– विवाह, पुत्रजन्म तथा अन्य मांगलिक व आनुष्ठानिक कार्य सम्पन्न नहीं होते। जजमान द्वारा पुरोहित का उचित आदर-सम्मान किया जाता है। वह अपने पुरोहित के घर खाना-पीना पाप समझता है। यदि उसे किसी कारणवश पुरोहित के घर भोजन करना ही पड़े तो वह उसके बदले दोगुने पैसे पुरोहित को देता है।

जड़ावा : विशिष्ट निमंत्रण। विवाह के अवसर पर कन्या पक्ष की ओर से वर पक्षवालों को जो विधिवत् निमंत्रण दिया जाता है उसे जड़ावा कहते हैं। यह निमंत्रण कन्या पक्ष की ओर से दी जानेवाली भव्य धाम के लिए दिया जाता है। जड़ावा में बड़े, बुजुर्ग तथा सम्भ्रांत लोग शामिल होते हैं। पहले

पुरुषों और स्त्रियों को अलग-अलग बुलाया जाता था, परंतु अब एक साथ भी बुलाया जाता है।

जणेत : बारात। बारात विवाह का प्रमुख अंग है। यह वर पक्ष की ओर से कन्या पक्ष के यहाँ जाती है। बारात में केवल निकट सम्बंधी और खास मित्र ही शामिल किए जाते हैं। जितने व्यक्तियों की बारात कन्या के घर जानी निश्चित होती है, उसकी सूचना पहले ही कन्या पक्षवालों को दे दी जाती है, ताकि वे स्वागत, ठहरने, खाने आदि का प्रबंध ठीक से कर पायें। बारात जब कन्या के गाँव में पहुँचती है तो लग्न से पहले इसे पड़ोस के किसी अन्य घर में ठहराया जाता है, जहाँ से लग्न के समय कन्या के खास रिश्तेदार बारात को सम्मान के साथ लाते हैं। कन्या पक्ष के घर बारात का जितना स्वागत होता है उसे उतना ही समृद्ध माना जाता है। जणेत को कुछ क्षेत्रों में **बुज्वातरा** या **जानी** भी कहते हैं।

सिरमौर में जब वरयात्रा घर से चलती है तो कुछ दूरी तक पालकी में पहले पंडित बैठता है। वहाँ तक दूल्हे को मामा उठाकर ले जाता है। उसके बाद उसे पालकी में बिठाया जाता है। बारात में चलने का क्रम कुछ ऐसा रहता है–सबसे पहले ग्राम-देवता या कुल देवता के निशान या झंडे वाले, उसके पीछे धौंसा या नगाड़ेवाले, फिर अन्य बजंत्री, वर की पालकी, मामा की पालकी और इसके बाद बाराती और सबसे पीछे सामान उठानेवाले। राह में जिन-जिन गाँवों से बारात गुज़रती है, वहाँ स्त्रियाँ एकत्र होकर बारात के स्वागत के गीत गाती हैं, जिसके बदले में उन्हें गुड़ की भेली तथा पीने के लिए तंबाकू दिया जाता है। दूसरे दिन बारात की वापसी पर भी ये स्त्रियाँ इसी प्रकार गीत गाती हैं और वधू को अपनी ओर से शगुन देती हैं।

जणेती : बाराती। वर पक्ष की ओर से कन्या पक्ष के यहाँ जो रिश्ते-नाते तथा गाँव के लोग बारात में जाते हैं उन्हें जणेती कहा जाता है। कन्या पक्ष में जणेतियों का विशेष सत्कार होता है।

जनिआच : (कि.) बड़ा विवाह। जनिआच विवाह में वर पक्ष के लोग मामा और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों को मंगनी के लिए कन्या के घर भेजते हैं। यदि मंगनी हो जाए तो विवाह की तिथि निश्चित की जाती है। विवाह के

दिन दूल्हा बारात लेकर दुलहन के घर जाता है। बारात के स्वागत के बाद वह चाँदी का एक रुपया या अपनी हैसियत के अनुसार पैसे रखकर सास को ढाल (मत्था टेककर प्रणाम) या 'ढलाकरा' करता है। कन्या की चाची, ताई और बुआ को भी ढलाकरा करना पड़ता है। भोजन के बाद सब नाटी नाचते हैं, जिसमें दूल्हा और दुलहन को अनिवार्य रूप से नाचना पड़ता है। यदि बारात दूर से आई हो तो रात को वहीं ठहराव होता है। अन्यथा सायंकाल दुलहन को लेकर वे वापिस चले जाते हैं। दुलहन के साथ उसके निकट सम्बंधी तथा गाँव के लोग भी जाते हैं। धनाढ्य लोग दूल्हा-दुलहन को घोड़े पर ले जाते हैं अन्यथा पैदल चलने का रिवाज़ है।

विदाई के समय कन्या की सहेलियाँ काफी दूर तक उसे छोड़ने जाती हैं। उसके आगे दुलहन को तभी जाने दिया जाता है, जब वर पक्षवाले उन्हें मुँहमाँगी राशि दे देते हैं। यहाँ दहेज प्रथा की बाध्यता नहीं है। माता-पिता केवल एक बिस्तर, संदूक तथा बर्तन आदि के अतिरिक्त और कुछ नहीं देते हैं। विवाह में पुरोहित या ब्राह्मण का कोई स्थान नहीं होता और न ही मंत्र और फेरे लगते हैं। विवाह के सम्बंध में सब कुछ देवता निश्चित करता है और पुरोहित का काम भी वही करता है। दुलहन के गृह-प्रवेश के समय केवल उस घर की किसी कन्या द्वारा दुलहन के पैर छूने के बाद घर के अंदर प्रवेश करवाया जाता है। ससुराल पहुँच कर दुलहन तब तक कुछ ग्रहण नहीं करती जब तक उसे माँगा गया आभूषण नहीं दिया जाता। दुलहन के साथ आए सम्बंधियों का मांस-मदिरा से सत्कार किया जाता है। इस उपलक्ष्य में कई बकरे काटे जाते हैं।

जनीतरु : (मं.) सं. जनः। जन का अर्थ मनुष्य है। क्योंकि बारात में जनसमूह शामिल होता है, अतः भावसाहचर्य से पहाड़ी में बारातियों के लिए जनीतरु शब्द प्रचलन में है। दे. जणेती।

जनेकङ् : (कि.) विवाह का एक प्रकार। इस शब्द का सम्बंध जान्या (बारात) से है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसका विकास संस्कृत के जन्या शब्द से माना जा सकता है जिसका अर्थ होता है दुलहन या दुलहन की सखी। क्योंकि इस विवाह में बारात ही एक ऐसा तत्त्व है जो इसे अन्य प्रकार के विवाहों से पृथक् करता है, अतः इसे बाराती विवाह कहना सर्वथा संगत है। किन्नौरी समाज में बारात का आयोजन वर तथा वधू दोनों की ओर से किया

जाता है। इसमें वधू पक्ष से आनेवाली बारात वर पक्ष की ओर से आनेवाली बारात से तीन गुना अधिक होती है।

जनेतड़ : बारात के लिए आमंत्रित व्यक्ति। ये सगोत्री और मामा पक्ष के लोग होते हैं, जो 'सांद', बारात और धाम में शामिल होते हैं। इनके अतिरिक्त निकट सम्बंधी और मित्र भी जनेतड़ होते हैं।

जबरी : (चं.) दे. बराड़ फुक।

ज़माणी : (कु.) कहार। एक हिन्दू जाति के लोग जो विवाह में परम्परा से डोली उठाते रहे हैं। इन्हें इसके बदले में पैसे दिए जाते हैं। धाम का हिस्सा इनके घर भी भेजा जाता है। सं. जवनः का अर्थ द्रुतगामी घोड़ा है, जो सवारी ढोता है। सम्भवतः अर्थ साम्यता के कारण डोली ढोनेवाले के लिए ज़माणी शब्द निष्पन्न हुआ है। इन्हें शिमला में **फलगैरे** कहते हैं।

जलजात्रा : दे. छांइंजोल़।

जल पूजा : दे. पाणी निउंदरना।

जाई : जब कन्या ब्याह कर अपने ससुराल चली जाती है तो मायकेवालों के लिए वह जाई यानी जन्मी कहलाती है। कुछ क्षेत्रों में इसे 'धी-धियाइण' भी कहते हैं।

ज़ागरा : दे. मायने।

जागा बैड़ : (कु.) वरयात्रा से एक दिन पूर्व दूल्हे के घर में किया जानेवाला नाच-गाना।

जाजड़ा : (सि.) दे. झंझराड़ा।

जाजड़ू : (सि.) जाजड़ा विवाह में वधू के साथ उसके मायके से आनेवाले लोग जाजड़ू कहलाते हैं। उनका आदर-सत्कार किया जाता है। मांसाहारी जाजड़ुओं के लिए प्रायः बकरा काटा जाता है।

जानी : (चं.) दे. जणेत।

जानी चढ़ना : (चं.) जब दूल्हा घोड़ी पर सवार हो कर अपने रिश्तेदारों के साथ लड़की के घर रवाना होने के लिए तैयार होता है, उसे जानी चढ़ना कहते हैं।

जान्या : बारात। दे. जनेकड़्।

जामा : दूल्हे को पहनाया जानेवाला अंगरखा, जिसका नीचे का घेर पेशवाज जैसा होता है।

जूठ पाणा : (चं.) विवाह से सम्बंधित एक रस्म। इसमें विवाह से पहले वर पक्षवाले कन्या को कोई आभूषण देने जाते हैं। कन्या पक्ष के यहाँ उन्हें भोजन कराया जाता है। भोजन करने के बाद वे जूठी पत्तल में कुछ पैसे डालते हैं, जिसे जूठ पाणा कहा जाता है। ये पैसे भोजन बनानेवाले को दिए जाते हैं।

जूते चुराणा : एक वैवाहिक रस्म। इस रस्म में वर जब वेदी में बैठता है तो सालियाँ उसके जूते चुरा लेती हैं और तब तक वापिस नहीं लौटातीं जब तक उन्हें मुँहमाँगा 'नेग' नहीं मिल जाता।

जेठा बगा : सास के लिए सूट। दुलहन जब ससुराल के लिए विदा होती है तो मायके से उसके साथ सास के लिए सूट भेजा जाता है, जिसे वह अपने साथ पालकी में रखती है और ससुराल पहुँचने पर पालकी से उतरते ही सास को भेंट करती है।

जेब जाचणी : (मं.) एक वैवाहिक कृत्य। इसमें वर के घर में वधू 'दुद्धाभत्ती' के बाद वर की जेब में छुहारे या किसी अन्य फल के अंदर छुपाए रुपए ढूँढती है।

जैमाला : वह माला जिसे वर और कन्या एक-दूसरे को पहनाते हैं। 'द्वादश लगन' के बाद वर-कन्या को वेदी में ले जाया जाता है। वहाँ पहले कन्या वर को और फिर वर कन्या को जयमाला पहनाता है। उस समय दोनों पक्षों में हँसी-मज़ाक चलता है। वर कन्या के सामने सिर झुका कर जयमाला नहीं डलवाता। मान्यता है कि ऐसा करने पर उसका पत्नी पर रोब नहीं चलता।

जोगटू : वर पक्ष की ओर का एक विशिष्ट संस्कार। इसमें वर और उसके छोटे भाइयों को साधुओं का वेश बनाकर भिक्षा माँगनी होती है। वे एक हाथ में दंड और दूसरे में भिक्षा की झोली थामते हैं। महिलाएँ आँगन में दायरे में खड़ी होकर उनकी झोली में भिक्षा डालती जाती हैं। इस अवसर

पर महिलाएँ गीत गाती हैं–

उड़ेया सुहागणी पालुआ लाड़ा चौल़ मंग्गे
दिंदियाँ सात सुहागणी, लाड़े जो दिंदियाँ सीसाँ
जुगजुग जिआँ लाड़ेया, भरियाँ लख भरेसाँ
थोड़ियाँ भरेसाँ भरियाँ,भरियाँ लखाँ करोड़ाँ...

आशीर्वाद का यह रूप जोगटू न केवल मनोरंजन का माध्यम है, परंतु इससे यह भी व्यक्त किया जाता है कि व्यक्ति जो कमाता है उसे मिल-बाँटकर खाना चाहिए।

जोगी बरागी : विवाह सम्बंधी एक कृत्य। 'सांद' के बाद दूल्हे को जोगी बनाया जाता है। वह उपस्थित सभी लोगों से भिक्षा ले कर अपने गुरु को देता है। दे. जोगटू।

जौल़ : (चं.) दे. लिंजड़ी।

झंझराड़ा : विवाह का एक प्रकार जो हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्र में प्रचलित है। ऐसे विवाह को **चोल़ी डोरी** या **गुढणी** भी कहा जाता है। इसमें पति की मृत्यु के पश्चात् विधवा स्त्री अपने मृतक पति के भाई से विवाह कर लेती है या किसी भी पर-पुरुष से विवाह सम्बंध बना सकती है। इस विवाह में वर और वधू को दीपक और कुम्भ के सम्मुख बिठा दिया जाता है। दीपक और कुम्भ का पूजन कर वर लाल डोरी स्त्री के सिर पर रख देता है। इसे **डोरी पाणा** कहते हैं। अन्य स्त्रियाँ ब्याही जानेवाली स्त्री के बाल इसी डोरी से संवारती हुई विवाह सम्बंधी गीत गाती हैं। दूल्हा दुलहन को नथ पहनने के लिए देता है। ये सभी कार्य समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सामने किये जाते हैं। इसका शर्तनामा तैयार करके गण्य-मान्य व्यक्तियों के हस्ताक्षर करवाए जाते हैं और अब पंचायत के रजिस्टर में भी विवाह दर्ज करवाया जाता है। फिर सगे-सम्बंधियों को भोज दिया जाता है। ऐसा विवाह तलाक के बाद भी किया जाता है।

झाझड़ा : (चं.) दे. झंझराड़ा।

झामण : पालकी के ऊपर का गोटे-किनारी से जड़ा कपड़ा। यह लाल कपड़े का सिला हुआ झालरदार पर्दा होता है। इसके दोनों ओर सफेद कपड़ा काट कर बनाए गए हाथ के चिह्न सिल कर लगाए जाते हैं। यह

पाणिग्रहण का प्रतीक माना जाता है। इसी प्रकार मलमल का गोटे-किनारी युक्त एक अन्य वस्त्र जो प्रायः गुलाबी रंग का होता है, वह भी झामण कहलाता है। यह लगभग दो-सवा दो मीटर लम्बा और एक मीटर चौड़ा होता है। इसे विवाह सम्बंधी विभिन्न रस्मों को निभाते हुए वर-वधू के ऊपर फैलाकर पकड़ा जाता है। वर व कन्या की माँ द्वारा भी विवाह सम्बंधी कई कार्य इसके नीचे ही निभाए जाते हैं।

झिड़ फुक्क : (चं.) दे. बराड़ फुक।

झीर : सं. धीवर। एक जाति विशेष। ये लोग विवाह अवसर पर पानी भरने तथा डोली उठाने का काम परम्परा से करते रहे हैं। इसके अतिरिक्त ये लोगों की अन्य कार्यों में भी सहायता करते हैं। इसके बदले में इन्हें 'नेग' मिलता है।

झुँड उठाई : (ऊ.,ह.)विवाह की एक रस्म। जब वधू ससुराल पहुँचती है तो कई दिनों तक घूँघट डाले रहती है। ससुर यदि अपनी बहू से घूँघट न निकलवाना चाहे तो वह अपने हाथ से उसे उठा देता है और बहू को कोई आभूषण और पैसे देता है जिसे झुँड उठाई कहा जाता है।

टट्ठा : (सि.) अस्थाई निवास, डेरा। वह स्थान जहाँ बारात को ठहराया जाता है। नाई दो लोटों में जल भरकर बारात के आगे-आगे टट्ठे तक चलता है। अंदर प्रवेश करने से पहले बाराती उन जल पूरित कलशों में कुछ पैसे डालते हैं और कन्या-पक्ष की स्त्रियाँ मंगल गीत गाती हैं। टट्ठे में बारातियों के सोने-बैठने तथा स्नानादि के लिए जल की व्यवस्था होती है। कुछ स्थानों पर इस अस्थायी आवास व्यवस्था को **छान** भी कहते हैं।

टिक्का : टीका। यह आचार 'ठाका' के बाद होता है। इसके लिए लड़की की ओर से कुल पुरोहित द्वारा शुभ दिन निकाला जाता है। इस तिथि की सूचना लड़के के घरवालों को भी दी जाती है। निर्धारित दिन को लड़की की ओर से कुल पुरोहित और लड़की के कुछ रिश्तेदार लड़के के घर जाते हैं। वे अपने साथ एक टोकरी में धोती, कुर्ता, पगड़ी, जनेऊ, सोने की अँगूठी, कुमकुम तथा गरी का गोला ले जाते हैं। यह टोकरी गाँव के नाई द्वारा या उसकी अनुपस्थिति में गाँव के किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उठाई जाती है। कभी-कभी ये सभी बाजे-गाजे के साथ जाते हैं। लड़के के घर

पहुँच कर वे सामान की टोकरी लड़के को सौंप देते हैं। लड़का लड़की के पिता की ओर से आए कपड़े पहन कर पूजा में बैठता है। पंडित गणेश पूजा करने के बाद मंत्रोच्चारण करता हुआ लड़के के माथे पर तिलक लगाता है। सभी उपस्थित मेहमान लड़के को बधाई देते हैं और उसके माँ-बाप मिठाई बाँट कर उन्हें जलपान आदि करवाते हैं। औरतें मंगल गीत गाती हैं। लड़की की तरफ से गए लोग उसी दिन या अगले दिन वापिस आते हैं।

टिक्का टेरा : (मं.) एक वैवाहिक कृत्य। बारात के कन्या-पक्ष के यहाँ पहुँचने पर कन्या पक्ष की ओर का पंडित, नाई व लड़की का भाई कुछ सामग्री लेकर डेरे में जाते हैं। वर को पंडित के सामने बैठाया जाता है और कन्या का भाई पंडित के मंत्रोच्चारण के साथ वर को टीका करता है और खुद लाई गई सामग्री उसे सौंप देता है। इसमें वर के लिए वस्त्र, मिठाई, नारियल, बादाम और कुछ पैसे आदि होते हैं।

टिपड़ा मलाणा : दे. कुंडली मिलान।

टिफतौड़ : (सि.) बाल विवाह में कन्या को उठाकर उसके ससुराल पहुँचाने वाला व्यक्ति। इसके बदले में उसे पारिश्रमिक दिया जाता है। यह व्यक्ति परम्परा से दलित वर्ग का होता है।

टीहण : दे. चर।

टुकड़ा खाणा : दे. कौली खाणा।

टैहलू : विशेष उत्सवों पर काम करनेवाले। शादी-विवाह आदि अवसरों पर गाँव के जिन व्यक्तियों को रसोई से सम्बंधित या अन्य कार्य सौंपा जाता है, उन्हें टैहलू कहते हैं। ये अपने कार्य को ईमानदारी और निःस्वार्थ भाव से गाँव की सहकारिता के तहत करते हैं, इसके बदले में इन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाता।

टोपी लाणा : (चं.) पांगी में प्रचलित विवाह का एक प्रकार। यह विधवा विवाह है। जब कोई औरत छोटी उमर में विधवा हो जाए तो वह अपने ज्येष्ठ या देवर के साथ विवाह कर सकती है। इसे टोपी लाणा कहा जाता है। वह अन्य व्यक्ति से भी शादी करने के लिए स्वतंत्र होती है, लेकिन इस दशा में इसे टोपी लाणा नहीं कहते हैं।

टोलुआ : (सि., शि.) दे. टैहलू।

ठाका : एक वैवाहिक कृत्य। ठाका होने का अर्थ रोकना या ठहराना है अर्थात् विवाह-सम्बंध निर्धारित कर लड़के और लड़की को अन्यत्र विवाह से रोकना। शास्त्रों में इस अनुष्ठान को वाग्दान कहा गया है। यह रस्म अपने सामर्थ्य के अनुसार एक रुपया दे कर भी होती है और अनेक स्थानों पर लड़की का पिता लड़के को सिंदूर, नारियल, कुछ वस्त्र, चाँदी की कटोरी, फल, मिठाई और कुछ नकद राशि भी भेजता है। लड़के के घर में नव-ग्रह पूजा होती है और पास-पड़ोस की स्त्रियाँ मंगल गीत गाती हैं। इसी दिन विवाह के लिए तिथि भी प्रायः निर्धारित होती है। ठाका के पश्चात् विवाह किसी भी स्थिति में छुड़ाया नहीं जा सकता। वर को रोकने के पश्चात् कन्या के माता-पिता वर के घर का पानी भी नहीं पीते। इस रस्म को कहीं-कहीं **रोका** भी कहा जाता है।

डाहोड : (मं.) विवाहित बेटियों को गर्मी और सर्दी में मायके से नियमित रूप से मिलनेवाले वस्त्र।

डिंगचड़ाई : दे. काठो भानणो।

डुन्ना : पत्तों का बना हुआ कटोरे की शक्ल का पात्र। यह मांगलिक अवसरों पर पूजन सामग्री रखने तथा सामूहिक भोज में कटोरी के स्थान पर प्रयोग में लाया जाता है।

डेरा : दे. टट्ठा।

डोरी : मौली। एक विशेष सूत्र जो पूजा व कर्मकांड का अभिन्न अंग है। किसी भी देवकार्य तथा अन्य संस्कार आदि में इसकी आवश्यकता रहती है। बाजू में रक्षा सूत्र का बाँधना किसी धार्मिक अनुष्ठान या संस्कार में सम्मिलित होने का द्योतक है। विवाह के समय शुभ मुहूर्त में कच्चे सूत के धागे की डोरियाँ टेरी जाती हैं, फिर उन्हें लाल रंग में रंगकर धूप में सुखाया जाता है। देव पूजन, कुलजा-पूजन, कुलजा को निमंत्रण देने के समय सर्वप्रथम डोरी ही रखी जाती है। लोक वाद्य बजाने से पूर्व वादक के आगे डोरी रखकर उनका स्वागत किया जाता है। विवाह आदि संस्कारों में रसोइया जब भोजन पकाना आरम्भ करता है तब उसे डोरी के साथ कुछ मीठा रखकर भेंट किया जाता है। कन्यादान भी डोरी बाँध कर ही होता

है। विवाह में कन्या को दिये जानेवाले सारे सामान में डोरी बाँधी जाती है। वस्तुतः डोरी ही रक्षा एवं संकल्प का प्रतीक है। डोरी बंधन को मंगल सूचक और विघ्ननाशक माना गया है। तोरण पर भी डोरी बाँधी जाती है। विवाह के समय सौभाग्यवती स्त्रियों के बाजू में डोरी का कँगन बाँधा जाता है। जब तक डोरी को छुड़ाया नहीं जाता, तब तक एक मर्यादित समय का संकेत होता है।

डोरी पाणा : दे. झंझराड़ा।

डोलङ् चिम : (कि.) नमस्कार करना। यह विवाह से सम्बद्ध एक लोकाचार है। इसका पूरा रूप है *युमेद् डोलङ् चिम* अर्थात् सास को नमस्कार करना। इसके अनुसार जब लड़का विवाह के पश्चात् प्रथम बार ससुराल जाता है तो वहाँ सर्वप्रथम उसे प्रणामपूर्वक सास के चरणों में कुछ अर्पित करना होता है, उसके बाद ही वह उससे कुशल क्षेम पूछती है।

डोल़ा : पालकी। स्त्रियों की एक सवारी जिसे कहार ढोते हैं। यह सन की रस्सियों से बुनी आसनवाली चौकी होती है, जो गोटेदार तथा झालरयुक्त लाल रेशमी वस्त्र से ढकी होती है। नव वधू को इसमें बिठा कर ससुराल ले जाया जाता है। पुराने समय में बड़े घर की बहुएँ और रानियाँ इसमें यात्रा करती थीं। इसे उठाने के लिए इसके दायें-बायें दो बाँस या किसी अन्य लकड़ी के डंडे बंधे होते हैं। इन डंडों को दो और मोटे डंडों से सीधा जकड़ा जाता है। दुलहन के डोल़े में चारों ओर चाँदी के छोटे कलश और सबसे ऊपर बड़ा कलश लगा होता है। जो चाँदी के कलश लगाने में असमर्थ हों वे उसके स्थान पर वर्क चढ़े गरी-गोले लगाते हैं। माता-पिता डोल़ा कन्या के साथ ही दे देते हैं। विवाह के समय डोल़े या सुखपाल को उठाते हुए यदि उसकी अर्गलाएँ टूट जाएँ तो उसे अपशकुन समझा जाता है और इसके निवारण के लिए पालकी पर पेठे की बलि दी जाती है।

डोल़ा ठपणा : (कां., ह.) डोले को निर्धारित सीमा तक ले जाकर नीचे रखना। कन्या के विदा होने के अवसर पर उसे मामा द्वारा डोली में बिठाया जाता है और उसके भाई, मामा आदि कुछ दूरी तक डोली को अपने आप उठा कर ले जाते हैं, फिर निश्चित सीमा पर डोली को नीचे रख कर वे सभी कन्या को विदाई स्वरूप कुछ पैसे देते हैं। इसके बाद डोली को कहार उठाते हैं।

ढलाकरा : (शि.) एक वैवाहिक कृत्य। इसका सम्बध पहाड़ी में मत्था टेकने के लिए प्रयुक्त शब्द ढाल से है। **दुणोज़** में जब दूल्हा-दुलहन मायके आते हैं तो दूल्हा वहाँ तब तक भोजन ग्रहण नहीं कर सकता जब तक वह चुल्ह-पूजन और अपने सास-ससुर तथा रिश्ते में बड़ों को ढाल (मत्था टेकना) नहीं करता और सामर्थ्यानुसार उन्हें पैसे नहीं देता। ढाल के इन पैसों को ढलाकरा कहते हैं। मत्था टेकते समय उसके द्वारा रखे गए रुपयों को गिनकर सभी लोग उसे दोगुना करके लौटाते हैं। दुलहन से भी ससुराल में यह रस्म करवाई जाती है। लेकिन वह केवल सास-ससुर को ही ढलाकरा देती है अन्य को नहीं।

ढुआल : (चं.) विवाह का एक प्रकार। किसी की स्त्री को बहला-फुसला कर भगा ले जाना या अपहरण करना। यह एक प्रकार की रज़ामंदी ही होती है, परंतु दूसरे की ब्याहता होने के कारण इसकी योजना गोपनीय रखी जाती है। यदि स्त्री के पति को स्त्री के छुपाने का स्थान मालूम हो जाए तो इसमें विघ्न पड़ सकता है। वह पुलिस को साथ लेकर पहुँच सकता है। अतः ढुआलकरु जोड़ा दूर ऐसा स्थान खोज कर ही पग उठाता है जहाँ किसी को उनकी टोह न लगे, फिर दोनों के अभिभावक सौदेबाज़ी करके **हरजा, रौंध** या 'रीत' की राशि तय करके उसके पूर्व पति को रुपए देकर पक्के कागज़ पर तलाकनामा लिखा लेते हैं। तब स्त्री-पुरुष परस्पर करारनामा लिखकर वैध सम्बंध स्थापित करते हैं। कई बार सारी कार्यवाही पूरी होने तक बच्चे भी हो जाते हैं। सिरमौर और शिमला के कई क्षेत्रों में इसे 'हार' में ले जाना भी कहते हैं।

ढेरी : (शि.) विवाह का एक रूप। इसमें वर पक्षवाले कन्यापक्ष को एक निश्चित राशि देते हैं। इस राशि को ढेरी कहते हैं। यदि लड़की कभी सम्बंध-विच्छेद चाहे तो यह ढेरी लड़केवालों को लौटाई जाती है। यदि वह दूसरे पुरुष के साथ भाग जाए तो यह राशि उसके दूसरे पति को चुकानी पड़ती है।

तमूल़ : दे. तमोल़।

तमोल़ : विवाह की एक रस्म। तमोल़ संस्कृत तमाल से निकला शब्द है। विवाह के अवसर पर बारात जाने से पूर्व 'सेहराबंदी' में वर के

सगे-सम्बधी उसे तिलक लगाते हैं और वस्त्र, पैसे व मेवे आदि भेंट में देते हैं, जिसे तमोल़ कहते हैं। प्रथम तमोल कन्या के हाथ से लगता है। वधू पक्ष के यहाँ भी विदाई से पूर्व वर को तमोल़ लगाया जाता है। संस्कृत तमाल जिसका विशेष अर्थ चन्दन का तिलक है, पहाड़ी में साधारण तिलक, वस्त्र पैसे आदि का अर्थ धारण करता है। अतः यहाँ अर्थ विस्तार हुआ है। वर को तमोल़ लगाते हुए उसके सिर पर से तीन या पाँच बार वारे हुए पैसे नाई को दिए जाते हैं, जिसे वारना कहते हैं। कुछ निकट सम्बंधी वर के पिता और भाई को भी तमोल़ लगाते हैं। इस अवसर पर गाया जानेवाला निम्न गीत इंगित करता है कि किस समय पर कौन टीका लगा रहा है–

पहला तमोल़ लाड़ेया कन्या ल्याई
दूजा तमोल़ तेरी अम्मा ने अंदा
तीजा तमोल़ मामी भेंटे, चौथा ल्यावे मासी...

तमोल़ के उपरांत वर कुछ मेवे और पैसे रूमाल में बाँध कर पुरोहित को देता है।

तरकड़ पूजा : विवाह की एक रस्म। बारात आने के तत्काल बाद कन्या पक्ष का पुरोहित वर से शुभ विवाह हेतु जो पूजा करवाता है, उसे तरकड़ पूजा कहा जाता है। विवाह का सारा काम इसके उपरांत ही आरम्भ होता है।

तरैण : दे. चर।

तलाई : (कु.) आमंत्रित व्यक्ति द्वारा निमंत्रक के घर ले जाये जानेवाले गेहूँ के दाने। शुभ कार्य के लिए यदि कोई **'बेटड़ी मर्द छंदा'** कहकर निमंत्रण भेजता है तो ऐसे निमंत्रण पर न्योतहरी को गेहूँ के दानों के बीच एक फूल डाल कर इन्हें निमंत्रण भेजनेवाले के घर ले जाना पड़ता है। तलाई ले जाने का काम प्रायः घर की स्त्री का ही होता है। गाँव में ही ऐसा निमंत्रण हो तो काँसे की थाली में दाने भरकर ऊपर फूल रख कर निमंत्रण स्थान पर ले जाए जाते हैं। जिस प्रकार तलाई ले जाने का काम स्त्री का होता है, उसी प्रकार तलाई लेने का काम भी स्त्री ही करती है। यह कार्य विशेषतः विवाहित धीओं को सौंपा जाता है, जिसे वे सहर्ष निभाती हैं। तलाई देनेवाली स्त्री इसे लेनेवाली को सबसे पहले फूल भेंट कर उसके पैर छूकर अभिवादन करती है और वह उसकी चोटी में लाल डोरी बाँध कर उसे विदा करती है।

तलाक : दे. काठो भानणो।

तिड़ तिड़ सरूआं : (कां.) एक वैवाहिक कृत्य। तेल-उबटन लगने के बाद जब दूल्हा नहा कर एक चौकी पर बैठ जाता है तो पाँच सुहागिनें बारी-बारी से दूर्वा हाथ में लेकर अग्नियुक्त एक पात्र में दूल्हे के आगे सरसों के दाने डालती हैं। वे दाने तिड़कते हैं। यह पात्र दूल्हे के पैर से लेकर सिर के ऊपर तक ले जाया जाता है। उसके बाद दूल्हा अपने दायें पैर के अँगूठे से उस पात्र को आगे की ओर गिरा देता है और स्त्रियाँ गीत गाती हैं –

तिड़-तिड़ सेतिए सरुएँ, रच्छा करेयाँ
इक रच्छा बिटिया, दूई बावे, त्री परुआरे
सेतियाँ सरुआँ तिड़-तिड़ लाई
लाड़े दिया अम्मा बुड़-बुड़ लाई
सेतियाँ सरुआँ तिड़-तिड़ लाई
लाड़े दिया ताईया बुड़-बुड़ लाई
सेतियाँ सरुआँ तिड़-तिड़ लाई
लाड़े दिया बुआ बुड-बुड़ लाई...

सरसों इसलिए तड़काई जाती है कि यदि लाड़े पर किसी की कुदृष्टि पड़ी हो तो इससे उसका प्रभाव खत्म हो जाता है।

तिल-चौली : विवाह उत्सव पर वर के घर महिलाओं द्वारा किया जानेवाला सामूहिक नृत्य। इसमें तिल और चावलों का विशेष महत्त्व होने के कारण इसका नाम तिलचौली पड़ा। वर यात्रा के घर से प्रस्थान करने पर पीछे रही स्त्रियाँ इस नृत्य को करती हैं। यह नृत्य प्रायः उस स्थान पर होता है, जहाँ दूल्हे को सजाया जाता है। पुरुषों को वहाँ नहीं रहने दिया जाता, क्योंकि कभी-कभी महिलाओं द्वारा अश्लील स्वाँग भी रचे जाते हैं। नृत्य से एक दिन पूर्व तिल तथा चावलों को साफ करके भिगो दिया जाता है और भीग जाने पर उसमें शक्कर या गुड़ मिलाकर काँसे या चाँदी की थाली में डाल दिया जाता है। इस थाली को सिर पर रखकर दूल्हे की माँ अन्य स्त्रियों के बीच आकर नृत्य आरम्भ करती है व स्त्रियाँ गीत गाती हैं। इसके बाद तिल-चौली महिलाओं में बाँटी जाती है। यूँ तो यह नृत्य कई लोक गीतों की लय पर किया जाता है, परंतु इसके मुख्य गीत के कुछ अंश इस प्रकार हैं–

मेरी तिल चौली नची कुड़े
नचदी नचदी भुली कुड़े
लाड़े दी अम्मा नची कुड़े
नचदी नचदी भुली कुड़े
मेरी तिल चौली डुली कुड़े
डुलदी-डुलदी डुली कुड़े...

इस प्रकार सब स्त्रियाँ बारी-बारी से नृत्य करती हैं। कन्या के घर से या वर के घर से जब मामा आदि विशेष परिजन विदा होने लगते हैं तो वर-वधू की माताएँ उस समय भी तिलचौली बाँटती हैं।

तिहार देणा : त्योहार देना। लड़की का रिश्ता पक्का हो जाने के पश्चात् जो भी त्योहार आता है, उसमें लड़केवाले लड़की को यथासामर्थ्य कपड़े, श्रृंगार का सामान, फल, मेवे और पैसे आदि भेंट करते हैं, जिसे तिहार देणा कहते हैं।

तीउण : (कु.) दे. चर।

तीण : (चं.) दे. चर।

तृणा छेद : (चं.) तृण काटना, एक वैवाहिक कृत्य। कन्यादान के बाद कुश नामक घास को एक सिरे से कन्या तथा दूसरे सिरे से उसका पिता पकड़ता है। दूल्हा अपनी कटार से इसे बीच में से काट देता है। ऐसा माना जाता है कि इससे कन्या अपने पिता के गोत्र से अलग हो जाती है।

तेबग्स्तोन : (ला.) शास्त्रोक्त विवाह। जनजातीय क्षेत्र लाहुल में तेबग्स्तोन विवाह जिसे कुनमई बग्स्तोन भी कहते हैं, में लड़की और लड़के के माता-पिता द्वारा आपसी बातचीत के पश्चात् विवाह का दिन निश्चित किया जाता है। विवाह की रस्म अत्यंत सरल और सूक्ष्म होती है। लड़की के घर पहुँचने पर बारात का स्वागत किया जाता है। वर की ओर से मर पिंड (सत्तू और घी से तैयार किया गया एक विशेष पिंड), 'छंग' व सरा (शराब) साथ ले जाया जाता है। इन पदार्थों को कन्या के घर उपस्थित लोगों में बाँटा जाता है। वर तथा 'बागठिदपा' को आसन पर बिठाया जाता है और अन्य बाराती छंग और सरा का मज़ा लेते हुए नाचने-गाने में मस्त रहते हैं। वर अपने साथ लाए तीर को, जिस पर श्वेत वस्त्र बंधा रहता है, थामे रहता

है। यदि कन्या-पक्ष के किसी व्यक्ति के हाथ यह तीर लग जाए तो वापिस लेने के लिए मूल्य चुकाना पडता है। विदाई के समय यह तीर दुलहन के कंधे पर बाँध दिया जाता है। वापसी में मार्ग में आनेवाले गाँवों में बारातियों का स्वागत छंग व रारा से किया जाता है। बदले में इन्हें रुपए देने की प्रथा है। घर पहुँचने पर लामा द्वारा बारात की नज़र उतारी जाती है और दुलहन को गृह प्रवेश करवाया जाता है। दूल्हा-दुलहन को जौ के दानों से बनाए गए स्वस्तिक चिह्न से युक्त सुंदर आसन पर बिठाया जाता है। उनसे गृह देवता की सत्तू के पेड़े से पूजा करवा कर उसको प्रसाद रूप में लोगों में बाँटा जाता है। दूसरे दिन प्रातः वधू को नए वस्त्र तथा आभूषण पहनाए जाते हैं। लोग टीके के रूप में रुपए-पैसे देते हैं।

तेम खुनमिग : (क्रि.) दे. दारोश डबडब।

तेल की धाम : दे. छक।

तेल-तलाई : विवाह की एक रस्म। 'टिक्का टेरा' की रस्म के बाद वर पक्ष का पुरोहित, नाई तथा एक सम्बंधी गणेश पूजा के लिए एक थाल में शक्कर, डोरी, कुछ आभूषण और सरसों के तेल से युक्त कुज्जा जो गोटेवाले लाल रंग के कपड़े से ढका और 'मौली' से बंधा होता है, उसे लेकर दुलहन के घर जाते हैं। इसके साथ मेहंदी और बुटणे की गोटेवाली दो थैलियाँ भी होती हैं। इन्हें तेल-तलाई कहा जाता है। गणेश पूजा के बाद 'सांद' के समय तेल डालने की रस्म तेल-तलाई में आए तेल से पूरी की जाती है और इसके बाद बुटणा और मेहंदी लगाए जाते हैं। वहाँ एकत्र महिलाएँ मंगल गीत गाती हैं तथा दूल्हे की ओर से आया सम्बंधी उन्हें शक्कर और पैसे देता है। कुछ क्षेत्रों में दूल्हे का पिता सात बारातियों के साथ बैंड-बाजे सहित कन्या के घर जाता है। वहाँ पर पूजन के साथ वर और कन्या के घर के चावल, गेहूँ आदि अन्न आपस में मिलाए जाते हैं तथा दूल्हे के घर से लाए गए तेल को वे कन्या के लिए देते हैं।

तेल फूल : दे. तेल शांति।

तेल-मेल : एक वैवाहिक कृत्य। 'मिलणी' की रस्म के बाद वर को कन्या के घर में स्नान कराने की प्रथा है। वर पक्ष की ओर से लाए गए तेल में कन्या पक्ष का तेल मिलाया जाता है। वर उस तेल को लगाता है। उसे धोती,

जनेऊ और स्वर्ण की अँगूठी दी जाती है। तब वर पक्ष की ओर से लाई गई सुहागपिटारी कन्या की माता को सौंपी जाती है।

तेल शांति : विवाह की एक रस्म। इसमें 'सांद' के समय दोनों पक्षों में लड़के और लड़की को विवाह संस्कार सम्पन्न करवाने के लिए निश्चित कमरे में बिठाया जाता है। चम्बा के जनजातीय क्षेत्र में मामा या मारी अन्यत्र नाई, तेल का दोना लिए पास खड़ा रहता है। सबसे पहले कन्या से तेल डलवाया जाता है और फिर सब परिवार जन, गाँववाले, मित्र आदि उनके सिर में दूब के साथ सरसों का तेल डालते हैं। साथ ही दोने में कुछ पैसे भी डालते रहते हैं। जो-जो व्यक्ति तेल डालता है, उसका नाम या सम्बंध बताकर उसके लिए गालियाँ गाई जाती हैं। सबसे ज़्यादा गालियाँ मामा को दी जाती हैं। एक गाली द्रष्टव्य है –

मामें पाया तेल मुइए मैं तेरी सौं
होरनें पाया धेला पाई, मामे पाई माई
नाई परोत लेई नैं न्हठे, अद्दो अद्द बंडाई
नैण परोतणी खुशियाँ मनान, घरे जो गोली आई

अर्थात् जब औरों ने नाई के दोने में पैसे डाले तो कंजूस मामा ने पैसे तो बचाए पर बदले में माँ को तेल में डाल दिया। उसे लेकर नाई और पुरोहित दोनों भागे और उस पर अपना-अपना हक जताने लगे, नाइन और पुरोहितानी खुशियाँ मनाने लगीं कि चलो काम करने को नौकरानी तो आई।

तेल डालने का क्रम लगभग दो-तीन घंटे चलता है और उस समय उपस्थित महिलाएँ गीत गाती रहती हैं। एक गीत की कुछ पंक्तियाँ हैं –

रणकेयां सोन कटोरड़िए, पर तेले नूं इस बेले नूं
रणकेयां सोन कटोरड़िए, पर धेले नूं इस बेले नूं
पहला तेल संजोया कुआरिया कन्या ने
रणकेयां सोन कटोरड़िए, पर तेले नूं इस बेले नूं
दूजा तेल संजोया लाड़े दे भाई ने
रणकेयां सोन कटोरड़िए, पर धेले नूं इस बेले नूं
तीजा तेल संजोया लाड़े दीया मासिया ने
रणकेयां, सोन कटोरड़िए, पर तेले नूं इस बेले नूं...

तेल शांद : दे. सांद।

तोरण : तोरण का अर्थ महराबदार बनाया हुआ द्वार, सिंह-द्वार, बहिर्द्वार, प्रवेशद्वार, अस्थाई रूप से बनाया हुआ शोभाद्वार, स्नानागार के निकट का चबूतरा आदि है। पहाड़ी में यहाँ तोरण शब्द केवल विवाह आदि में लगाये गये स्वागत द्वार के लिए सीमित रह गया है। यह द्वार दो बाँस के डंडों को गाड़ कर बनाया जाता है, जिन पर एक चपटी फट्टी टिका दी जाती है। इस फट्टी पर लकड़ी की बनी चिड़ियाँ, तोते आदि पक्षियों की पाँच-सात आकृतियाँ लगा दी जाती हैं। तोरण वर तथा कन्या के घर के बाहर लगता है, जहाँ वर-वधू की आरती उतारी जाती है। इसे लड़के-लड़की का मामा बनवाकर लाता है।

सिरमौर में तोरण कन्या के घर पर पाजे के स्तम्भों के ऊपर बनाया जाता है। तोरण पर कन्या के पिता द्वारा मिट्टी के सात दीए 'मौली' में बाँध कर लटकाए जाते हैं तथा वर की तरफ से आया सुहागपुड़ा भी लटकाया जाता है, जिसमें एक खास किस्म का चमकीला पीले रंग का कागज़ लगा होता है, जिस पर कुमकुम से ओम् लिखा होता है। मिलणी की रस्म पूरी होने के बाद दूल्हे को तोरण छूने के लिए बुलाया जाता है। वह पालकी में बैठकर उसे छूता है, फिर तोरण के नीचे खड़ा हो जाता है। यहाँ पर पंडित मौली से उसकी सिर से पैर तक नपाई करता है, फिर वह मौली दुलहन को दे दी जाती है, जिसे वह एक वर्ष तक अपने बालों की चोटी में बाँधती है।

त्रायस : (मं.) हवन की राख में घी डालकर जो तिलक बनाया जाता है, उसे त्रायस कहते हैं। हवन की समाप्ति पर पूर्ण आहुति के बाद सभी के माथे पर इसका टीका लगाया जाता है।

त्रीड़ा : (मं.) जब वर तथा कन्या 'सांद' के उपरांत नहा लेते हैं तो माँ नज़र लगने के भय से बबरू उनके सिर से लगा कर चारों दिशाओं में फेंकती हैं। इसे त्रीड़ा क्रिया कहते हैं।

थो-रब्स बग्स्तोन : (ला.) विवाह में निभाई जानेवाली एक रस्म। जनजातीय क्षेत्र स्पीति के भोट समुदाय में समृद्ध लोगों द्वारा किए जानेवाले विवाह में बाराती चीनी रेशम का लिबास पहन कर घोड़े पर सवार होकर जाते हैं।

कन्या के घर से थोड़ी दूरी पर उनका स्वागत किया जाता है। स्वागत स्थल से घर तक छह या सात बुर्जियाँ लगाई जाती हैं, जिनके नीचे काटी गई भेड़ के भीतरी अंग ज़मीन में दबाए होते हैं। आगे बढ़ने से पूर्व बारातियों को इन बुर्जियों को एक-एक करके तोड़ना होता है। कन्या पक्ष का एक व्यक्ति प्रत्येक बुर्जी के पास खड़े होकर वर पक्षवालों से एक पहेली पूछता है। उस पहेली में कुछ कुंजी शब्द होते हैं, जो बुर्जी के भीतर छिपाए अंगों के बारे में इशारा करते हैं। बारातियों में से कोई उसे समझ कर तत्काल उत्तर देकर, बुर्जी को गिरा कर उसके नीचे गाड़े गए अंग को तलवार से निकाल लेता है। यदि उत्तर सही न हो और कोई दूसरा अंग निकल आए तो उन्हें दंड के रूप में कुछ रुपए देने पड़ते हैं।

दड़ोज : (कु.) दे. गेरनू-फेरनू।

दनोवर : (शि.)नज़राना। 'झंझराड़ा' या 'परैणा' विवाह में छह दिन के बाद दूल्हा दुलहन सहित अपने ससुराल जाता है तो वहाँ सभी को नज़राने के रूप में कुछ पैसे देता है, जिसे दनोवर कहते हैं। दो दिन तक वे वहाँ रहते हैं। वापसी पर यह दनोवर उसे बढ़ा कर दिया जाता है।

दमचलशिश : (कि.) गंधर्व विवाह। किन्नौर क्षेत्र में यह एक प्रकार का प्रेम विवाह है, जिसमें प्रेमी तथा प्रेमिका घर से भाग कर चोरी से विवाह कर लेते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ होता है–ठीक सम्बंध होना। कूनोचारङ क्षेत्र में इसे सेंबा थुनशा (दिल मिलकर), पूह-नमग्या में नामा कुया (चोरी से भगाना) तथा हङरङ् में नामा कुजा कहा जाता है।

दहेज : दे. दाज।

दाज : दहेज। विवाह के अवसर पर माता-पिता द्वारा कन्या को दिया जानेवाला धन और सामान। यह लड़की की गृहस्थी बसाने के लिए दिया जाता है। इसमें शय्या आवश्यक होती है। इसके बिना दान नहीं होता। कन्यादान के बाद सारा सामान वेदी में रखा जाता है और कन्या के माता-पिता इसकी परिक्रमा कर के संकल्प के साथ इसे दान करते हैं। इस मौके पर आमंत्रित सम्बंधी भी लड़की को थाली-गिलास, सूट-बूट आदि कुछ न कुछ भेंट करते हैं। इसे भी दाज कहा जाता है, जिसकी सूची लिखकर रखी जाती है। सम्बंधियों के यहाँ ऐसे अवसर आने पर यह कुछ ज्यादा

करके लौटाया जाता है। दाज देने की प्रथा ऊपरी पहाड़ी क्षेत्रों में पहले नहीं के बराबर थी। लड़की को गृहस्थी की केवल आवश्यक वस्तुएँ दी जाती थीं; परंतु अब विवाह दूर-दूर किए जा रहे हैं और पंजाब क्षेत्र के रीति-रिवाज़ इन पहाड़ों तक पहुँच गए हैं। अब दाज की एक सूची कन्या के साथ दी जाती है और एक उसके मायकेवाले रख लेते हैं। यूँ तो हरेक माता-पिता अपनी पुत्री को ससुराल में सुखी देखना चाहते हैं, परंतु यदि उनकी लड़की की अपने पति से अच्छी न बने तो सूची के अनुसार दिया गया वह सारा सामान तलाक के समय उनसे वापिस वसूल किया जा सकता है।

दाड़न-पूजन : दे. अंब दड़ूनी।

दाड़न-फेरना : दे. अंब दड़ूनी।

दाड़ूपूज़णा : दे. अंब दड़ूनी।

दाण : दे. दाज।

दारोश डबडब : (कि.) विवाह का एक प्रकार। यह भारतीय स्मृति शास्त्रों में वर्णित राक्षस विवाह के समकक्ष है। दारोश डबडब का शाब्दिक अर्थ है—बलपूर्वक घसीट कर ले जाना। जब लड़के को कोई लड़की पसंद आ जाती है तो ऐसी स्थिति में उचित अवसर और स्थान देखकर लड़की को बलपूर्वक लड़केवाले के घर पहुँचा दिया जाता है। जिस लड़के के साथ विवाह होना होता है, लड़की को सर्वप्रथम वही हाथ लगाता है। तत्पश्चात् लड़के के दोस्त उसे उठाते हैं। उसके बाद लड़के के माँ-बाप 'मजोमी' को लड़की के घर समझौते के लिए भेजते हैं। इस प्रकार के विवाह को तेम खुनमिग और खुखू भी कहते हैं।

दीवान : (शि.) विवाह की बात पक्की होने के बाद कन्या के घर शगुन की रस्म निभाने के लिए लड़के के साथ जो निकट सम्बंधी या अन्य कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति जाता है उसे दीवान कहते हैं।

दुणाठी : (चं., सि.) कन्यादान के सामान को वर के घर पहुँचानेवाले व्यक्ति। इसके लिए उन्हें पारिश्रमिक दिया जाता है। इसे सिरमौर क्षेत्र में ही **सुबाठी** भी कहते हैं।

दुणोज़ : (शि.) दे. गेरनू-फेरनू।

दुद्धाभत्ती : विवाह की एक रस्म। कन्यापक्ष की ओर लग्नवेदी का कार्य समाप्त हो जाने पर वर-वधू को उस कमरे में ले जाया जाता है, जहाँ देवता की स्थापना होती है। वहाँ एक परात में दूध मिश्रित जल में चाँदी का सिक्का डाल दिया जाता है और वर-वधू को उसको ढूँढना होता है। जिसको सिक्का पहले मिल जाता है, उसकी जीत समझी जाती है और ऐसा लोक विश्वास है कि दाम्पत्य जीवन में उसका पलडा भारी रहता है। इसलिए कन्या पक्षवाले चाहते हैं कि सिक्का लड़की को मिले और वर पक्षवाले चाहते हैं कि लड़के को मिले।

दुद्धू भत्तू : दे. दुद्धाभत्ती।

दुध प्याणा : दे. चूची प्याणा।

दुध मुंदड़ी : दे. दुद्धाभत्ती।

दुशाला : एक पशमीने की चादर जो दोहरी होती है और इसके किनारे पर बेल-बूटे कढ़े होते हैं। यह मूल्यवान वस्त्र होता है, जिसे स्त्री-पुरुष दोनों ओढ़ते हैं। यह धनी व्यक्तियों का वस्त्र है। विवाह में धनाढ्य वर दुशाला ओढ़कर पालकी में या घोड़ी पर बैठकर जाता था। बाद में जनसाधारण में भी यह रिवाज़ चल पड़ा और कई लोग विवाह के लिए दुशाला सामंतों या व्यापारियों से माँगकर भी लाते हैं।

दुहाजू : ऐसा वर जिसकी पहली पत्नी की मृत्यु हो गई हो। विशेष परिस्थितियों में कन्या का विवाह ऐसे वर के साथ कर दिया जाता है।

दूरेस-गौरचङ् : (कि.) ससुराल। किन्नौरी में पुरुष अपने ससुराल के लिए दूरेस शब्द का प्रयोग करता है, जबकि स्त्री के संदर्भ में ससुराल के लिए गौरचङ् शब्द का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी गौरचङ् के स्थान पर परायो किम (पराया घर) या केवल परायो भी कहा जाता है।

दृढ़ पुरुष : (शि.,सो.) यह व्यक्ति विवाह में बारात के साथ चलता है। इसे दायित्व सौंपा जाता है कि वेदी में पानी का लोटा हाथ में ले कर खड़ा रहे। वह पूरे लग्नकर्म खत्म होने तक लोटा थामे स्थिर खड़ा रहता है। वेदी की समाप्ति के बाद सभी उपस्थित जन उसके लोटे में श्रद्धानुसार सिक्के डालते हैं। इन पैसों पर उसी का अधिकार होता है।

देईताक : (मं.) एक वैवाहिक कृत्य। जब बारात कन्या पक्ष के यहाँ पहुँचती है तो बारातियों को डेरे में ठहराया जाता है। लड़कीवालों का पुरोहित वहाँ जाकर दूल्हे से पूजा करवाता है, उसे देईताक कहते हैं।

देऊब्याह : (कु.) विवाह का एक प्रकार। इस विवाह में अन्यान्य देवताओं, अग्नि आदि के स्थान पर ग्राम या कुलदेवता ही प्रधान होता है। वही गूर के माध्यम से विवाह के हर संस्कार की तिथि निश्चित करता है तथा प्रत्येक संस्कार में कुल देवता की पूजा होती है। देऊब्याह में देवता के प्रतीक पूजा की घंटी जिसे लोक भाषा में घौंड़ी और धूप पात्र जिसे धौड़छ कहते हैं, के साथ गूर देव-प्रतिनिधि होता है। गूर ब्रह्म विवाह से मिलती-जुलती प्रक्रिया मंत्ररहित ही करता है और तदनुसार ही दान-दक्षिणा लाग-नेग प्राप्त करता है। इस परम्परा को त्याग कर कोई देवता का कोप-भाजन नहीं बनना चाहता। यह शास्त्रीय विवाह पद्धति से हटकर लोक पद्धति का विवाह कहा जा सकता है।

देल़ : (मं.) विवाह के अवसर पर वर पक्षवाले वधू के मायके में विवाहित उन लड़कियों को भी वस्त्र, रुपए आदि उपहार स्वरूप देते हैं, जिनका मायका वर के गाँव में होता है। इस भेंट को देल़ कहते हैं। यह देवी-देवताओं के मंदिरों में भी चढाई जाती है।

देहरा : (कु., चं.) एक लोक कला। विवाह के अवसर पर घर की दीवार पर जो डोली, कहार, खासा का चित्रांकन किया जाता है उसे देहरा कहते हैं। इसमें डोली के साथ बारात के चित्र भी होते हैं। शादी में वर तथा कन्या को अपने-अपने ननिहाल से जो वस्त्र और पकवान आदि मिलते हैं मंडी में इसे देहरा कहा जाता है। अन्य अर्थ में देहरा लकड़ी का बनाया हुआ वर्गाकार डिब्बा है जो तीन तरफ से बंद होता है और ऊपर से खुला। उसमें पंडित आम के पत्तों की माला लटका देता है तथा बीच में धान या चावल रख कर उसमें तेल का दीपक जलाता है। इसी के समक्ष शादी के दिन पुरोहित कन्या और वर के माँ-बाप और मामा से पूजन कराता है।

देहल़ रोकणी : एक वैवाहिक कृत्य। दे. द्वार डकणा।

द्रुबा उठाणा : दे. ध्याड़ौ हेरनौ।

द्रुमा री छड़ : (मं.) दूर्वा की टोकरी। यह बाँस या गेहूँ की तीलियों से बनी, सुंदर रंगों से सजाई एक टोकरी होती है। इसमें लड़की के घर से टीका-स्वरूप चाँदी की दूर्वा, चाँदी की कजलोठी, चंदन डालने के लिए चाँदी की कटोरी, ननदों के लिए सूट तथा चाँदी या सोने की अँगूठियाँ, कुछ रूमाल या मेजपोश तथा चार तश्तरियों में नारियल, इलायची, पान-सुपारी व कसा हुआ नारियल वर के लिए डेरे पर भेजा जाता है।

द्वादश लगन : एक वैवाहिक कृत्य। वर को लग्न के लिए डेरे से जब लाया जाता है तो उसे नहला कर लड़कीवालों की तरफ से वस्त्र भेंट किए जाते हैं। दूल्हा उन्हें पहनकर उस स्थान पर जाता है, जहाँ दुलहन बैठी होती है। वहाँ कुल पुरोहित पूजन करवा कर दोनों के हाथों में शुभ रंग लगाता है। इस प्रक्रिया को द्वादश लगन कहा जाता है।

द्वार डकणा : रास्ता रोकना। विवाह की एक रस्म। जब लड़केवाले बारात लेकर लड़की के घर पहुँचते हैं तो लग्न के समय लड़के की सालियाँ उसका रास्ता रोक लेती हैं और तब तक उसे अंदर प्रवेश नहीं करने देतीं जब तक उन्हें उनका 'नेग' नहीं मिलता। दिए गए नेग को द्वार डकाई कहा जाता है। यह नेग सभी सालियाँ आपस में बाँट लेती हैं। दूसरी बार द्वार रोकने की रस्म तब निभाई जाती है जब दूल्हे व दुलहन को 'बेदी' व 'लायाँ' की रस्मों के बाद 'कौहरे' के पास ले जाया जाता है। इस समय भी दूल्हे की सालियाँ अपना नेग लेती हैं।

द्वार मातृ : सं. द्वार मातृका। ये संख्या में सात होती हैं, जो द्वार में निवास करती हैं और कल्याणी, धनदा, नंदा, पुण्या, पुण्यमुखी, जया तथा विजया के नाम से जानी जाती हैं। जिस विवाह में शास्त्रोक्त विधि से विवाह संस्कार नहीं होता वे लोक-रीति के अनुसार द्वार और नवग्रहों की पूजा करते हैं।

द्वार हुडणो : कु. दे. द्वार डकणा।

धनोज : दे. गेरनू-फेरनू।

धम्मेतड़ : (चं.) शादी में धाम के लिए आमंत्रित व्यक्ति। ये 'सांद' और बारात में शामिल नहीं होते, केवल धाम में ही सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त विवाह आदि अवसर पर निमंत्रण देने के लिए नियुक्त किये गये व्यक्ति को भी धम्मेतड़ कहते हैं। इन्हें विवाहवाले परिवार की ओर से आमंत्रित किए

जानेवाले लोगों की सूची दी जाती है। ये उनके घर जा कर शादी में आने का न्योता देते हैं।

धाड़ा : (शि.,सि.) यह शास्त्रों में वर्णित असुर विवाह का विशुद्ध रूप है। इस पद्धति में वर पक्षवाले मनपसंद कन्या को मेले आदि के दौरान जबरदस्ती उठाकर अपने या किसी रिश्तेदार के घर ले जाते हैं। यदि लड़की भी लड़के से विवाह करने के लिए सहमत हो तो यह कार्य आसानी से हो जाता है, परंतु यदि वह विरोध करे तो उसे बलपूर्वक उठा लिया जाता है। उसे बड़ों की सुरक्षा में रखा जाता है और खाने के लिए भोजन दिया जाता है। यदि वह भोजन कर ले तो उसके माता-पिता से बातचीत की जाती है अन्यथा लड़की को सम्मानपूर्वक उसके घर वापिस छोड़ दिया जाता है। यदि लड़की सहमत हो तो उसका पिता पाँच-दस दिनों के बीच किलटे में खाद्य सामग्री लेकर वर के घर आता है। वर का पिता उसे 'रीत' की राशि देता है। इसके अतिरिक्त गाँववालों की इज्ज़त के एवज़ में उसे दंडस्वरूप बकरा देना पड़ता है और उनके मंदिर में किसी स्थान पर कोई बर्तन कीलना पड़ता है, जिसे हांडो-बाकरो कहते हैं। इस के बाद लड़की का पिता दामाद और कन्या को अपने घर लाता है। ससुराल पहुँचने पर दामाद चाँदी का एक रुपया या सामर्थ्यानुसार पैसे रखकर सास के समक्ष मत्था टेकता है और इस तरह विवाह सम्पन्न हो जाता है।

धाम : प्रीति भोज। विवाह के लिए आमंत्रित सभी व्यक्तियों को विवाह के अंतिम दिन जब बारात वापिस अपने घर आ जाती है, विशेष भोज दिया जाता है। लड़की के विवाह में आमंत्रित व्यक्तियों और सगे-सम्बंधियों को बारातियों के पश्चात् भोजन कराया जाता है, जबकि लड़के के घर में यह धाम बारात लौटने के बाद होती है।

धामड़ू : (कु.) दे. छड़याह।

धाम पाणा : (चं.) विवाह के अवसर पर धाम के लिए निमंत्रण देना। यदि केवल पुरुष धाम पाने के लिए जाए तो तात्पर्य यह होता है कि केवल पुरुषों को ही धाम का आमंत्रण है, परंतु यदि स्त्री भी निमंत्रण देने जाए तो इसका अर्थ यह होता है कि घर के सभी स्त्री-पुरुषों को धाम के लिए आमंत्रित किया गया है।

धामू : संदेशवाहक। यह बुद्धिमान तथा योग्य व्यक्ति होता है, जो विवाह का

प्रस्ताव लड़कीवालों के घर ले जाता है। इसे मध्यस्थ भी कह सकते हैं, क्योंकि विवाह सम्बंध को पक्का करना इसी का काम होता है।

धी : पुत्री। इसे लोक में देवी स्वरूप माना जाता है। घर के हर धार्मिक उत्सव में इसकी मुख्य भूमिका रहती है।

ध्याइण : यह शब्द विवाहित पुत्री के लिए प्रयुक्त होता है। ध्याइण को शादी-विवाह, जन्म दिन, मुंडन और श्राद्ध, 'चबर्खे' आदि के विशेष अवसरों पर सपरिवार अवश्य बुलाया जाता है और इन्हें दान-उपहार आदि दिए जाते हैं। हिन्दू संस्कारों में कुछ संस्कार तब तक अधूरे माने जाते हैं जब तक ऐसे अवसरों पर धी-ध्याइणें उपस्थित न हों।

ध्याड़ौ हेरनौ : (कु.) विवाह की पक्की तिथि व लग्न आदि का निर्धारण करना यानी दिन देखना। इसे **द्रुबा उठाणा** भी कहते हैं। दुलहन पक्ष के घर सभी सगे-सम्बंधियों को प्रातः 10-11 बजे खलियान में आमंत्रित किया जाता है। दोनों पक्षों के पुरोहित, रिश्तेदार तथा ज्योतिषी आपस में विचार करके विवाह का दिन, घड़ी व लग्न तय करते हैं। खलियान में बैठकर विवाह के कार्यक्रम की सार्वजनिक घोषणा की जाती है। यह प्रक्रिया आमतौर पर विवाह से सात-आठ दिन पूर्व या इससे पहले भी होती है। दिन निश्चित होने के बाद पूरे गाँव में घर-घर जाकर गुड़ बाँटा जाता है। निर्धारित समय पर विवाह निश्चित रूप से करना पड़ता है, भले ही उन दिनों दूल्हा या दुलहन के पक्ष में किसी नज़दीकी रिश्तेदार की मृत्यु क्यों न हुई हो। विवाह का दिन तय होने की रात्रि से ही दूल्हा-दुलहन के घर विवाहगीत गाए जाते हैं।

ध्रेब्बा : (शि.) सगाई होने के पश्चात् यदि लड़केवाले रिश्ता तोड़ दें तो इसे लड़की के लिए अशुभ माना जाता है और उस लड़की को ध्रेब्बा कहा जाता है। कुछ क्षेत्रों में इसके लिए दंड का विधान है। रिश्ता तोड़ने पर दूसरे पक्ष को दंड-स्वरूप उसे बकरा तथा जो सामान लड़कीवालों ने दिया हो वह वापिस देना होता है।

नछड़याह : (कु.) दे. छड़याह।

नधार : (सि.) विवाह के अवसर पर आमंत्रित मेहमान। वर और कन्या दोनों घरों में मुख्य मेहमान मातुल परिवार होता है। उनका खूब आदर-सत्कार

किया जाता है। जब वे आते हैं तो कुछ दूरी तक परिवारवाले बाजे-गाजे के साथ उन्हें लेने जाते हैं और महिलाएँ गीत गाते हुए उन्हें घर लाती हैं। गीत के कुछ बोल द्रष्टव्य हैं –

ऊँची-ऊँची टीवटी मैं चढ़-चढ़ देखूँ जी
कहाँ सी आए मेरे माए जाए वीर...

जब वे घर पहुँच जाते हैं तो दूल्हा-दुलहन के मामा अपनी बहन को टीका करते हैं और उपहार-स्वरूप वस्त्र देते हैं। उस समय महिलाएँ गीत गाती हैं –

आजे भाई बहणा के आए जी
करे लो टीका बिंदी बोहार...

नरेल़ : नारियल। वर जब ब्याहने जाता है तो उसके हाथ में एक सूखा नारियल या चाँदी का वर्क चढ़ा गरी का गोला अवश्य होता है। प्रत्येक शुभ संस्कार में नारियल का विशेष महत्त्व है। नवरात्र पूजा के अंतिम दिन यज्ञ में नारियल की बलि चढ़ाई जाती है। माँ भगवती को नारियल का भोग लगता है।

नहाओंडी : (सि.) दे. नुहांडी।

नांदीमुख : किसी भी शुभ कार्य के अवसर पर पितरों को संतुष्ट करने के लिए किया गया श्राद्ध। विवाह में सबसे पहले नांदीमुख श्राद्ध किया जाता है। इसमें यजमान अपने पुरोहित को पहनने के लिए वस्त्र, पानी पीने के लिए पात्र तथा खाने के लिए पकवान देकर दक्षिणा देता है। इसे पितरों के प्रति किया गया श्राद्धकर्म कहा जाता है। इसके बाद विवाहवाले घर में यदि कुछ अशुभ भी घटित हो जाए तो भी विवाह रोका नहीं जाता।

नाता लाणा : (शि.) दे. बरणी।

नानक छक : विवाह के अवसर पर 'सांद' के दिन ननिहाल की ओर से दी जानेवाली धाम। इसका सारा खर्च मामा करता है। इस अवसर पर महिलाएँ ननिहाल पक्ष वालों को 'सिठणी' देती हैं–

देखो भई लोको नानकी छक, भई नानकी छक
मामे ने धर दित्ती जोरू दी लत्त, भई जोरू दी लत्त

देखो भई लोको गाजर दा बूड़ा, भई गाजर दा बूड़ा
मामे ने धर दित्ता अम्मा दा चूड़ा, भई अम्मा दा चूड़ा...

निउंदा : दे. निऊंदर।

निऊंदर : निमंत्रण। किसी शादी-विवाह, उत्सव आदि में या श्राद्ध भोज आदि में सम्मिलित होने के लिए निवेदन। इसके अंतर्गत परम्परानुसार परमेश्वर का नाम स्मरण कर सर्वप्रथम सभी देवी-देवताओं को निमंत्रित किया जाता है, यथा--

पैहली निऊंदर ईसरे घरैं, गौरजां समेत घरैं औणा
मेरे घर काज होवै
होर निऊंदर नरैणे घरैं, लछमिया समेत घरैं औणा
मेरे घर काज होवै
होर निऊंदर चंदरमें घरैं, रोहणिया समेत घरैं औणा
मेर घर काज होवै
होर निऊंदर सूरजे घरैं, रश्मां समेत घरैं औणा
मेरे घर काज होवै
होर निऊंदर इंद्रै घरैं, इंद्राणिया समेत घरैं औणा
मेरे घर काज होवै
होर निऊंदर मामे घरैं, मामिया समेत घरैं औणा
मेरे घर काज होवै...

इस प्रकार जिन-जिन सम्बंधियों को निऊंदरें लिखी जाती हैं, उनका नाम ले कर गीत गाया जाता है। निऊंदर देने का दायित्व नाई, पुरोहित, गाँव के व्यक्तियों या रिश्तेदारों को सौंपा जाता है। ये सभी सज-धज कर गाँव-गाँव में निमंत्रण देने जाते हैं। निमंत्रण हर व्यक्ति को नहीं दिया जाता, बल्कि खास रिश्तेदारों और दोस्तों को दिया जाता है। यदि किसी रिश्तेदार को भूल से निऊंदर देना छूट जाए तो भविष्य में उनका पारस्परिक व्यवहार खत्म हो जाता है। इसी प्रकार निमंत्रण का पालन न करनेवाला आदमी भी दोष का भागी होता है। पहले निऊंदर देने के लिए भेजे गए व्यक्ति आमंत्रित किए जानेवाले परिवार के घर के दरवाज़े पर कुमकुम के तीन, चार या पाँच खड़े टीके लगाते थे या उनके दरवाजे के ऊपर पीले चावल रखते थे। घर में उपस्थित व्यक्ति को भी कुमकुम का

टीका लगाने के साथ विवाह का मास तथा तिथि आदि भी बताई जाती थी। आजकल इसका स्थान निमंत्रण पत्र ने ले लिया है, जिन्हें डाक से भी भेज दिया जाता है। इसे मंडी में **सादा**, शिमला में **निउंदा**, **बदाणी** या **छांदा** और कुल्लू में **छंदा** या **छोंदा** कहते हैं। ध्वनि भेद से इसे न्युंदर भी कहा जाता है।

निऊंदरु : निमंत्रण देने के लिए नियुक्त व्यक्ति। यह नाई या कुलपुरोहित या बिरादरी का आदमी होता है। इसे आमंत्रित किए जानेवाले लोगों की सूची दी जाती है, जिनके घर जा कर वह न्योता देता है। वह जिस घर में निमंत्रण देता है, वहाँ उसे कुछ अनाज या पैसे भेंट में दिए जाते हैं।

निकाह : मुसलिम विवाह। हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों में रहनेवाले गुज्जर इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं, इसलिए उनके निकाह भी शरीयत के सिद्धांतों के अंतर्गत होते हैं। उनके विवाह छोटी आयु में भी हो जाते हैं। निकाह के समय एक काज़ी, एक मौलवी और दो गवाह उपस्थित रहते हैं। काज़ी की फीस पाँच रुपए, मौलवी की तीन और गवाहों की दो रुपए प्रति गवाह निश्चित होती है। ये सदा के लिए नियुक्त नहीं होते। समय-समय पर बदलते रहते हैं। सबसे पहले लड़कीवालों का मौलवी लड़केवालों से आज्ञा लेता है। उस समय काज़ी भी उपस्थित रहता है। वह लड़की के पिता से पूछता है कि तुम्हारी लड़की का अमुक लड़के से निकाह करवा दें। मौलवी फिर काज़ी से इनका हक-निकाह करने की आज्ञा माँगता है। आज्ञा मिलने पर मौलवी और दो गवाह लड़की के पास जाते हैं। मौलवी लड़की को कलमे पढ़ाता है और गवाह मौके पर रहते हैं। मौलवी लड़की और लड़के की रज़ामंदी लेता है फिर दूल्हा-दुलहन आपस में वचन देते हैं। लड़का कहता है कि वह अपनी कमाई का एक भाग अपनी दुलहन को दिया करेगा और दुलहन वचन देती है कि उसका पति दहेज में मिली भैंस का दूध पी सकता है और आवश्यकता पड़ने पर उसे बेच भी सकता है। एक बार विवाह हो जाने पर तलाक लेना मुश्किल होता है। गुज्जरों में एक बार विवाह हो जाने पर वह जीवन का बंधन बन जाता है।

नुहांडी : वह स्थान जहाँ वर या कन्या को नहलाया जाता है। इसके लिए वर तथा कन्या दोनों पक्षों में आँगन के एक कोने में पदमाख या पाजा

नामक वृक्ष की तीन शाखाएँ गाड़कर उन्हें ऊपर से 'मौली' में बाँध दिया जाता है। इसके बीच में एक पटड़ा रखकर स्त्रियाँ वर व कन्या को नहलाती हैं। ध्वनि भेद से इसे मंडी में **न्हवांडी** तथा सिरमौर में **नहाओंडी** कहते हैं।

नुहारी : दुलहन जब विदा हो कर अपने ससुराल जाती है तो अगले दिन प्रातः दूल्हा और दुलहन के नाश्ते के लिए लड़की के मायके से खीर, बबरू और मीठे चावल आदि भेजे जाते हैं, जिसे नुहारी कहते हैं।

नेओंग : (सि.) यह निमंत्रण का स्थानीय रूप है। शादी-विवाह जैसे पवित्र अवसर पर अपने इष्ट-मित्रों व रिश्तेदारों को निमंत्रण स्वरूप नेओंग दी जाती है। इसके लिए कोई व्यक्ति रिश्तेदारी में भेजा जाता है और उसके पास हल्दी से रंगे चावल दिये जाते हैं। वह व्यक्ति उन सम्बंधियों के पास जाकर उन्हें विवाहादि की तिथि बताते हुए चावलों के कुछ दाने देता है। कथा, यज्ञादि अवसरों पर भी इसी प्रकार नेओंग दी जाती है। ऐसे ही अवसरों पर आयोजित किये जानेवाले महिला लोकनृत्य **पुड्डुआँ** के आयोजन के लिए भी घर-घर इसी प्रकार न्योता दिया जाता है जिसे पुडुएं री नेओंग कहते हैं। अब गाँवों में भी कार्ड के प्रचलन के साथ यह परम्परा लुप्त होने लगी है।

नेग : विवाह आदि मांगलिक अवसरों पर सगे-सम्बंधियों तथा नाई, ब्राह्मण आदि को दिये जानेवाले द्रव्य, वस्त्रादि। इन अवसरों पर भाभी, साली तथा ननद को भी रस्मों के अनुसार नेग दिया जाता है।

नेवंदा : (सि.) यह विवाह अवसर पर निभाई जानेवाली एक स्थानीय परम्परा है। वधू लेकर बारात के वापिस लौटने पर दूसरे दिन यह नेवंदा डाला जाता है। यह रिश्तेदारी का एक प्रकार का पारस्परिक सम्बंध है। अतः प्रत्येक रिश्तेदार नेवंदा अवश्य डालता है। रीति के अनुसार यह घी, अन्न व धन के रूप में दिया जाता है। क्योंकि यह गरीब-अमीर सभी रिश्तेदारों द्वारा अनिवार्य रूप से निभाई जानेवाली प्रथा है, अतः सबकी सुविधा के लिए मात्र दो रुपये नेवंदे के रूप में अभी तक गाँवों में निर्धारित हैं। कुछ क्षेत्रों में नेवंदा बढ़ा कर देने की परम्परा है। यदि विवाहवाले परिवार ने 'नेवंदार' को पहले दो रुपए दिए हों तो उसे बदले में चार रुपए देने पड़ते

हैं। नेवंदा डालते समय उस प्रत्येक रिश्तेदार का नाम व ग्राम पहले बही पर लिखा जाता था, जिसे अब साधारण कापी पर लिखा जाता है, ताकि सम्बंध सनद रहे।

नेवंदार : (सि.) नेवंदा डालनेवाले व्यक्ति को नेवंदार कहते हैं। नेवंदार को **बरतणदार** भी कहते हैं। ये निकट रिश्तेदार तथा सम्बंधित गाँववाले होते हैं। नेवंदा डालने के अवसर पर 'सिठणियाँ' भी गाई जाती हैं। जीजा-साला जैसे सम्बंधी के आने पर जहाँ हास्य-व्यंग्य का पुट रहता है, वहीं आदरणीय सम्बंधी के आने पर उसके पूर्ण सत्कार का ध्यान रखा जाता है। जैसे–

मामा आया रे नेवंदार, हो के घोड़े पे सवार

न्योटङ् मीरङ् : (कि.) विवाह का एक प्रकार। न्योटङ् मीरङ् का शब्दार्थ है–दो व्यक्तियों के साथ। यह विवाह का सरल एवं संक्षिप्त रूप है। इसमें वर की ओर से केवल 'मजोमी' तथा एक अन्य व्यक्ति वधू के घर जाते हैं। वे एक दिन वहाँ रहकर दूसरे दिन वधू को साथ लेकर आ जाते हैं। घर में आकर 'बेलडिङ्' की रस्म निभाई जाती है तथा विवाह की विधि सम्पन्न समझी जाती है।

न्हवांडी : (मं.) दे. नुहांडी।

न्हेरा महीना : भाद्रपद मास। दे. काला महीना।

पंगत : पंक्ति। शादी-विवाहादि अवसरों पर निमंत्रित व्यक्तियों को भोजन कराने के लिए बैठाये पचास-साठ लोगों की पंक्ति ही पंगत है। इन्हें 'पंद' पर बिठा कर भोजन कराया जाता है। एक पंक्ति में बैठाकर भोजन बाँटने में रसोइये को सुविधा रहती है। खाना परोसने से पहले रसोइया पानी का छिड़काव करता है। उसके बाद पंगत के बीच कोई भी चल नहीं सकता। पहली बार पूरी पंगत में भोजन परोसे जाने से पूर्व बैठे हुए व्यक्ति ग्रास नहीं लेते तथा जब तक पूरी पंक्ति भोजन नहीं कर चुकती तब तक बीच में से किसी का उठना या बैठना निषिद्ध रहता है। एक पंगत उठने के बाद ही दूसरी पंगत को बिठाया जाता है। इसे **पैंठ** भी कहते हैं।

पंचेइक : (शि.) दे. पड़जंद्रा।

पंजणी : (मं.) वैवाहिक कृत्य। 'लायाँ' के समय दुलहन के माता-पिता द्वारा

अपनी कन्या को वस्त्र, बर्तन, शय्या और घर-गृहस्थी का सारा सामान तथा उसके ससुराल के सभी निकट सम्बंधियों को वस्त्र दिए जाते हैं। दान की जानेवाली इन सभी वस्तुओं को 'मौली' बाँधी जाती है और मंत्रोच्चारण के साथ इनकी पूजा की जाती है।

पंद : खजूर के पत्तों की बनाई गई चटाई। यह लगभग डेढ़ फुट चौड़ी और पंद्रह-बीस फुट लम्बी बुनी होती है। इसे शादी-विवाहादि अवसरों पर निमंत्रित व्यक्तियों को भोजन कराने के लिए बिछाया जाता है ताकि पचास-साठ व्यक्तियों को एक पंक्ति में बैठाकर भोजन कराया जा सके। घर में आम प्रयोग के लिए भी पंद बनाई जाती है, जो चौड़ाई में इससे दोगुनी तथा लम्बाई में लगभग पाँच-छह फुट होती है। इसे आगंतुक के लिए सम्मान पूर्वक बिछाया जाता है। जब शादी-विवाह के शुभ वस्त्र ललारी को दिए जाते हैं और रंगने के बाद जब वह उन्हें लाता है तो उसे बड़े आदर के साथ पंद पर बैठाने का वर्णन इस लोकगीत में किया गया है –

आयां बो ललारिया, बोयां बो ललारिया
बोहणे जो देंदी तिजो पंद, पंद बो ललारिया...

पचेकण . (कां.,ह.) कन्या की विदाई के समय जो स्त्री दुलहन के साथ उसके ससुराल भेजी जाती है, उसे पचेकण कहते हैं। वह दुलहन की सहायिका होती है और 'गेरनू-फेरनू' के दिन इसी के साथ ससुराल से वापिस आती है।

पचेकी : (कां.,ह.) कई स्थानों पर कन्या पक्ष की ओर से पाँच या सात व्यक्ति वर पक्ष के घर वधू के साथ भेजे जाते हैं, इन्हें पचेकी कहा जाता है। ज़िला शिमला के कुछ क्षेत्रों में इन्हें **परैणू** और कुल्लू में **पजांदू** कहा जाता है जो गेरनू-फेरनू वाले दिन वधू के साथ वापिस लौटते हैं।

पजांदू : (कु.) दे. पचेकी।

पटका : दे. लिंजड़ी।

पटमहारा : (चं.) बारात में वर के साथ जानेवाला व्यक्ति। यह दूल्हे के मामा या चाचा का लड़का होता है।

पटारपासा : (मं.) ऐसी पिटारी जिसमें दुलहन को मायके से विदाई के समय

पकवान भेजे जाते हैं। पकवान में बबरू, भल्ले, 'सगोती', लड्डू आदि होते हैं। दुलहन 'गोत कनाला' तक ससुराल का खाना नहीं खा सकती, अतः मायके से लाये यही पकवान खाती है।

पड़गाही : एक वैवाहिक कृत्य। जब बारात लड़कीवालों के यहाँ पहुँच जाती है तो लड़कीवाले बारात का स्वागत आग जलाकर करते हैं। यह कृत्य बारात के साथ आयी किसी बला को टालने के लिए किया जाता है। कहारों को पालकी से हटाकर लड़कीवाले स्वयं उनके स्थान पर पालकी उठाते हैं। इस कृत्य को पड़गाही कहा जाता है।

पड़जंद्रा : (चं.) वह बालक जो घुड़चढ़ी के समय वर के साथ बैठाया जाता है। पड़जंद्रा सगा भाई, चाचा या ताऊ का लड़का होता है। अगर इनमें से कोई भी न हो तो मामा या बूआ के लड़के को पड़जंद्रा बनाया जाता है। इसका काम दूल्हे की सहायता करना होता है। कन्या के घर में शादी की जितनी रस्में निभाई जाती हैं उन सब में वह वर के साथ रहता है। इसे शिमला में **पंचेइक** या **लटिंगर**, कुल्लू में **लड़ाकसी** तथा कांगड़ा में **सब्हालड़ा** कहते हैं।

पड़ता : पूजन सामग्री। इसमें अक्षत, पुष्प, कुंकुम, दूर्वा, धूप, आम के पत्ते, केले के स्तम्भ, 'मौली', चौकी, चावल का आटा, गेहूँ का आटा, मिट्टी का दीपक, वाती आदि प्रमुख हैं।

पड़थान : दे. पायता।

पढ़ूआ : एक वैवाहिक मनोरंजन। यह कृत्य बारात के विदा होने के पश्चात् वर पक्ष के यहाँ रात के समय किया जाता है। आस-पड़ोस की सब महिलाएँ इकट्ठी हो जाती हैं और सारी रात नाच-गाने और हँसी-ठट्ठे का कार्यक्रम होता है।

पणजणा : (चं.) दे. विदाई।

पणिहार पूजणा : दे. पन्हैर पूजन।

पत परताणा : (चं.) गद्दी जनजाति में विवाह अवसर पर जब बारात को वधू पक्ष की ओर से ठहरने के लिए अलग स्थान दिया जाता है तब वर का पिता या मामा पुरोहित सहित कन्या पक्ष के घर भेंट-स्वरूप लुच्चियों

का एक टोकरा ले जाता है। उस समय कन्या पक्ष में उस रात तथा अगले दिन होनेवाले संस्कारों से उन्हें अवगत करवाया जाता है। इस रस्म को पतपरताणा कहते हैं।

पत्तरेयार : दे. निऊंदरु।

पत्तल़ : थाली की जगह उपयोग में लाने के लिए बनाया गया टौर आदि के पत्तों का पात्र। टौर के पत्तों को बाँस की बारीक तीलियों से जोड़ कर इसे गोलाकर रूप दिया जाता है। शादी-विवाह आदि अवसर पर दिए जानेवाले सामूहिक भोज में थाली के स्थान पर इन पत्तलों का प्रयोग किया जाता है। इसे भोज के लिए पवित्र माना जाता है। एक पत्तल में क़ेवल एक बार ही खाना परोसा जाता है।

पत्तल़ बाँधणाः दे. भात बान्हणा।

पथांउणै : (कु.) लाजा-होम। विवाह अवसर पर वेदी में अग्नि की परिक्रमा करते समय भाई के माध्यम में दुलहन का अग्नि में धान की खीलों की आहुतियाँ देना।

पदार्घ : (मं.) पाद+अर्घ। यह एक वैवाहिक कृत्य है। बारात जब कन्या पक्ष के घर पहुँच जाती है तो वर, उसके मामा और निकट सम्बंधियों का स्वागत करते हुए कन्या के पिता द्वारा उनके पैर धुलाए जाते हैं। कन्या पक्ष का पुरोहित अपने यजमान से वर पक्ष के पुरोहित की पाद पूजा कराता है। वर पक्ष का पुरोहित एक पटड़े पर खड़ा हो जाता है, जिस पर पैर उत्कीर्णित होते हैं। इसे पैंसी कहते हैं। पाद-पूजा करनेवाला व्यक्ति पुरोहित को पगड़ी पहना कर टीका लगाता है। इसके बाद परात में पैर धुलाता है, फिर स्वस्तिवाचन के साथ रूमाल, जनेऊ और दक्षिणा भेंट करता है।

पन्हैर पूजन : पनिहार पूजन यानी वरुण पूजा। विवाह की एक रस्म, जिसमें नववधू से ससुराल में पनिहार की पूजा करवाई जाती है। बाजे-गाजे सहित वधू के साथ कुल की सभी स्त्रियाँ पनिहार पर जाती हैं और पूजन के बाद वधू वहाँ से जलपूर्ण कुम्भ लाती है, जिसे घर की दहलीज पर वर उसके सिर से उठाकर रसोईघर में रखता है। किसी क्षेत्र में नव वधू आँगन में पहुँच कर इस जल को अपने परिजनों को पिलाती है। यह विवाह की एक मुख्य रस्म है।

परसाई : विवाह की एक रस्म जिसमें दूल्हे को बहन द्वारा लाए गए वस्त्र पहनाए जाते हैं तथा मामा द्वारा लाया गया सेहरा और कंगणा आदि डाले जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में वस्त्र भी मामा द्वारा लाए गए ही पहनाए जाते हैं। परसाई की रस्म विवाह का मुख्य आकर्षण होता है। इस अवसर पर गाए जानेवाले गीतों में दुलहन के प्रति दूल्हे के मनोभावों को व्यक्त किया जाता है, यथा–

चिड़ियाँ दे डार-डार मेरेया बन्नेया
बन्ने दा दिल बन्नी उप्पर, तिल्ले वाली साड़ी उप्पर
झुंहड़े दी किनारी उप्पर
चिड़ियाँ दे डार-डार मेरेया बन्नेया...

परसाणा : विवाह सम्बंधी एक कृत्य, जिसमें तेल-उबटन के बाद दूल्हे को स्नान करवा कर नये कपड़े पहनाए जाते हैं। इसे परसाणा कहते हैं।

पराहवड़ : (मं.) पहली बार मायके आई लड़की को ससुराल जाती बार साथ दिए जानेवाले पकवान। दे. बौड़ै पराहुड़ै।

परीहा : दे. पुरशे।

परैणा : (शि.) विवाह का एक प्रकार। इसमें वर पक्ष से वर का पिता, चाचा या ताया अपने पुरोहित और अपने खानदान या इलाके के किसी ज़िम्मेदार व्यक्ति सहित लड़की के घर सुहाग सामग्री लेकर जाते हैं। यह बिना दूल्हे की बारात का संक्षिप्त रूप होता है। तीन, पाँच या सात की विषम संख्या में जानेवाले लोगों को परैणू कहा जाता है। इन्हीं के साथ दुलहन को विदा किया जाता है और दुलहन के भाई-बंधु ज़्यादा संख्या में उसे छोड़ने आते हैं। उन्हें भी **परैणू** कहा जाता है। इसमें विवाह मंडप की लग्न पूजन आदि की रस्में वर के घर में होती हैं। कन्या का भाई उसे वर को सौंपने के लिए साथ आता है। विवाह का यह प्रकार बड़ी बारात की यात्रा के तामझाम और व्यय से बचने के लिए कारगर साबित होता है।

परैणू : (शि.) दे. पचेकीं।

परोएत : पुरोहित। हर कुल का अपना पुरोहित होता है। अपने यजमान के घर छोटे से लेकर बड़ा धार्मिक कार्य करना इसका दायित्व है और दान

लेना अधिकार। यह अपनी यजमानी से बाहर भी कार्य कर सकता है, लेकिन प्राथमिकता अपने यजमान के घर होनेवाले कार्य को दी जाती है।

परोह्णा : दूल्हा-दुलहन की आरती उतारना। कन्या के घर वर को जब लग्न के लिए बुलाया जाता है तो तोरण के पास लड़की की ओर की 'पोह्ई' वर की आरती उतारती है, तब उसे लग्न-बेदी में ले जा कर बैठाया जाता है। इसी तरह बारात जब वापिस लौटती है तो दूल्हा तथा दुलहन को भी परोह्या जाता है।

पांद : दे. पंगत।

पाठा मुंदी : (शि.,सो.) चाँदी की ऐसी अँगूठी जो साधारण अँगूठी से कुछ ज़्यादा चपटी होती है। इसमें कोई नग नहीं होता और बीच से खुली होती है। इसे वर पक्ष की ओर से वधू की 'बरी' में आभूषणों में रख कर साथ ले जाते हैं। लोक विश्वास है कि इसे रखने से आभूषण गुम नहीं होते। इसे विवाह के बाद भी आभूषणों के बीच रखने की प्रथा है।

पाणी निउंदरना : पानी और निमंत्रण को मिलकर बना यह शब्द विवाह के एक कृत्य के लिए प्रयुक्त होता है। यह कृत्य 'सांद' वाले दिन सम्पन्न किया जाता है। इसके अंतर्गत दोनों पक्षों में वर और कन्या के मामा-मामी बावड़ी से पानी लाते हैं। उनके साथ दो अन्य जोड़ियाँ भी होती हैं। तीनों की पत्नियों के पास थाली में लाल और पीले रंग के कुमकुम का घोल होता है। ये सभी जोड़ियाँ परस्पर पल्ला बाँध कर बाजे-गाजे के साथ अन्य जनसमूह सहित बावड़ी के पास जाती हैं। जाते समय मामी स्थान-स्थान पर समतल पत्थर पर लाल कुमकुम से गोल-चक्र बनाती है और अन्य दो स्त्रियाँ इनके बीच में पीले व लाल रंग से बिंदियाँ लगाती हैं। उनके साथ पुरोहित भी जाता है। जल के पास पहुँच कर वरुण देवता की पूजा की जाती है। सभी उपस्थित लोगों में घी-शक्कर बाँटा जाता है। मामा पानी का घड़ा भरता है और सभी उसी प्रकार वापिस लौटते हैं। इस जल से 'सांद' के बाद वर तथा कन्या को स्नान कराया जाता है। पाणी निउंदरना का तात्पर्य वरुण देवता को शादी में आमंत्रित करना है। इस अवसर पर महिलाएँ गीत गाती हैं–

कौण छणकैंदड़ा पाणी भरी लिआया

मामा छणकैंदड़ा पाणी भरी लिआया
देखी वे मामेया तेरी बडियाई
आपू झुहडू जोरू हाट बिकाई
चिलम तमाकुएं हाट बिकाई
गुड़े दे ढेह्लुएं हाट बिकाई...

पायता : (शि.,सि.,सो.) प्रस्थान। वह वस्त्र आदि जो शुभमुहूर्त न मिलने के कारण, यात्रा से पहले गंतव्य स्थान की दिशा में कहीं सुरक्षित रख दिया जाता है और यात्रा के समय उसे वहाँ से उठा लिया जाता है। विवाह अवसर पर यदि वधू प्रवेश के लिए नक्षत्र ठीक न हो तो पहले ही शुभ नक्षत्र में दुलहन का कोई वस्त्र ससुराल भेज दिया जाता है और उसे ही प्रवेश मान लिया जाता है। उस वस्त्र या वस्तु को ही पायता कहा जाता है। मंडी में इसे **पड़थान** कहते हैं।

पालकी : एक तरह की सवारी जिसे आदमी कंधे पर ढोते हैं। दे. खासा।

पिचौंग : (शि.) दे. लधड़ेती।

पिट्ठ-चुक : (चं.) विवाह का एक प्रकार। जनजातीय क्षेत्रों में यह प्रथा है कि जब लड़का-लड़की की आपस में मित्रता हो जाती है तो लड़का लड़की से पूछ लेता है कि वह किस दिन उसके घर आना चाहती है। दिन तय करके किसी मेले या उत्सव में लड़की आ जाती है और लड़का अपने मित्रों के साथ जाकर लड़की को पीठ पर उठाकर ले जाता है। यदि लड़कीवालों को यह शादी मंज़ूर नहीं हो तो लड़केवालों को उन्हें खुश करना पड़ता है। घर पहुँचने के अगले दिन लड़के के माता-पिता व मामा शराब, पैसे व पकवान लेकर लड़कीवालों के घर जाते हैं और शादी के लिए उन्हें मना लेते हैं। जब उनके बच्चा हो जाता है तो लड़की बच्चे व पति के साथ पहली बार अपने मायके जाती है। इस अवसर पर उसके माता-पिता उसे वस्त्राभूषण आदि देते हैं।

पिप्पल़ फिरना : एक वैवाहिक कृत्य। दे. अंबदड़ूनी।

पिलम : (चं.) सगाई। चम्बा के पांगी इलाके में प्रचलित विवाह का प्रथम चरण। सबसे पहले लड़के की ओर से लड़कीवालों से पूछताछ की जाती है। जब वे रिश्ते के लिए हामी भर लेते हैं तो लड़का अपने तीन-चार मित्रों

के साथ लड़की के घर जाता है। वह अपने साथ शराब, ज़ेवर और घी में तली हुई लुच्चियाँ ले जाता है। कन्या के घर पहुँच कर दोनों पक्षवाले मिलकर खाते-पीते हैं। इसके बाद लड़का लड़की को आभूषण दे देता है। लड़के के दोस्त शाम को वापिस आ जाते हैं और लड़का रात को लड़की के घर ठहर जाता है और प्रातःकाल लौट आता है। यह विवाह के वास्तविक संस्कार से भी अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इस दिन से लड़की समाज के नियमानुसार लड़के की पत्नी बन जाती है। उसके पश्चात् लड़का उसके घर आता-जाता रहता है और लड़की गर्भवती हो जाए तो संतान लड़के की मानी जाती है।

पिसवाज : (चं.) दुलहन को पहनाया जानेवाला घाघरा, जिस पर ज़री का काम किया होता है।

पुडुआँ : (सि.) दे. पढ़ूआ।

पुण्य धर्मे : (बि.) विवाह का एक प्रकार। इसमें जिस परिवार से बहू लाई होती है, उस परिवार में अपनी बेटी नहीं ब्याही जाती।

पुतली लिखणी : विवाह की एक रस्म। जब दुलहन ससुराल पहुँचती है तो घर की औरतें बारी-बारी से उसकी छाती पर कुमकुम से खड़ी और आड़ी रेखा खींच कर पुतली बनाती हैं और फिर उसका घूँघट उठा कर मुँह देखती हैं व उसे गहने-पैसे आदि देती हैं। इस मौके पर उपस्थित स्त्रियाँ यह गीत गाती हैं –

सासुए लाड लडाया
जेसे छातीए हाथ पुआया
कोठे ऊपर चापणी
तू देख सासुए बहू आपणी...

पुरशे : (सि.) **चुल्हा नेऊग** वाले परिवार के सदस्यों में जो व्यक्ति किसी कारणवश आयोजन में उपस्थित नहीं हो पाए, उसके लिए घर भेजा जानेवाला भोजन का हिस्सा।

पुरेड़ी : (शि.) मंगल कलश। बारात के स्वागत में लड़की तथा लड़केवाले रास्ते में जो जलपात्र रखते हैं उसे पुरेड़ी कहते हैं। इसमें फूल व भेखल

की डाली आदि रखी होती है। इसे पार करने से पूर्व इसमें उपयुक्त भेंट डालनी होती है, जिसे विवाह के गीत गानेवाली लड़कियाँ आपस में बाँटती हैं। इसे कई जगह **फरुहड़** भी कहते हैं।

पुलटोज : (सि.) विवाह के तीसरे या पाँचवें दिन वधू का माँ-बाप के घर लौटना या वधू का अपने मायके से वापिस ससुराल जाना, इन दोनों स्थितियों को ही पुलटोज कहा जाता है। जब वधू मायके जाती है तो ससुराल से कुछ व्यक्ति उसके साथ जाते हैं और एक रुपया और सवा किलो गेहूँ ले जाते हैं। जब वह वापिस लौटती है तो मायके से कुछ सयाने व्यक्ति उसके ससुराल जाते हैं और उसी प्रकार सवा किलो गेहूँ और एक रुपया साथ ले जाते हैं।

पैंठ : दे. पंगत।

पैर बंदाई : मत्था टेकने यानी चरण वंदना की रस्म। विवाह के पश्चात् वधू प्रथम बार जब ससुराल में प्रवेश करती है तो सगे-सम्बंधियों द्वारा उसकी मुँह दिखाई की जाती है और उपहार आदि भेंट किए जाते हैं। इसके बाद वधू अपनी सास तथा निकट सम्बंधी महिलाओं के पाँव छूकर उन्हें कुछ रुपए भेंट करती है। इस रस्म को पैर-बंदाई कहा जाता है।

पोलियोमी : (चं.) विवाह का एक प्रकार। जब किसी पुरुष की पत्नी मर जाती है, तब उसके बच्चों की देखभाल के लिए उसकी दूसरी शादी की जाती है। इस प्रथा के अनुसार उस व्यक्ति की पत्नी की सगी बहन से उसकी शादी की जाती है, जिसमें विधुर को लड़की के बाप को दो हज़ार रुपए या समझौते के मुताबिक रकम देनी पड़ती है।

पोहई : दूल्हा-दुलहन की आरती उतारनेवाली स्त्री। यह कार्य वर और कन्या की माँ करती है। उसके विधवा होने की स्थिति में नज़दीकी रिश्ते की सधवा स्त्री आरती उतारती है। इसके लिए आरती उतारते समय पहले घाघरा-चोली पहनना आवश्यक होता था। आज घाघरा-चोली के स्थान पर साड़ी का प्रचलन हो गया है। मंडी में दो पोहइयाँ होती हैं। एक घर की सबसे बुज़ुर्ग औरत और दूसरी ननिहाल की तरफ से होती है। ये वैवाहिक रस्मों को मुख्य रूप में निभाती हैं। मंडी के ही कुछ क्षेत्रों में पोहई विवाहित बेटियों में से होती है, जिसे पंडित राशि देखकर निर्धारित करता

है। जब भी वर-वधू ने किसी संस्कार के लिए चलना होता है तो पोह्ई उनके मार्ग में 'ओल़ी' द्वारा पानी छिड़कती हुई चलती है, ताकि मार्ग पवित्र हो जाए। पूजास्थल को पवित्र करने का कार्य भी वही करती है। एक प्रकार से वह विवाह के लिए घरवालों की ओर से मुख्य प्रबंधक है तथा पुरोहित, नाई और घरवालों के बीच महत्त्वपूर्ण कड़ी का कार्य करती है।

पोह्ईपण : (मं.) पोह्ई को आरती उतारने के बदले में दिया जानेवाला नेग। यह पकवान, कपड़े आदि के रूप में दिया जाता है।

पोह्णा : दे. परोह्णा।

फक्की : (चं.) चम्बा के पांगी क्षेत्र में प्रचलित 'मंगवाली' विवाह का दूसरा चरण। 'पिलम' के एक वर्ष के भीतर फक्की का आचार पूरा किया जाता है। लड़का अपने किसी सम्बंधी या अन्य सम्मानित व्यक्ति के साथ लड़की के घर जाता है। वह अपने साथ शराब की बोतलें, लुच्चियाँ और हलवा ले जाता है। कोई-कोई लड़का तो साठ-सत्तर शराब की बोतलें, एक मन लुच्ची और बीस सेर हलवा ले जाता है। रात को दोनों पक्ष इकट्ठे बैठते हैं। इस अवसर पर लड़की का पिता लड़के से 'लुम' माँगता है। लुम में कन्या के सम्बंधियों को कुछ रुपए दिए जाते हैं और यह उन सम्बंधियों पर निर्भर करता है कि वे नकदी अपने लिए रखें या लौटा दें। लुम के आदान-प्रदान के उपरांत लड़के के साथी एक पट्टू में लुच्चियाँ बाँधकर लड़की के मामा को देते हैं, वह उन्हें उपस्थित लोगों में बाँट देता है और पट्टू लड़की को देता है। सुबह भोज होता है और शाम को लड़केवाले वापिस चले जाते हैं।

फरुहड़ : दे. पुरेड़ी।

फरूरी : (चं.) संकल्प। जब वर तथा कन्या को विवाह की वेदी में बैठाया जाता है तो कन्या का पिता वर को अपनी कन्या देने का संकल्प करता है, जिसे फरूरी या **फरेनी** कहा जाता है।

फरेनी : दे. फरूरी।

फलगैरे : (शि.) दे. ज़माणी।

फिरौनी : (चं.) दे. गेरनू-फेरनू।

फेरा घेरा : दे. गेरनू-फेरनू।

फेरे : कन्यादान के समय वर व कन्या द्वारा की जानेवाली अग्नि की परिक्रमा। जब वधू वर के साथ अग्नि के सात फेरे लगाती है, उस समय मंगल गीत गाया जाता है। उस मंगल गीत में वर को भगवान् कृष्ण तथा वधू को गोपिका या राधा कह कर सम्बोधित किया जाता है –

लाऊई दीनी पहल की
नारी मांगुड़ गाईयाँ
गोपी गोकुल काहवाड़ो
कृष्ण विहाऊणै आओ
दीनी दूजी नारी मांगुड़ गाईयाँ...

फेरोणी : (कि.) द्विरागमन। किन्नौर और लाहुल स्पीति में विवाह के दो-तीन दिनों के पश्चात् नवदम्पती, वर का पिता तथा एक बुज़ुर्ग महिला वधू के मायके उनका आशीर्वाद लेने के लिए जाते हैं और अपने घर आने का निमंत्रण देते हैं। दूल्हा-दुलहन को उनके सम्बंधी भी अपने घर खाना खाने के लिए बुलाते हैं। इस प्रकार सात-आठ दिन चलनेवाले इस कार्यक्रम को फेरोणी कहते हैं।

फोगल : (कु.,शि.) वधू का चयन। हिमाचल के अनेक स्थानों में यह मनोरंजक प्रथा है कि विवाह के लिए रिश्ता माँगने लड़केवाले लड़की के घर जाते हैं। माता-पिता कई बार एक से अधिक घरों में एक साथ बातचीत आरम्भ करते हैं। यदि दो-तीन घरों में इसके लिए स्वीकृति मिल जाए तो चुनाव में कठिनाई होती है। निर्णय ग्राम देवता पर छोड़ दिया जाता है। देवमूर्ति के आगे लड़कियों के नामों की अलग-अलग पर्चियाँ रख दी जाती हैं। जिस पर्ची पर मूर्ति पर रखा गया फूल गिरता है, उस पर लिखे गए नामवाली लड़की से ही रिश्ता पक्का किया जाता है।

बंडारा : पकवानों का उपहार। किसी लड़की या लड़के के विवाह में उनके घर आनेवाले सभी निकट सम्बंधी पहले कई तरह के पकवान बनाकर लाते थे, जिसे बंडारा कहा जाता था। 'सांद' वाली शाम को प्रायः वही पकवान खिलाए जाते थे। परंतु अब बंडारे में लोग मिठाई और फल लेकर आते हैं। किसी पर्व या त्योहार के मौके पर भी बहू के मायके से बबरू, भल्ले,

लुच्चियाँ, घेवर, 'सगोती' और लड्डू आदि भेजे जाते हैं। इन्हें भी बंडारा कहा जाता है। ये वस्तुएँ सभी निकट सम्बंधियों में बाँटी जाती हैं। सम्बंधों की निकटता के अनुसार ही इन वस्तुओं की मात्रा का निर्धारण किया जाता है।

बंधालुआना : विधवा विवाह का एक प्रकार। इसमें विधवा औरत अपने पति के भाई को ही पति स्वीकार कर लेती है। पति की मृत्यु की क्रिया के दिन विधवा मृत पति के जेवरों को अलग रख कर उसके भाई द्वारा दिए गए जेवरों को पहनती है। इसका यह अर्थ होता है कि वह उसे पति रूप में स्वीकार करती है। इस अवसर पर बकरा काटा जाता है। विधवा के पितृपक्षवाले इसमें शामिल नहीं होते हैं; किंतु उन्हें 'लाग' रूप में बकरा दिया जाता है।

बगे : शादी के अवसर पर कन्या पक्ष की ओर से वर के विशेष रिश्तेदारों को दिए जानेवाले वस्त्र को बगे कहते हैं।

बचोला : बिचौलिया। लड़के-लड़की की सगाई में मध्यस्थ की भूमिका निभाने वाला व्यक्ति। बचोला वर पक्ष तथा कन्या पक्ष दोनों को जाननेवाला होता है। यह हर प्रकार की ज़िम्मेवारी अपने ऊपर ले कर शादी की बात पक्की करवा लेता है। शादी में लेन-देन सम्बंधी बात दोनों पक्षों की ओर से बचोले के माध्यम से होती है। इस मध्यस्थ को **रबारू** भी कहते हैं।

बटणा : दे. बुटणा।

बट्टा-सट्टा : विवाह का एक प्रकार, जिसमें एक परिवार के भाई-बहन दूसरे परिवार के भाई-बहन के साथ विवाह सम्बंध स्थापित करते हैं। इस विवाह में लड़का जिस घर से अपने लिए पत्नी लाता है, उस घर में अपनी सगी बहन की शादी अपने साले से करवाता है। यदि उसकी अपनी बहन न हो तो ममेरी, फुफेरी या ताए-चाचे की लड़की से साले का विवाह करवाता है।

बत परताणा : (चं.) दे. पत परताणा।

बदले बट्टे : (बि.) दे. बट्टा-सट्टा।

बदाणी : (कु.) दे. गणेश पूजा ब्याह। (शि.) दे. निऊंदर।

बदायगी : विदाई। विदा करते समय दिये जानेवाले रुपये आदि। दुलहन

जब डोली में बैठती है तो उसके निकट सम्बंधी उससे गले मिलते हैं और उसे कुछ पैसे देते हैं। इसी प्रकार शादी के बाद बारात जब लौटती है तो वधू पक्षवाले सभी बारातियों को विदाई के समय वस्त्र, रुपए आदि भेंट करते हैं। इसे बदायगी कहते हैं। यह कहार, बजंत्रियों तथा अन्य कार्यकताओं को भी दी जाती है।

बदौगी : दे. बदायगी।

बरणी : सं. वरणम्। इसका अर्थ दुलहन का चुनाव है। *बरणी* शब्द सगाई के लिए प्रयुक्त होता है। बरणी का अर्थ वरण करने से है। लड़के का पिता अपने बेटे के लिए लड़की पसंद करता है और रिश्ता पक्का करने के उद्देश्य से लड़की के पिता को कुछ राशि देता है। पहले यह अवयस्क वच्चों की स्थिति में होता था। यहाँ तक कि एक साल के बच्चों की भी बरणी होती थी। आज बरणी वयस्कों में भी हो रही है। जब लड़का लड़की को पसंद करता है तो लड़के की ओर से कुछ विशिष्ट व्यक्ति विवाह पक्का करने के उद्देश्य से लड़की के घर जाते हैं और लड़की को सुहाग के गहने देते हैं। शादी के अधिक खर्च से बचने के लिए कुछ क्षेत्रों में लड़की को बरणी के दिन ही घर ले आते हैं और रिश्तेदारों को भोज दे देते हैं। इसे सोलन और शिमला में **रूपना लगाणा** और मंडी में **रूपना चढ़ाणी** कहा जाता है।

बरतण : लोक व्यवहार। रिश्तेदारी में विवाह या मृत्यु के अवसर पर परस्पर सम्बंध सूचक व्यवहार को बरतण कहते हैं। यह शब्द कुछ क्षेत्रों में पुल्लिंग तथा कुछ में स्त्रीलिंग रूप में प्रयुक्त होता है। बरतण में शादी विवाहादि पर घी का लोटा दिया जाता है, जिसे *बोरतणे रे लोटड़े* कहते हैं। कहीं-कहीं बरतण पैसे, गेहूँ, चावल आदि के रूप में दिया जाता है। यह समाज में प्रायः निर्धारित होता है। मृत्यु के अवसर पर दिया जानेवाला बरतण केवल दसवें दिन देते हैं। विशेष परिस्थितियों में यह इससे पहले भी दिया जा सकता है, लेकिन दसवें दिन के बाद इसे नहीं दिया जाता।

शुभ तथा अशुभ अवसर पर लिया जानेवाला बरतण सम्बंधित परिवार लिख कर रखता है, क्योंकि यह ऐसे ही अवसर पर वापिस देना होता है। जिस परिवार के साथ बरतण होता है, उसे तोड़ा नहीं जाता।

यदि यह किसी वक्त टूट जाए तो पुनः उसके साथ बरतण का व्यवहार नहीं होता।

बरतणदार : दे. नेवंदार।

बर-दो : (ला.) मृतात्मा के परलोक गमन का समय। जनजातीय क्षेत्र लाहुल-स्पीति में ऐसी जनधारणा है कि मरने के पश्चात् उनचास दिनों तक मृतात्मा बर-दो की अवस्था में रहती है और इन दिनों अपने पूर्वगृह में भी चक्कर लगाती रहती है। तत्पश्चात् वह परलोक जाती है।

बराड़ फुक : (चं.) विवाह का एक प्रकार। इस प्रकार के विवाह में लड़का-लड़की को उसकी इच्छा से या बिना उसकी इच्छा के अपने घर ले आता है। ऐसा बिना कोई रस्म निभाए चुपचाप किया जाता है। यह स्थिति तभी आती है जब लड़के-लड़की के परिवारवाले विवाह के लिए सहमत न हों। तब लड़का मौका देखकर लड़की को भगाकर अपने साथ ले आता है। माता-पिता को मनाने की कोशिश की जाती है और यदि वे फिर भी न मानें तो लड़का-लड़की जंगल में जाकर बराड़ी (झड़बेरी) की झाड़ी में आग लगा कर उसे ही विवाह मंडप समझकर उसके पाँच या सात फेरे लगाते हैं। प्रदक्षिणा के समय लड़के ने लड़की का दुपट्टा अपनी कमर में बाँधा होता है। उनके विवाह की साक्षी केवल अग्नि ही होती है, फिर भी इस गैरकानूनी विवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। यह वन में रहनेवाले पशुपालकों की सुविधा का विवाह कहा जा सकता है। इसे **जबरी** व **झिड़फुक** विवाह भी कहते हैं।

बरात : दे. जणेत।

बरासुही : (कां.,शि.) दुलहन को शादी में ससुराल की ओर से दिए जानेवाले कपड़े, गहने, शृंगार का सामान आदि। इन सब को एक ट्रंक या अटैची में भरा जाता है और इसे कन्या के घर बारात पहुँचने से पहले पहुँचाया जाता है।

बरियाना : (कु.,चं.) दे. बरीणा।

बरी : विवाह में वर की ओर से कन्या को दिये जानेवाले वस्त्र, गहने आदि बरी कहलाती है। बरी में वस्त्र विषम संख्या में दिये जाने शुभ माने जाते हैं। बरी को एक अटैची में भरा जाता है और इसे उठाने के लिए एक व्यक्ति

नियुक्त किया जाता है, जो दूल्हे के साथ-साथ रहता है। जब दूल्हा कन्या के घर में प्रवेश करता है तो अटैची साथ जाती है। अटैची में रखी वरी 'सिरगुंदी' के समय कन्या पक्ष की ओर सबको दिखाई जाती है।

बरीणा : (कु.,चं.) लड़की का वरण करने पर उसके पिता को दिया जानेवाला धन। हार विवाह के अंतर्गत पुरुष किसी अविवाहित लड़की को किसी मेले या उत्सव से भगा कर अपने साथ लाता है। घर पहुँच कर वे द्वार-पूजा करते हैं। तत्पश्चात् कन्या चूल्हे की पूजा करती है और वे पति-पत्नी माने जाते हैं। कुछ समय बीत जाने पर वरवधू के साथ उसके मायके जाता है और वहाँ वर कुछ रुपये लड़की के माता-पिता को देता है, जिसे बरीणा कहते हैं। कहीं-कहीं कन्या का पिता रिश्ता पक्का होने से पहले ही मुँह माँगा बरीणा लेता है। कन्या में जितनी अधिक विशेषताएँ और वर में कुल, स्वास्थ्य, सौत-पुत्र आदि जितनी कमियाँ हों उतना ही लड़की का मोल बढ़ता है। यदि लड़के के माँ-बाप इसे देने में असमर्थ हों तो शादी की बात रोकी भी जा सकती है।

बरेड़ : सं. वर । ऐसा लड़का या लड़की जिसकी सगाई हो चुकी हो।

बरैड़ी : (कां.) दे. बिलड़ी।

बाँदा : (शि.,चं.) विवाह की एक रस्म। लड़के व लड़की की रिश्ते की बात पक्की होने पर लड़केवाले लड़की के घर चाँदी का सिक्का या अन्य कोई चाँदी का जेवर इस आशय से रख देते हैं कि अब लड़की को अमुक लड़के के लिए विवाह हेतु बाँधा गया है। बाँदा केवल विशेष परिस्थितियों में ही वापिस किया जाता है और इसे वापिस करना लड़के के परिवार का अपमान समझा जाता है और इससे सम्बंधों में दरार पड़ जाती है।

बागठिदपा : (ला.) इसका शाब्दिक अर्थ है–बहू को रास्ता दिखानेवाला। लाहुल-स्पीति में शादी के समय कोई लड़का चुना जाता है जो शादी की रस्म पूरी होने तक दुलहन के साथ रहता है। वह उस लड़की का धर्म भाई बन जाता है तथा जीवनपर्यंत यह रिश्ता कायम रहता है। जब कभी किसी लड़की को चोरी से शादी के लिए उठाया जाता है तो होनेवाले पति के साथ सबसे पहले जो आदमी उस लड़की को उठाने के लिए हाथ लगाता है, वही बागठिदपा बनता है।

बाग-थोन : (ला.) विवाह का प्रकार। लड़केवालों को विवाह के लिए यदि कोई लड़की पसंद आ जाए तो लड़के का पिता या मामा छंग का पात्र लेकर लड़की के पिता के पास जाता है और लड़की का रिश्ता माँगता है। लड़की के माता-पिता लड़की की सहमति से छंग स्वीकार करते हैं। यदि लड़की को यह रिश्ता मंज़ूर न हो तो वे छंग लेने से मना कर देते हैं। छंग स्वीकार कर लेने पर विवाह निश्चित हो जाता है। तब लड़का अपने आठ-दस साथियों के साथ रात के समय लड़की को लेने जाता है, जहाँ घर के नौकर अपना नेग लिए बिना उन्हें अंदर नहीं जाने देते। घर के भीतर प्रवेश करने पर वह अपने साथ लाई गई वस्तुएँ कन्या पक्षवालों को देता है। उसके द्वारा लाई गई रोटी और शराब कन्या पक्षवाले खाते-पीते हैं। फिर विदा करते समय माता-पिता अपनी कन्या को जो भेंट देते हैं, उसमें आठ से दस जोड़े वस्त्रों के, कुछ धनराशि और खाना-पकाने के लिए आवश्यक बर्तन, एक गाय या ज़ो (गाय और याक के मिलाप से पैदा नर पशु), एक-दो टट्टू होते हैं। वर-वधू के घर पहुँचने पर द्वार पर भूत भगाने के लिए देवताओं को मनाया जाता है। एक भेड़ छत के ऊपर से बारात के सामने फेंक दी जाती है जिसे ज़िंदा पकड़ कर लोग तुरंत काटकर टुकड़े-टुकड़े करके खाते हैं। इस बीच लामा मंत्रों का उच्चारण कर भूत भगाने में लगा रहता है। वह काल्पनिक भूत का एक पुतला बनाकर उसे मरोड़ता है। उसके बाद बाराती घर में प्रवेश करते हैं और खूब खाना-पीना होता है।

बागमा कुचे : (ला.) दे. पिड्ठ-चुक।

बाग-लोग् : (ला.) विवाह के पश्चात् बेटी का प्रथम बार मायके लौटना। वह ससुराल से मायके आते हुए अपने साथ किलटे में बागशची (पूरी) भर कर लाती है, जिन्हें सारे कुटुम्बियों में बाँटा जाता है।

बात झुलाई : सेहराबंदी के अवसर पर निभाई जाने वाली एक रस्म। दूल्हा जब वरयात्रा के लिए तैयार हो जाता है, उस समय उसकी बहनें उसे पंखे से या अपने दुपट्टे से पंखा करती हैं और भाई उन्हें नेग देता है। महिलाएँ गीत गाती हैं–

बात झोलो भैणो बात झोलो, अम्मा दे जाये नूँ बात झोलो
बाहें दुखी वीरा बाहें दुखी, बात झुलैंदी दी बाहें दुखी

क्या ऐ लैणा भैणे क्या ऐ लैणा, बात झुलाई दा क्या ऐ लैणा
दूध पीणा वीरा दूध पीणा, भूरिया भैंसी दा दूध पीणा...

बाधड़े पूजणा : (मं.) विवाह की एक रस्म। लड़की की विदाई के बाद कुल की सभी महिलाएँ अपनी कुलदेवी या इष्ट देव का पूजन करती हैं और कन्या की सुख-समृद्धि की कामना करते हुए आमंत्रित देवी-देवता को विदा करती हैं। इस रस्म को बाधड़े पूजणा कहा जाता है।

बिठो पोनो : (कि.) इकरारनामा। यह विवाह से सम्बंधित एक लोकाचार है। यह एक प्रकार का लिखित या अलिखित इकरारनामा होता है, जो वर के माता-पिता की ओर से विवाह के अवसर पर वधू के लिए किया जाता है। इसके अनुसार वे लोग उसे कुछ ऐसी अचल सम्पत्ति देने का वचन देते हैं, जिसे वह किसी प्रकार के संकट की स्थिति में अपना जीवनयापन करने के लिए प्रयोग करने की अधिकारिणी होती है।

बिदाई : कन्या पक्ष में विवाह सम्बंधी सभी संस्कार पूर्ण होने के पश्चात् बारात जब दुलहन को ले कर वापिस लौटती है तो दुलहन सभी सगे-सम्बंधियों से गले मिल कर विदा होती है। मामा उसे गोदी में उठा कर डोली में बिठाता है। उसके साथ उसकी छोटी बहन बैठती है। दुलहन की डोली आगे और दूल्हे का सुखपाल उसके पीछे चलता है। स्त्रियाँ निम्नलिखित विदाई गीत गाती हैं –

हुण परदेसण हुई मेरी धीए तू
अज परदेसण होई
अम्मा जे तेरी धीए छम-छम रोए
बाबा भी साओण घमीर
भाभी जे तेरी धीए छम-छम रोए
भाइयाँ भी नीर भरे
हुण परदेसण हुई मेरी भैणे तू
अज परदेसण होई
संग सहेली तेरी छम-छम रोए
गुडियाँ भी रुण-द्रुण होए
हुण परदेसण हुई मेरी धीए तू
आज परदेसण होई...

बियोशिमिग् : (कि.) अलग होना, विदा होना। किन्नौर क्षेत्र की एक रस्म, जिसमें विवाह के अवसर पर वधू अपने साथ आए हुए बंधुजनों को अपने घर से विदा करती है।

बिरंढी ढालनी : (मं.) दे. बिलड़ी।

बिरड़ी : (बि.,ह.) दे. बिलड़ी।

बिलड़ी : (कां.) कुज्जा। विवाह की एक रस्म जो मातुल पक्ष की ओर से निभाई जाती है। 'सांद' के पश्चात् वर तथा कन्या को अपने-अपने पक्ष में आँगन में नहलाया जाता है। वर व कन्या का मामा समीप की बावली से पानी लाकर 'तोरण' के पास बाहर की ओर मुँह करके खड़ा हो जाता है। फिर पाँच या सात सुहागिनें हाथ में बिलड़ियाँ लेकर मामे से पानी लाती हैं और निम्न प्रकार से गाना गाती हुईं 'नुहांडी' के पास वर व कन्या के पैरों पर डालती जाती हैं–

मंगल गाओ नी सहियो, वीर परौणा आया
छड़ कपड़ेयाँ री अंदी, होर अंदे बाजूबंद
मंगल गाओ नी अड़ियो, वीर परौणा आया
डब्बे भरी गहणे अंदे, होर अंदे बाजूबंद
मंगल गाओ नी सहियो, वीर परौणा आया...

यह क्रिया तीन या पाँच बार दोहराई जाती है। फिर वे कुज्जे पानी से भर कर रख दिए जाते हैं। उसके बाद मामा अपनी बहन, बहनोई और भानजों को वस्त्र देता है। बाद में बहन भी अपने भाई-भाभी को वस्त्र भेंट करती है। बिलड़ी का साधारण अर्थ कुज्जा है। बिलड़ी से पैर धोने के कारण यहाँ इसने रस्म के लिए विशेष अर्थ धारण किया है। बिलड़ी को बिलासपुर तथा हमीरपुर में **बिरड़ी** कहते हैं।

बिश्क : विवाह की एक रस्म। वर कन्या के द्वार पर पहुँच कर कुम्भ की पूजा करता है और इसमें कुछ पैसे डालता है। तब घर के अंदर प्रवेश कर दीवार के साथ बिछाए कम्बल पर बैठने लगता है, परंतु उसकी सालियाँ उसे तब तक उस पर बैठने नहीं देतीं, जब तक वह उन्हें उनका लाग नहीं दे देता।

बिष्टाई : (शि.) विवाह की एक प्रथा, जिसमें वर पक्ष की ओर से कन्या के माता-पिता को विवाह के समय वह राशि दी जाती है जो तब तक कन्या

के पालन-पोषण पर व्यय हुई हो। यह कोई निश्चित राशि नहीं होती, बल्कि इसे लड़की के माता-पिता स्वयं निर्धारित करते हैं।

बिष्टाला : (शि.,सि.) 'होरोंग' निश्चित करनेवाले चुनिंदा लोगों को दोनों पक्षों की ओर से दिए जानेवाले पारिश्रमिक को बिष्टाला कहते हैं। यह निश्चित राशि या बकरे के रूप में दिया जाता है। अन्य आपराधिक मामलों का फैसला करने पर भी बिष्टाला दिया जाता है। शिमला के कुछ क्षेत्रों में वर पक्ष द्वारा कन्या के गाँव में तथा कन्यापक्ष द्वारा वर के गाँव में बिरादरी के किसी परिवार को दी जानेवाली राशि को बिष्टाला कहते हैं। जिन परिवारों को बिष्टाला दिया जाता है, उनमें से वरपक्ष की ओर का परिवार नववधू का मायका और कन्यापक्ष की ओर का परिवार वर का दूसरा घर माना जाता है।

बिष्टु : (शि.) दे. बचोला।

बुच़कु : (कु.) फारसी शब्द बुक़चा के वर्ण विपर्यय से व्युत्पन्न पहाड़ी शब्द बुच़का और लघुता वाचक बुच़कु शब्द खाद्यान्न विशेष की गठरी के लिए प्रयुक्त होता है। इसे तीज-त्योहारों, प्रायः लोहड़ी और शिवरात्रि के अवसर पर विवाहित बेटियों के लिए भेजा जाता है। इसमें कुछ खाद्यान्न जैसे– बबरू, भल्ले, रोट, पोलु आदि होते हैं। इसे लेकर घर का एक आदमी जाता है। बेटी के ससुराल में उसकी अच्छी आवभगत की जाती है और वापसी पर इसे गृहस्थी में उपयोगी कोई वस्तु, यथा–रस्सी, दरांती, मांदरी आदि भेंट में दी जाती है। यदि माता-पिता बुच़कु नहीं भेजते तो बेटी बुरा मानती है। बुच़कु में जितनी अधिक सामग्री होती है, बेटी उतनी ही अधिक चहेती मानी जाती है।

बुज्वातरा : दे. जणेत।

बुटणा : उबटन। विवाह सम्बंधी एक संस्कार जिसमें उबटन लेपन किया जाता है। यह रस्म वर व कन्या दोनों पक्षों में समान रूप से होती है। बाज़ार से मिलनेवाले उबटन की अपेक्षा यहाँ जौ, कच्ची हल्दी, तेल, मैदा, आटा, चंदन, इलायची, मुश्ककपूर आदि से उबटन तैयार किया जाता है। इन पदार्थों से निर्मित उबटन से वर व कन्या के सौंदर्य में निखार आता है। त्वचा सुंदर व चमकदार बनती है। इस अवसर पर भूमि पर गोबर का

लेपन कर उस पर वर व कन्या को छोटी पटड़ी पर बिठा कर बुटणा लगाने की रस्म निभाई जाती है। वर-कन्या की राशि से मेल खाती राशि वाली पाँच या सात भाभियाँ बुटणा लगाने की शुरुआत करती हैं। यह तीन चरणों में मला जाता है तथा बीच में तीन बार स्नान कराया जाता है। तेल-बुटणा मलनेवाली भाभियाँ हास-परिहास के साथ यह मंगलकार्य करती हैं। इसके बाद पहले माँ-बाप, भाई-बहिन, फिर सभी सम्बंधियों द्वारा बारी-बारी से वर-कन्या को बुटणा लगाया जाता है।

बुटणे की खुशबू के कारण वर व कन्या को बुरी नज़र एवं भूत-प्रेत आदि की कुदृष्टि का भय रहता है, अतः स्त्रियाँ मिट्टी से निर्मित ढक्कन में आग लेकर उसमें सरसों डालती हैं। लोकविश्वास है कि इससे उठे धुएँ से भूत-प्रेत का प्रभाव निष्फल होता है। जब दूल्हे को बुटणा लगाया जाता है तो महिलाओं द्वारा गीत गाये जाते हैं—

बाएबा कि बुटणा कणियाँ दा
बाएबा कि मलंदियाँ दो जणियाँ
बाएबा दराणियाँ जठाणियाँ
बाएबा कि बुटणा चौलाँ दा
अज तू हँसी ले लाड़ेया दंदड़ू भरी
कल तू साली रे अगे जाणा
अज तू सोई ले निंदर भरी
कल जाणा सौरे रे देसा...

सिरमौर में बुटणा मलने की अपनी विशिष्ट परम्परा है। यहाँ पाँच-सात सुहागिन स्त्रियाँ ही बुटणा मलती हैं और इस अवसर पर अनेक गीत भी गाती हैं –

बटणा मलिये की नूर चढ़ाइये बटणे री मलिया के जणियाँ
बटणे री मलिया तीन जणियाँ कि बटणा कटोरे दा...

बुड़ज़देई : (कु.) विवाह का एक रूप। इसके अंतर्गत पहले लड़के-लड़की का रिश्ता दोनों ओर से माँ-बाप पक्का करते हैं। इसके बाद लड़का किसी मेले या धार्मिक उत्सव से कन्या को अपने साथ भगा कर लाता है। घर पहुँच कर गृह प्रवेश से पहले उनके ऊपर 'उआर्ना' फेंका जाता है और गृह प्रवेश करवाया जाता है और लड़की को धाठू (सिर पर बाँधा जाने वाला

चौकोर रंगीन वस्त्र) पहनाया जाता है। लडकी वहाँ उपस्थित अपने से बडों के पैर छूती है और वे उसे सामर्थ्यानुसार पैसे देते हैं। इसके बाद परम्परानुसार लड़की लड़के की पत्नी बन जाती है। इसके कुछ दिन बाद वर पक्षवाले लड़की के मायके जाते हैं और उसके माँ-बाप को मना कर उनकी सहमति से अपने घर में एक आयोजन रखते हैं, जिसमें लड़की के सभी रिश्तेदारों को आमंत्रित किया जाता है। वे निश्चित तिथि को बाजे-गाजे के साथ लड़की की ससुराल आते हैं। इनका प्रवेशद्वार पर स्वागत होता है। लड़की सभी को टोपी भेंट करती है और अपने से बड़ों के पैर छूती है। वे उसे उपहार स्वरूप पैसे देते हैं। इसके पश्चात् सभी को सूर व शराब पिलाई जाती है और भोज दिया जाता है।

बेटड़ी मर्द छंदा : (कु.) दे. चुल्ही न्यूंदा।

बेड़ा घोड़ा : (बि., मं.) ब्याह की एक रस्म जो 'पदार्घ' के बाद तोरण के पास निभाई जाती है। इसमें 'पोह्ई' दो थालियों में आटे के बने चौमुखे दीपक जलाकर दोनों हाथों से दूल्हे की आरती उतारती है और उसे जल पिला कर उसकी आँखों में काजल डालती है।

बेदी : यज्ञ इत्यादि के लिए तैयार किया हुआ मंडप। यह बाँस या सेमल के चार डंडों से बनाई जाती है। इस पर लकड़ी की चौखट लगी होती है, जिस पर लकड़ी के बने तोते, मोर, चिड़ियाँ आदि पक्षियों की रंग-बिरंगी आकृतियाँ जड़ी होती हैं। इसे तरखान लोग बनाते हैं। वेदी कन्या का मामा बनवाता है। इस का विवाह में विशेष महत्त्व होता है। दूल्हे के आने के बाद विवाह की सारी रस्में इसी के नीचे होती हैं। इस पर गोटेदार लाल कपड़ा ओढ़ाया जाता है, जिसे बाद में तरखान लेते हैं। इसे बनाने और लगाने के लिए शुभ मुहूर्त देखा जाता है। बेदी में विवाह की रस्में निभाने से पहले मामा द्वारा उसका पूजन किया जाता है। बेदी की ईशान दिशा में षोडश मातृकाओं व सप्त वसुधाराओं की स्थापना की जाती है। इसके मध्य में हवनकुंड स्थापित होता है। इस में दूल्हा-दुलहन द्वारा अग्नि के सात फेरे लिए जाते हैं। इस अवसर पर महिलाएँ गीत गाती हैं।

बेलडिङ् : (कि.) विवाह से सम्बंधित एक महत्त्वपूर्ण रस्म। यह बारात के लौटने के दूसरे दिन निभाई जाती है। इसमें घर की छत पर सभी

सम्बंधियों की उपस्थिति में वधू के समक्ष वर तथा उसके सभी भाइयों को एक पंक्ति में बैठाकर उन सभी के सिर पर मामा द्वारा लाई गई पगडियाँ बाँधी जाती हैं, इस रस्म को पाग लिक्शिमु (पगडी पहनना) कहा जाता है। यह प्रतीकात्मक रूप से इस बात का संकेत होता है कि इस विवाह में सभी सहोदर भाई समान रूप से साँझीदार हैं। पुराने ज़माने में किन्नौर के समाज में विधिवत् विवाह केवल बड़े भाई का ही होता था तथा अन्य भाई सामाजिक स्वीकृति से ही उसमें साँझीदार होते थे। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि बेलडिङ् की रस्म परिवार में होनेवाले सर्वप्रथम विवाह के अवसर पर ही की जाती है, अन्यों पर नहीं। इससे यह भी माना जा सकता है कि भाइयों में पृथक्-पृथक् विवाह की प्रथा का विकास बाद में हुआ। इस तरह बेलडिङ् बहुपति प्रथा का सूचक है।

बैंठ : दे. पंगत।

बोइदाल : (शि., सि.) पत्नी जब रूठ कर मायके चली जाती है तो उसे मना कर वापिस बुलाने के लिए ससुरालवाले अपने निकट सम्बंध के एक-दो व्यक्तियों को भेजते हैं, जिन्हें बोइदाल कहते हैं।

बोटणा : (कु.) दे. बुटणा।

बोटी : रसोइया। 'धाम' पकानेवाले को बोटी कहते हैं। बोटी ब्राह्मण जाति के होते हैं। धाम के आयोजन से काफी पहले बोटी को इस कार्य के लिए 'साई' दे दी जाती है, जो उनके पारिश्रमिक में शामिल नहीं होती। धामवाले दिन बोटी सब्जी बाँटने के पात्र को प्रमुख रिश्तेदारों के आगे रखकर उनसे इनाम प्राप्त करते हैं, जिससे विशेष सम्बंधियों की जानकारी भी हो जाती है और बोटी भी खुश हो जाते हैं।

बोठे : (शि.) जब दुलहन विदा होती है तो उसके साथ मायके की ओर से कुछ पुरुष तथा महिलाएँ भी वर के घर तक जाते हैं। ये इसके निकट सम्बंधी होते हैं। इनमें से पाँच-सात को छोड़ कर शेष सभी प्रीतिभोज के बाद वापिस चले जाते हैं। जो पीछे रह जाते हैं, उन्हें बोठे कहा जाता है। ये तीसरे या पाँचवें दिन 'दुणोज़' में दुलहन के साथ वापिस आते हैं।

बौड़े पराहुड़ै : (कु.) शादी के बाद वधू को जब पंडित से शुभ मुहूर्त निकलवा कर पहली बार मायके भेजा जाता है तो उसके सास-ससुर बौड़े (माश के

बने बड़े) और भटुरू (खमीर डाल कर बनाई गई मोटी व तली रोटियाँ) बहू के साथ भेजते हैं। वर-वधू के साथ ससुराल की ओर से तीन, पाँच या सात की संख्या में व्यक्ति भी भेजे जाते हैं। वर पक्ष की ओर से भेजी गई खाद्य सामग्री को लड़की के मायके में सगे-सम्बंधियों में बाँटा जाता है। जब वह मायके से वापिस आती है तो लड़की के माँ-बाप तथा उसके सगे-सम्बंधी, जिनमें बौड़े व रोटी बाँटी होती है, वे भी उसी प्रकार बौड़े व तली रोटियाँ साथ भेजते हैं, जिन्हें वर पक्ष के यहाँ सगोत्रियों व वधू के साथ मायके गये व्यक्तियों में बाँटा जाता है।

बौरौ : दे. चड़।

ब्याह गणना : विवाह की एक रस्म। सगाई के पश्चात् वर पक्षवाले विवाह की तिथि निकलवाते हैं। सिरमौर क्षेत्र में विवाह से लगभग एक सप्ताह अथवा दस दिन पहले वर और कन्या पक्षवाले अपने ब्राह्मण, नाई तथा गाँव के कुछ मुख्य व्यक्तियों के साथ दोनों पक्षों के गाँवों के बीच के रास्ते में किसी जलाशय के पास एकत्र हो कर विवाह की तिथि और बारात आदि की संख्या निश्चित करते हैं। दे. कार पूजणा।

ब्याह गीत : विवाह के अवसर पर गाए जानेवाले गीत। ये गीत पूर्णतः लोक रचनाएँ होती हैं। वर पक्ष की ओर गाए जानेवाले मंगल गीतों को 'घोड़ी' और वधू पक्ष की ओर गाए जानेवाले गीतों को 'सुहाग' कहते हैं। शेष गीत लगभग दोनों ओर ही गाए जाते हैं। इन गीतों में मंडल बनाने, पानी लाने, वस्त्र पहनने, मेहमानों का स्वागत करने, यज्ञोपवीत धारण करने, तेल-बटणे व मेहंदी लगाने, देहरी पूजन, फेरी लगाने जैसी विभिन्न रस्मों के समय गाए जानेवाले गीत होते हैं। इनका गायन मुख्यतः लड़कियों या स्त्रियों की टोलियाँ करती हैं।

ब्याहतड़ु : दे. जणेती।

ब्याह शोधणा : विवाह के लिए मास, तिथि आदि का विचार करना। सगाई के पश्चात् दोनों पक्षवाले पुरोहित के पास जाकर विवाह में किए जानेवाले सभी कृत्यों जैसे–समिधा, रंगना-सिलना-दलना, समूह्त, सांद, सेहराबंदी आदि से ले कर वधू प्रवेश तक का मुहूर्त निकलवाते हैं।

ब्याहु लुआड़ : (कि.) विवाह की एक रस्म। किन्नौर में जब बारात लौट आती है, उस रात यह रस्म होती है। मुख्य लामा मंत्र जाप आदि करता है। प्रभु से नवविवाहित युगल के सुखी रहने की कामना करता है।

भत्तमुंदरना : दे. भात बान्हणा।

भड़ग्गा : (ऊ.) दे. गोत कनाला। एक वैवाहिक कृत्य। दुलहन ब्याह कर जब ससुराल आती है तो अंतिम धाम में उसे दूल्हे के गोत्र में मिलाया जाता है। इस अवसर पर सास बहू के मुँह में तथा बहू सास के मुँह में भात के कौर डालती है। इस मौके पर उपस्थित महिलाएँ गीत गाती हैं –

अंगणे साडे बैह जा कुड़मा दिए बेटिए
साह्ड़ी पत्तल़ लै लै कुड़मा दिए बेटिए
साह्ड़ा खाणा खा लै कुड़मा दिए बेटिए
साह्ड़े गोते रल़जा कुड़मा दिए बेटिए...

मनाणी : (ऊ.) दे. बगे।

भरहड़ : (मं.) दे. पुरेड़ी।

भाजी : विशेष अवसरों पर सगे-सम्बंधियों को दिया जानेवाला खाद्यान्न। प्रथा के अनुसार विवाह के अवसर पर कन्या की विदाई के समय वस्त्र आदि के साथ मिठाई भी दी जाती है। यह मिठाई वर पक्ष के यहाँ निकट सम्बंधियों में बाँटी जाती है। जब वधू विवाह के पश्चात् अपने मायके जाती है तो ससुरालवाले भी साथ में भाजी देते हैं जो कन्या पक्ष के यहाँ नाते-रिश्तेदारों में वितरित की जाती है।

भात : पके हुए चावल। मंडी ज़िला में यह शब्द 'धाम' के लिए प्रयुक्त होता है। यह किसी भी शुभ अवसर जैसे–विवाह, मँगणी, मुंडन, जनेऊ, जन्मदिन, ब्रह्मभोज और अब सेवानिवृत्ति पर भी खिलाया जाता है।

भात खोल्हणा : दे. भात बान्हणा।

भात बान्हणा : विवाह के अवसर पर जब बारातियों को भोजन के लिए बैठाया जाता है तो भोजन आरम्भ करने से पहले ही कन्या पक्ष की कोई स्त्री या पुरुष ज्ञान का छंद बोल कर भात बाँध देते हैं और बाराती तब तक भोजन नहीं कर सकते, जब तक वे उस छंद का उत्तर नहीं दे देते। भात

बान्हणे का एक छंद है–

बन्हाँ साजन तुआडियाँ पत्तलाँ समेत डूनेयाँ नाल
बन्हाँ साजन तुआडे चौला नो समेत गलासाँ नाल
बन्हाँ साजन तुआडी दाला नो समेत मंडेयाँ नाल
बन्हाँ साजन तुआडी पगड़िया जोरू दे दुपट्टे नाल...

भात खाने से रोकने के लिए बोले गए उस छंद का उत्तर बारातियों में से कोई बुज़ुर्ग या पंडित देता है और उसके बाद ही भात खाना आरम्भ किया जाता है। इसे **भात खोल्हणा** कहते हैं। पहले लोग बारात में ऐसे ज्ञानी व्यक्तियों को ज़रूर ले जाते थे, जिन्हें छंद का जवाब देना आता था। परंतु अब यह रिवाज़ धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। भात खोल्हणे का एक छंद है –

बड़्डो बग्गड़ बट्टो बाण
छुट्टी पत्तल लग्गो खाण...

भानजो संभाउणो : (शि.) विवाह सम्बंधी एक रस्म। भानजे का विवाह निश्चित होने के बाद मामे शादी से कुछ दिन पूर्व भानजे को अपने घर बुलाते हैं और अच्छे-अच्छे पकवान खिलाते हैं। इसके पश्चात् उसे 'किलटी' के साथ अपने घर से विदा करते हैं और सामर्थ्यानुसार उसे कपड़े, धाम का पूरा सामान तथा बकरा भी दिया जाता है। नाते-रिश्तेदार तथा बिरादरीवाले भी साथ में पकवान भेजते हैं।

मियागड़ा : विवाह गीत। ये गीत विवाह से कुछ दिन पूर्व प्रतिदिन प्रातःकाल में वर पक्ष के घर में गाये जाते हैं–

ऊची पिपली कागा बोले गुजरिया
शगुन मनाया ओ परमेसर जाणे...

मियूंडा : नेग। विवाह के कुशल-मंगल पूर्वक सम्पन्न होने के उपरांत 'धम्मेतड़' को वस्त्र, गाय, पैसे आदि के रूप में नेग दिया जाता है। इसी प्रकार दर्जी, नाई आदि को भी मियूंडा देने की प्रथा है।

भूहड़ा पाणा : (कु.,मं.) आग जलाना। बारात के वधू पक्ष के घर के समीप पहुँचने पर वधू पक्ष के किशोर और जवान रास्ते में किसी जगह सूखे घास और लकड़ियों के ढेर को आग लगाकर बारात का रास्ता रोकते हैं। बाराती

उसे बुझाने का प्रयास करते हैं और कन्या पक्ष के लोग इसका प्रतिरोध करते हैं। यह परम्परा दोनों पक्षों के बीच शक्ति परीक्षण और प्रतिस्पर्धा का प्रतीक थी, जो अब लुप्त होती जा रही है। आग जलाने के पीछे एक भावना यह भी रहती है कि यदि वर पक्ष के साथ कोई अदृश्य दुष्टात्मा आ जाए तो अग्निदेव उसे नष्ट कर दें।

भोंदरी : (शि.) विवाह की एक प्रथा। पुराने समय में लड़की के विवाह पर पिता को रियासत के लिए एक रुपया देना पड़ता था और यदि विवाह लड़के का हो तो साठ सेर आटा तथा चावल, एक सेर नमक, एक सेर शक्कर तथा डेढ़ सेर घी और बकरा खरीदने के लिए एक रुपया देना पड़ता था। यदि लड़के का पिता रियासत में नौकरी पर होता तो उसे बकरा देना पड़ता था। बदले में रियासत की ओर से उसे पगड़ी दी जाती थी।

भ्यांडू : भाई बाँट। परिवार में जब दो या तीन भाइयों का विवाह हो जाता है और वे अलग-अलग रहना शुरू कर देते हैं तो छोटे भाई की शादी के लिए मदद के रूप में जो राशि सब भाइयों के लिए निश्चित की जाती है, वह भ्यांडू कहलाती है।

मँगणी : मँगनी। यह सगाई का एक रूप है। इसमें रिश्ता लड़की की ओर से देखा जाता है। अच्छा लड़का मिलने पर उसके माँ-बाप से बात की जाती है। अगर वे मान जाएँ तो लड़की का पिता अपने पुरोहित को लड़के के घर भेजता है। लड़के और लड़की की कुंडली का मिलान किया जाता है। यदि ग्रह मिल जाते हैं तो अगली व्यवस्था की जाती है। कुल पुरोहित शुभ दिन देख कर लड़की के घर एक चाँदी का सिक्का, लाल सिंदूर, जनेऊ, मेवे, सुपारी, कुमकुम, गुड़ और मिठाई ले जाता है। वहाँ पहुँच कर वह इसे लड़के के पिता को दे देता है और गणेश पूजा करके उसके माथे में तिलक लगाता है। लड़का जनेऊ धारण करता है। पड़ोस की औरतें इकट्ठी हो कर मंगल गीत गाती हैं। मित्रों, इकट्ठे हुए लोगों, रिश्तेदारों और पड़ोसियों में गुड़ और मिठाई बाँटी जाती है। अमीर घरों में बाजेवालों को भी बुलाया जाता है और लोगों को भोज दिया जाता है। अब लड़के की ओर से शुभ दिन देख कर कुल पुरोहित और लड़के का पिता लड़की के लिए कुछ आभूषण ले जाते हैं। गहने लड़की को भेंट किए जाते हैं। इसे

रूपना ढालणी भी कहते हैं और यह 'टिक्का' संस्कार को पूर्ण करता है। पुरोहित तब अगले संस्कारों के लिए शुभ दिन और समय निश्चित करता है।

मंगलचूंडा : मंगलीक। ऐसा बालक जिसकी कुंडली में मंगलग्रह प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, अष्टम या द्वादश स्थान में आए। ऐसे बालक या बालिका का विवाह मंगलीक के साथ ही होता है, अन्यथा जिसके ग्रह कमज़ोर हों उसकी मृत्यु होने की आशंका रहती है। विवाह के लिए कुंडली मिलान के समय सर्वप्रथम यही देखा जाता है कि लड़का-लड़की दोनों मंगलीक हैं या नहीं। दोनों के मंगलीक होने की स्थिति में ही उनका विवाह सम्भव होता है।

मंगवाली : (चं.) विवाह का एक प्रकार। इस विवाह की तीन अवस्थाएँ हैं– पिलम, फक्की और छक्की। दे. पिलम, फक्की, छक्की।

मंजरौली : (मं.) दूर्वा, कुशा या मूँज घास का बना गोल-चक्र जिसे लाल रंग की डोरी से कस कर बनाया जाता है। 'सांद' के अवसर पर वर और कन्या के सिर पर मंजरौली रख कर तेल डालने की रस्म पूरी की जाती है। इस समय लाल डोरी का कंगन उनकी कलाई में बाँधा जाता है। महिलाएँ गीत गाती हैं –

हत्था नी अझैं तैं बन्ह्या कंगणा ब्राह्मणा
सिरे चढ़ी मंजरौली...

इस गीत में पुरोहित को सचेत किया जा रहा है कि वर और कन्या के सिर पर मंजरौली रख दी गई है, पर उसने अभी तक कंगन नहीं बाँधा है। मंत्रोच्चार के साथ ब्राह्मण कंगणा बाँध देता है। मंजरौली का उपयोग मुंडन तथा यज्ञोपवीत के अवसर पर भी किया जाता है। इसे प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में **मुंजडैहा** (मं.), **चड़ी** (शि.), **मंझेटा**, **मुंजमाला** कहते हैं।

मंझेटा : दे. मंजरौली।

मंडुआ : सं. मंडप। यह ऊपर से छाया हुआ पर चारों ओर से खुला बैठने का स्थान है। मंडप से व्युत्पन्न मंडुआ शब्द विवाह के अवसर पर बेदी के ऊपर डोरी से बाँधा गया मंगल सूचक चौकोर वस्त्र विशेष है, जिसे गोटे-सितारों से जड़ा होता है। इसके केंद्र में एक डोरी लटकाई जाती है, जिसमें

एक सिक्का और सात कसोरियाँ व रंगीन कपड़ों के बने फूल पिरोए होते हैं। वेदी पूजा में इसकी विधिवत् पूजा होती है और पूजा के दौरान यथा समय इसमें पैसे डाले जाते हैं। कन्या पक्ष की ओर लगे मंडुए को विदाई के समय वर खोल कर जाता है। वर पक्ष की ओर भी पूजा स्थल में मंडुआ लगाया जाता है। विवाह सम्बंधी सारी रस्में दोनों ओर मंडुए के नीचे निभाई जाती हैं। विवाह के अतिरिक्त अन्य धार्मिक कृत्यों में भी मंडुए का प्रयोग होता है। कार्य सम्पन्न होने पर मंडुआ, इसमें डाले गए पैसे सहित कुल पुरोहित को दिया जाता है।

मइने : (शि.,सो.,ह.) दे. मायने।

मऊक : (बि.) विदाई से कुछ समय पूर्व माता द्वारा कन्या को खिलाया जाने वाला मिष्टान्न।

मखतल : 'रीत' प्रथा के अंतर्गत दूसरे पति द्वारा पहले पति को हरज़ाने के तौर पर दी जानेवाली राशि।

मखरी : मंगल सूत्र। यह 'मौली' का बना होता है, जिसमें अभिमंत्रित सरसों डालकर बनाई गई पोटली बाँधी गई होती है। इसे दूल्हा वेदी में दुलहन के गले में बाँधता है। आजकल इसका स्थान सोने की तार में गुंथे काले मोती के मंगलसूत्र ने ले लिया है। इसके पीछे दुलहन को नज़र न लगने की धारणा है।

मजोमी : (कि.) हिन्दी शब्द मंझ (बीच) तथा भोटी शब्द मी (आदमी) के संयोग से बने शब्द मजोमी का शाब्दिक अर्थ मध्यस्थ या झगड़ों आदि का फैसला करनेवाला आदमी है। जनजातीय क्षेत्र विशेषतः किन्नौर में यह शब्द विवाह के मध्यस्थ के लिए प्रयोग होता है। कुछ क्षेत्रों में इसे **बिष्टु** भी कहा जाता है। जब 'जनेकड़्' विवाह की बात चल रही हो और लड़की और लड़के के माता-पिता के बीच विवाह के लिए सहमति हो तो विवाह की आगामी कार्यवाही के लिए एक या दो व्यक्तियों की सहायता ली जाती है, जिन्हें मजोमी कहा जाता है। ये प्रायः लड़के के मामों में से होते हैं। ये लड़के के माँ-बाप की ओर से घंटी (स्थानीय शराब) की बोतल और कुछ नकद, जो प्रायः पाँच रुपये होते हैं, लेकर लड़की के माता-पिता के घर जाते हैं और विवाह की पूरी बात करते हैं। सोने का एक आभूषण प्रायः

अँगूठी और पाँच रुपए देकर विवाह सम्बध की पुष्टि करत हैं।

मजोमी का काम यही समाप्त नही होता। उन्हें विवाह के दिन भी बारात के साथ जाना होता है, ताकि कहीं ज़रूरत पड़े तो पूर्व समझौते की शर्तों का वे साक्ष्य प्रस्तुत करें। यदि बारातवाली शादी न हो तो भी उन्हें उन के साथ ज़रूर जाना पड़ता है, जो लड़की को लाने जाते हैं।

मठुन्नी : (मं.) सं. मुष्टिका। मुट्ठी से बनाई गई आटे की पिन्नी। इसमें दूर्वा-कुमकुम लगाकर दूल्हा-दुलहन की आरती उतारते समय इनके दायें-बायें फेंकते हैं।

मदसूईया : दे. सरीत।

मनिहार : (चं.) विवाह की एक रस्म। कन्यादान के पश्चात् जब कन्या को वेदी में से उठा दिया जाता है और केवल वर द्वारा ही जो संस्कार किया जाता है, उसे मनिहार कहते हैं। इस समय वर के दायें पाँव के अँगूठे के पास सुपारी सहित लाल डोरी रखी जाती है, जिसे वह अपनी कटार से स्पर्श करता है। तत्पश्चात् पुरोहित डोरी को उठाकर वर के सिर के ऊपर से एड़ियों के पास फेंकता है और तलवों के नीचे से गुज़ारते हुए उठा कर उसका एक सिरा वर की पगड़ी से बाँध देता है और दूसरा सिरा दुलहन की माँ को पकड़ाता है। वह मनिहार से पकड़कर वर को 'कौहरा' के पास ले जाती है, जहाँ कामदेव की प्रतिमा स्थापित होती है।

मसोई : बोटी का सहायक। यह 'धाम' पकाने के लिए मसाले आदि कूटता है और बोटी को सामान देने में मदद करता है।

मांडा : (सि.) विवाह के अवसर पर मुख्य द्वार पर टाँगी जानेवाली एक प्रकार की माला। इसे दूल्हे द्वारा कन्या पक्ष में जाकर वहाँ विशेष मुहूर्त में छुआ जाता है। यह विवाह का महत्त्वपूर्ण अंग है। मांडा आटे से बनाई टिकियों को रंग-बिरंगे कपड़ों के टुकड़ों सहित एक डोरी में बाँधकर तैयार किया जाता है, जिसे दुलहन के घर के मुख्य द्वार पर काफी ऊँचा टाँगा जाता है, जिसे सरलता से छुआ नहीं जा सकता। विशेष मुहूर्त में बाराती दूल्हे को किसी एक व्यक्ति के कंधे पर उठाये 'मांडा' स्थल की ओर गाजे-बाजे के साथ ले जाते हैं। वहाँ द्वार पर टाँगे इस मांडे को दूल्हा अपनी तलवार से छूता है। ग्राम-बालाएँ इस अवसर पर ऊपर छत पर से पुष्प-वृष्टि करती

हैं, जबकि कुछ शरारती लड़कियाँ पीसी हुई मिर्चें फेंककर अपनी शरारत प्रदर्शित करती हैं। हाँ, कुछ कन्याएँ इस अवसर पर मज़ाक स्वरूप मांडा की डोर खींचकर इसे और अधिक ऊँचाई तक खींच ले जाती हैं, जिससे दूल्हे को इसे छू पाना असम्भव हो जाता है। तब बारात पक्ष से कोई भी व्यक्ति या दूल्हा स्वयं इन कन्याओं को कुछ रुपये देता है, तभी ये कन्याएँ इसे छोड़ती हैं व दूल्हा इस उपक्रम को पूरा करता है।

मांदला : (मं.)तराशा हुआ एक चौकोर पत्थर। इसकी स्थापना आँगन के एक ओर तुलसी चौरे के पास होती है। विवाह के समय सबसे पहले पूजन यहीं से आरम्भ होता है और नववधू के आगमन पर चुल्ह-पूजा के बाद उससे मांदला की पूजा करवाई जाती है।

माधपरक : शहद, दूध, घी, शक्कर और दही को मिलाकर तैयार किया गया एक द्रव्य विशेष, जो लग्न में बैठने से पूर्व वर को पिलाया जाता है।

मान : दूसरी शादी करने के लिए पति द्वारा अपनी पहली पत्नी को मान के रूप में दी जानेवाली राशि। यह राशि वह इसलिए देता है ताकि वह उसके दूसरे विवाह के लिए राज़ी हो जाए। इसके अतिरिक्त वह उसे कुछ और पैसे इसलिए देता है कि वह दूसरी पत्नी को अपने पति के कमरे में आने की इजाज़त दे। पहली पत्नी यदि बालबच्चेदार हो तो आम तौर पर वह घर की चाबियाँ अपने पास रखती है और मुख्य पत्नी कहलाती है तथा दूसरी पत्नी को वह अपने पति के साथ उसी घर में रहने की अनुमति देती है।

मान्ना : दे. मायना।

मायना : (मं.) मायन। मायन का अर्थ विवाह में मातृका पूजन का दिन है। मायन से पहाड़ी में मायना शब्द बना है, जो यहाँ कुछ अर्थ भेद से प्रयुक्त हुआ है। यह विवाह का एक कृत्य है। विवाह में बारात प्रस्थान के समय वर के हाथों में धान का एक दोना दिया जाता है, जिसमें दीपक भी जला होता है। दूल्हा इसे अपने घर की ओर पीछे को फेंकता है। इसी प्रकार दुलहन भी विदाई के बाद इसे अपने मायके की ओर फेंकती है। यह धन-धान्य की पूर्णता और समृद्धि के लिए किया जाता है। इसे ध्वनि भेद से **मान्ना** भी कहा जाता है।

मायने : (शि., सो.) विवाह में मातुल पक्ष की ओर से दी जानेवाली धाम। यह वर व कन्या दोनों पक्षों की ओर 'सांद' वाले दिन दी जाती है। जब विवाह की तिथि निश्चित हो जाती है तो देवी-देवताओं को निमंत्रण देने के बाद प्रथम निमंत्रण मातुल पक्ष को दिया जाता है। विवाह में सम्मिलित होने के लिए मामा अपनी ओर से अपने सगे-सम्बंधियों व मित्रों को निमंत्रण देता है। निश्चित तिथि को शुभ मुहूर्त में ये सभी इकट्ठे होकर विवाहवाले घर में आते हैं। वहाँ पहुँचने से पहले इनका स्वागत बाजे-गाजे के साथ किया जाता है। यहाँ से इन्हें ढोल-ढमाके के साथ उत्सववाले घर की ओर ले जाया जाता है, जहाँ मुख्य द्वार के पास वर-कन्या की माँ सबको बारी-बारी से टीका लगा कर तथा कुछ भेंट दे कर उनका स्वागत करती है। इसे मायने री बैली भी कहा जाता है। कुल्लू में इसे **ज़ागरा** कहते हैं।

मावड़ी : (सि.) सिरमौर में फेरे के समय दुलहन के मुँह पर बाँधा जानेवाला चमकीला पीले रंग का कागज़। जब सात फेरे समाप्त हो जाते हैं तो दूल्हा-दुलहन के मुँह पर से सेहरा और मावड़ी दुलहन की माँ खोलती है, जिनको लेकर दूल्हा अपनी सास के पाँव छूता है।

माहना : एक प्रकार का प्रीतिभोज, जो बिरादरी अथवा पड़ोसियों द्वारा विवाह वाले परिवार के सभी सदस्यों को विवाह से पहले खिलाया जाता है।

माहौक : (मं.) मधुपर्क। लग्न के बाद दुलहन की माँ द्वारा दूल्हे को घेवर या मिठाई खिलाई जाती है, इसे माहौक कहते हैं। पुराने समय में जब मिठाई का प्रचलन नहीं था तो इसके स्थान पर मधु खिलाया जाता था। अर्थ विस्तार से घेवर या किसी भी मिठाई के लिए माहौक शब्द प्रचलित है।

मिलणी : नये बननेवाले समधियों का मिलन। विवाह की एक रस्म। लोकाचारों के अवसर पर किया जानेवाला एक कृत्य, जिसके अंतर्गत अपने मान्य सम्बंधियों को उपहार या धनराशि भेंट की जाती है। जब वर पक्षवालों की बारात कन्या पक्षवालों के घर पहुँचती है तो सबसे पहले मिलणी की रस्म होती है, जिसमें समधी परस्पर गले मिलते हैं। दोनों पक्षों के पुरोहित पहले दोनों वंशों का सुंदर श्लोकों में गुणगान करते हैं। फिर धरती पर लाल वस्त्र बिछाकर दोनों समधी धीरे-धीरे चलकर उस वस्त्र पर अपने पैर रखकर एक-दूसरे को हार डालकर गले मिलते हैं। कन्या का

भाई वर के भाई से और कन्या का मामा वर के मामा से गले मिलते हैं। इस अवसर पर कन्या पक्षवाले इन्हें वस्त्र या रुपए भेंट करते हैं। इस तरह तीन-पाँच-सात की संख्या में मिलणी करवाई जाती है। मिलणी करनेवाले परस्पर 'उआरंडा' करते हैं और ये पैसे नाई को दिए जाते हैं।

सिरमौर में जब वर पक्षवाले 'टट्ठे' में पहुँच जाते हैं तो कन्या पक्षवाले वहाँ जाते हैं। सबसे आगे नाई एक थाल में नारियल और एक वस्त्र में कुछ चावल व शक्कर लेकर चलता है। उसके पीछे पुरोहित और उसके बाद अन्य लोग चलते हैं। वहाँ पर दोनों पक्ष आपस में कोई बात नहीं करते। दोनों ओर के पुरोहित पूजन करते हैं और उसके बाद दूल्हा-दुलहन के पिता खड़े होकर गले मिलते हैं। दुलहन का पिता श्रद्धानुसार कुछ उपहार दूल्हे के पिता को देता है। उसके पश्चात् अन्य सम्बंधियों की मिलणी भी इसी प्रकार होती है।

मुंजडैहा : (मं.) दे. मंजरौली।

मुंजमाला : दे. मंजरौली।

मुंदणा : दे. भात बान्हणा।

मुँह घुड़वाई : दे. मुँह दिखाई।

मुँह दिखाई : विवाह की एक रस्म। लग्न बेदी के बीच में एक रस्म मुँह दिखाई की निभाई जाती है, जिसमें वर-वधू एक-दूसरे का मुँह देखते हैं। दोनों के ऊपर पर्दा किया जाता है। वर वधू का घूँघट उठाता है और दोनों एक-दूसरे को देखते हैं। इस अवसर पर वर वधू को कोई आभूषण देता है। विवाह के पश्चात् वधू जब अपनी ससुराल आती है तो वहाँ भी मुँह-दिखाई होती है। सभी सगे-सम्बंधी नववधू का घूँघट उठाकर मुँह देखते हैं और उसे कुछ भेंट देते हैं।

मुँह दृष्टा : दे. मुँह दिखाई।

मुड़ापुली : (शि.) विवाह की एक रस्म, जिसमें विवाह के तीसरे दिन दुलहन के माँ-बाप अपनी लड़की से मिलने उसके ससुराल जाते हैं और अपने साथ खाने-पीने की सामग्री भी ले जाते हैं।

मुद्याली ब्याह : पांगी में प्रचलित विवाह का एक रूप। यह दूसरा विवाह

है। यदि किसी महिला की अपने पति के साथ न निभ रही हो तो वह उसे तलाक दे कर या बिना तलाक दिए ही दूसरे पुरुष के साथ शादी कर लेती है। इसे मुद्याली शादी कहा जाता है। ऐसी स्थिति में उसका दूसरा पति पूर्व पति को मुद्रा देता है। विवाह विच्छेद बुजुर्गों की पंचायत या सभा में किया जाता है। सम्बंध विच्छेद तिनका तोड़ कर किया जाता है।

मुशतर्का ब्याह : बहुपति विवाह। हिमाचल प्रदेश के लाहुल, सिरमौर, बुशहर, सिराज, पांगी तथा किन्नौर में मुशतर्का विवाह की प्रथा प्रचलित है। इसमें एक स्त्री के दो या अधिक पति होते हैं, परंतु सभी सगे भाई होते हैं। विवाह सबसे बड़े भाई का ही होता है, परंतु छोटे भाइयों को भी पति कहलाने का अधिकार प्राप्त होता है। बहुपति प्रथा से उत्पन्न संतानों की सभी भाई संयुक्त रूप से देखभाल करते हैं। श्रम विभाजन इस प्रथा का मुख्य कारण रहा है। इसके अनुसार प्रत्येक भाई में काम इस तरह बँटा रहता है कि वे महीनों घर से बाहर ही रहते हैं, जैसे—एक भाई यदि चरवाहा है तो वह छह-छह मास तक भेड़-बकरियों के साथ जंगलों में रहता है। दूसरा भाई यदि नौकरी करता है तो जलवायु की कठोरता व आवागमन के साधनों की कमी के कारण महीनों घर नहीं आ पाता। इन परिस्थितियों में संयुक्त परिवार के रूप में रहने से इस तरह के विवाह में परिवार का विघटन नहीं होता। परंतु अब यह प्रथा धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। यहाँ के समाज में बहुपति प्रथा का सुखद पहलू यह भी रहा कि एक कुटुंब रहने से कृषियोग्य भूमि तथा अचल सम्पत्ति का बंटवारा नहीं होता।

मुसाहणी : (चं.) विवाह में लड़की को दिया जानेवाला शगुन।

मूंडन्वाही : (मं.) यह लोक संस्कार विवाह से जुड़ा है। एक बड़े तरमैहड़ा (पानी गर्म करने का चौड़े मुँह वाला तांबे का पात्र) अथवा देगची में पानी गर्म किया जाता है। वर तथा कन्या पक्ष में दोनों ओर परिवार की सभी औरतें इससे स्नान करती हैं। मूंडन्वाही के लिए कुलपुरोहित द्वारा मुहूर्त देखा जाता है। इस अवसर पर आस-पड़ोस की तथा सम्बंधी महिलाएँ शामिल होती हैं। उपस्थित स्त्रियाँ सम्बंधित लोकगीत गाती हैं। इस लोक-संस्कार में तेल डालने की रस्म भी निभाई जाती है। सभी स्त्रियाँ सिर में तेल लगाकर अपने बाल संवारती हैं और इसके पश्चात् वे सुंदर वस्त्रों तथा

आभूषणों से स्वय को अलंकृत करती हैं।

मेहंदी : एक पौधा जिसकी पत्तियाँ तीज-त्योहारों में हाथ-पैर रंगने के काम आती हैं। विवाह में मेहंदी की रस्म में वर व वधू के हाथ-पैर में इसे लगाया जाता है। शादी का शुभारम्भ इसी से होता है। इसमें पुरोहित की आवश्यकता नहीं होती। इस अवसर पर आस-पड़ोस तथा निकट सम्बंध की महिलाएँ इकट्ठी होती हैं। यह रस्म वर व कन्या दोनों पक्षों में होती है। सर्वप्रथम छोटी कन्या को मेहंदी लगाई जाती है, उसके बाद यह दूल्हा या होनेवाली दुलहन को लगाई जाती है, फिर उपस्थित सभी महिलाएँ अपने हाथ-पैरों में मेहंदी लगाती हैं। इसे सुहाग का प्रतीक माना जाता है। लेकिन विवाह अवसर पर इसे शगुन के तौर पर वर को भी लगाया जाता है। महिलाएँ गीत गाती हैं--

मेहंदी-मेहंदी आखदी जी, मेहंदी बिकदी बाज़ार, मेहंदीए रौंगलिए
पैहलिया-पैड़िया चढ़ी गए जी, दूजिया पुजदे पैर, मेहंदीए रौंगलिए
मेहंदी-मेहंदी आखदी जी, मेहंदी बिकदी बाज़ार, मेहंदीए रौंगलिए
दूजिया पैड़िया चढ़ी गए जी, तीजिया पुजदे पैर, मेहंदीए रौंगलिए...

मोटला : (कु.,शि.) विवाह के लिए आमंत्रित रिश्तेदार सामर्थ्यानुसार अपने साथ पाँच सेर तक धान-गेहूँ आदि लाते हैं, जिसे मोटला कहा जाता है। यदि विवाह लड़के का हो तो इसके अतिरिक्त शगुन के रूप में कुछ लिया-दिया नहीं जाता। परंतु लड़की के विवाह पर लड़की को उपहार स्वरूप बर्तन, पैसे, वस्त्र आदि भी दिए जाते हैं।

मौली : सं. मौलि। संस्कृत में यह शब्द सिर के मध्य भाग में ऊपर की ओर बाँधे गए केशों के लिए प्रयुक्त होता रहा। बाद में यह मुकुट के लिए प्रयुक्त होने लगा। आगे चलकर यही शब्द लाल रंग के उस धागे के लिए प्रयोग में आने लगा जिसे महिलाएँ अपने केशों को व्यवस्थित करने के लिए बाँधती हैं अथवा जिस मंगलमय धागे को धार्मिक कृत्यों में बैठने का अधिकारी बनने के लिए हाथ में रक्षा-सूत्र के रूप में बाँधा जाता है। अब मौली शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त लाल धागे के लिए ही किया जाता है।

म्हाखड़ी : (मं.) दे. मखरी।

यङखुग : विवाह सम्बंधी एक कृत्य। जनजातीय क्षेत्र में बौद्ध समुदाय द्वारा कन्या की विदाई के बाद एक या दो लामाओं द्वारा एक संक्षिप्त-सी पूजा करवाई जाती है, जिसे यङखुग कहते हैं। इसमें कन्या की श्री को वापिस अपने गृह में स्थापित किया जाता है, अन्यथा गृहश्री कन्या के साथ चली जाती है, ऐसा माना जाता है।

रंगजौल : दे. लिंजड़ी।

रखोरड़ : ऐसी विधवा जिसने सजातीय पुरुष से पुनर्विवाह किया हो, रखोरड़ कहलाती है।

रच्छी : (मं.) रेखा। जल, गोबर व लाल रंग की मिट्टी को घोल कर 'नुहांडी' तथा 'मांदला' से 'कौहरा' तक जो रेखा लगाई जाती है, उसे रच्छी कहते हैं।

रच्छी-लाँघणा : दूल्हा या दुलहन को जब नहाने के लिए 'नुहांडी' तक ले जाया जाता है तो वे 'रच्छी' पर से चलते हैं और नहाने के बाद 'कौहरा' के पास आकर तीन बार इस रच्छी को आर-पार लाँघते हैं, ताकि भीड़ में किसी दूसरे आदमी के लाँघने की शंका न रहे। इसी कृत्य को रच्छी-लाँघणा कहा जाता है।

रतईं फिरना : (मं.) पीपल परिक्रमा। विवाह अवसर पर निभाई जानेवाली एक रस्म। विदाई के बाद जब वधू वर के साथ अपनी ससुराल आ जाती है तो वहाँ धामवाले दिन उनसे पीपल या अन्य वृक्षों की परिक्रमा करवाई जाती है। पीपल की प्रदक्षिणा का उद्देश्य मंगलमय जीवन की कामना होता है। इस भाव को निम्न गीत से व्यक्त किया जाता है–

फिरी-घिरी फेरियाँ लैंदी, इस ब्रह्मे ते
क्या कुछ मंगदी आई ? दुध मंगदी आई
फिरी-घिरी फेरियाँ लैंदी, इस ब्रह्मे ते
क्या कुछ मंगदी आई ?, पुत्त मंगदी आई
फिरी-घिरी फेरियाँ लैंदी, इस ब्रह्मे ते
क्या कुछ मंगदी आई ? धन मंगदी आई, अन्न मंगदी आई.

रबार : (चं.) रिश्ता। शादी की बात जो लड़के या लड़की की ओर से की जाए, जैसे–फलां लड़की के लिए फलां लड़के का रबार आया है।

रबारू : दे. बचोला।

रसयालू : (ह.) वह स्थान जहाँ धाम के लिए भोजन पकाया जाता है।

रांग बाहणो : (कु.,शि.) विवाह की एक रस्म। जब बारात कन्या पक्ष के यहाँ पहुँचती है तो बारातियों के स्वागत के बाद वर को पूजा-कक्ष के द्वार पर खड़ा किया जाता है। कन्या का पिता कन्या को गोद में लेकर दहलीज पर बैठता है। दूल्हे के हाथ में मौली का एक सिरा थमाया जाता है, जिसका दूसरा सिरा कन्या पकड़ती है। दूल्हा इस डोरी में से सोने की अँगूठी दुलहन की ओर सरकाता है और वह उसे पहन लेती है। रांग बाहणो के बाद दूल्हे की पूजा की जाती है और उसे पूजा-कक्ष में प्रवेश कराया जाता है।

राँध : (कु.)दे. रीत।

राछी : (मं.) गोटेदार सुंदर रूमाल जिसे 'पोह्ई' दूल्हा-दुलहन की आरती उतारते समय अपने सिर पर रखती है।

राज़ीनामा : सहमति। कहीं इस शब्द का अर्थ-रूढ़ हो जाने से *विवाह विच्छेद सम्बंधी सहमति* हो गया है।

रीढ़ा : गोटा-किनारी से जड़ा दो-ढाई मीटर का लाल दुपट्टा। इसे शादी में दुलहन को पहनाया जाता है, जो वर पक्ष की ओर से 'बरी' में आता है। शादी के अतिरिक्त वधू इसे अन्य मांगलिक अवसरों पर भी पहनती है। इस दुपट्टे को संभाल कर रखा जाता है, क्योंकि लोक धारणा है कि इस पर जादू-टोने का भय रहता है।

रीत : विवाह की एक प्रथा। इसमें वर पक्ष की ओर से कन्या के माता-पिता को विवाह के समय प्रतीक रूप में वह राशि दी जाती है, जो कन्या के पालन-पोषण पर व्यय हुई हो। द्वितीय विवाह की दशा में यह राशि दूसरे पति द्वारा वधू के प्रथम पति को हरजाने के रूप में दी जाती है। विधवा हो जाने की दशा में पति के निकट सम्बंधी को रीत दे कर वह किसी दूसरे की पत्नी बन सकती है। रीत के लिए दो बातों का होना आवश्यक होता है। एक तो पति द्वारा पत्नी को छोड़ने की सहमति तथा दूसरी पहले पति को रीत की उचित धन राशि का दिया जाना। यह कार्य सम्बंधित स्त्री का

पिता, भाई अथवा कोई निकट सम्बंधी पहले ही पूरा कर के पति से सम्बंध विच्छेद की लिखत बनवा लेता है। ज्यों ही यह लिखत बन जाती है, स्त्री किसी दूसरे के यहाँ पुनः पत्नी बन कर जाने के लिए स्वतंत्र हो जाती है। इस प्रकार पति भी पहली पत्नी की रीत लेकर उसे छोड़ देने पर दूसरा विवाह करने अथवा रीत देकर दूसरी पत्नी लाने के लिए स्वतंत्र हो जाता है। पति तो पहली पत्नी के होते हुए भी दूसरा विवाह कर लेता है अथवा रीत देकर दूसरी पत्नी ला सकता है। परंतु पत्नी ऐसा नहीं कर सकती। वह एक पति के होते हुए दूसरा विवाह नहीं कर सकती जब तक रीत देकर लिखित सहमति प्राप्त न कर ले।

रीत देते समय यदि पत्नी गर्भवती हो तो गर्भस्थ शिशु पहले पति का होता है। यदि पति चाहे तो ऐसे शिशु को छोड़ सकता है। ऐसी दशा में होनेवाला पति ही भावी संतान का पिता समझा जाता है। ऐसी स्त्री की रीत की राशि बढ़ जाती है। रीत देकर जानेवाली पत्नी के पहले उत्पन्न बच्चे पूर्व पति के पास ही रहते हैं।

रूपना चढ़ाणी : (मं.) दे. बरणी।

रूपना ढालणी : (मं.) दे. मँगणी।

रूपना लगाणा : (शि.) दे. बरणी।

रे-खनपा : (ला.) वर के लिए कन्या को माँगनेवाले। अपने पुत्र के लिए कन्या का चुनाव करने के बाद लड़की का हाथ माँगने के लिए दो-तीन पुरुष भेजे जाते हैं, जो वयस्क और समझदार हों। इन्हें रे-खनपा कहा जाता है। इनकी जिम्मेदारी लड़की के प्रति जीवन भर रहती है, अतः इन्हें दुनमी अर्थात् सम्मुख पुरुष भी कहते हैं, जो गवाह होते हैं। जब कभी लड़की को कोई समस्या हो तो इन्हें भी बड़ी समस्या को सुलझाने के लिए बुलाया जाता है।

रोका : दे. ढाका।

लकड़ पुड़ाई : (कां.) दे. समिधा।

लखणोती : (कां.) दे. लग्नोतरी।

लगचार : लग्न आचार। विवाह में दोनों पक्षों के यहाँ जितने भी संस्कार सम्पन्न होते हैं, उन्हें लगचार कहा जाता है।

लगन : लग्न। वर और कन्या के पाणिग्रहण का निश्चित समय ही लग्न है, जिसमें अग्नि के सात फेरे होते हैं और पिता बेटी का हाथ वर के हाथ में सौंप देता है। वर को लग्न में बैठाने से पूर्व नहलाने की प्रथा है। वधू का भाई अपने बहनोई को धोती, यज्ञोपवीत और अँगूठी इसी समय प्रदान करता है। इस अवसर पर महिलाएँ गीत गाती हैं –

धोतिया लेई दौड़ साल़ेया, गूठिया लेई दौड़
श्रीरंग लग्नां जो आया, श्रीरंग लग्नां जो आया
श्रीरंग देखणे दा चा, श्रीरंग देखणे दा चा...

वधू का भाई नहा कर आए बहनोई के पाँव के दाहिने अँगूठे को धागे से बाँधता है और उसे पकड़कर वर को लग्न-वेदी में लाता है। दुलहन वर को जयमाला पहनाती है। वर भी दुलहन को जयमाला पहनाता है और लग्न की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। लग्नों में दुलहन के माता-पिता और पुरोहित बैठते हैं, जबकि वर के साथ केवल पुरोहित ही बैठता है। इस अवसर पर स्त्रियाँ गीत गाती हैं :–

बाह्र आ मेरी श्यामसुंदरी काह्न लग्नां जो आया
किह्यां औआं मेरे आप स्वामी बाबे ते सरमानियाँ
जे बाबे तैं सरमानिऐं तां मेरी लग्न बेला जांदी ऐ
बाबें मेरे वचन कित्ते, बचनां दी बधियो हुण आई ऐं...

लग्नोतरी : लग्नपत्रिका। वह पत्र जिसमें विवाह कर्म की तिथि व समय आदि का उल्लेख होता है। यह कृत्य विवाह से लगभग एक मास पूर्व किया जाता है। कन्या पक्षवाले कुल पुरोहित से एक पत्र लिखवाकर वरपक्ष के घर भेजते हैं। इसमें विवाह की तिथि, बारात पहुँचने, मिलनी, लग्न आदि के समय का उल्लेख होता है। इसे लेकर पंडित, लड़की का भाई, मामा या अन्य कोई निकट सम्बंधी जाता है। इसके साथ चाँदी की कटोरी में सिंदूर तथा दूर्वा आदि रख कर भेजी जाती है। आजकल लग्नोतरी के साथ लड़के को सूट, मेवे, मिठाई आदि भी भेजते हैं।

सगाई के बाद मुहूर्त निकालकर लग्नोतरी लिखी जाती है। इसके पश्चात् वर तथा कन्या पक्षवालों के लिए किसी मृतक के घर जाना वर्जित रहता है, चाहे वह कितना ही सगा क्यों न हो। यदि परिवार के किसी

व्यक्ति की अचानक मृत्यु हो जाती है तो भी विवाह मुहूर्त नहीं टाला जाता। ऐसी दशा में वर या कन्या पक्ष के ननिहाल अथवा अन्य सम्बंधी के घर से विवाह सम्पन्न कर दिया जाता है। विवाह से पहले या विवाह के समय लग्नपत्रिका का खो जाना उस दम्पती के लिए अपशकुन माना जाता है।

लजोड़ू : (शि.) लग्न वेदी में बना दुलहन का भाई। वह लड़के की तरफ से होता है। यह भाईचारा लड़की के मायके में वेदी पर लगाया जाता है। वह लड़की को सूट और पैसे देता है। लड़की के माँ-बाप इस धर्म भाई को दोगुना पैसा लौटाते हैं और लड़की एक सौ एक रुपए देती है। लजोड़ू 'गेरनू-फेरनू' में अपनी धर्म बहन के साथ आता है और फिर साथ ही वापिस जाता है।

लटरू : (मं.) पालकी और खासे के वे मोटे डंडे, जिन्हें कहार अपने कंधे पर रख कर पालकी या खासा उठाते हैं।

लटिंगर : दे. पड़जंद्रा।

लड़हौज : (सि.) विवाह की एक रस्म। 'कार पूजणा' अर्थात् विवाह की तिथि निश्चित होने के पश्चात् वर और कन्या को गाँव के सब लोग और निकट सम्बंधी बारी-बारी से अपने यहाँ भोजन के लिए निमंत्रित करना आरम्भ कर देते हैं। उन्हें खूब घी खिलाया जाता है। इसे लड़हौज देना कहा जाता है। यह क्रम उस दिन तक चलता है जिस दिन बारात आती है।

लड़ाकसी : (कु.) दे. पड़जंद्रा।

लधड़ेती : विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से जो व्यक्ति कन्या के साथ वर पक्ष के घर जाते हैं, उन्हें लधड़ेती कहा जाता है। कहीं उन्हें **लाधड़ू** भी कहते हैं। शिमला के कुछ क्षेत्रों में इन्हें **परैणू** कहा जाता है। बेटी की ससुराल में इनका उचित आदर-सत्कार किया जाता है।

लाग : नेग, नियत धन और कोई वस्तु जो विवाहादि के अवसर पर भाट, नाई, ब्राह्मणों आदि को दिया जाता है। दूल्हा-दुलहन को तेल डालते समय उनके सिर के ऊपर से जो वारना किया जाता है, वे पैसे पुरोहित के होते हैं। कई स्थानों पर इन पैसों को नाई लेता है। दूल्हे की हजामत करने के बाद उसे जब स्नान कराया जाता है तो उस समय दूल्हे द्वारा पहने गए

वस्त्र भी नाई ले लेता है। खाना बनाने के लिए जो 'चर' खोदी जाती है उसका 'लाग' काम करनेवाले लेते हैं। 'छड़याह' वाले दिन भी चर बंद करने का लाग काम करनेवाले ही लेते हैं। रसोइया जब चर में प्रथम बार अग्नि प्रज्वलित करता है तो उसे लाग दिया जाता है, इसमें कुछ चावल, गुड़ या शक्कर, मौली, कुमकुम तथा सवा रुपया दिया जाता है। दुलहन के घर रसोइया बारातियों से और दूल्हे के घर 'लधड़ेतियों' से लाग लेता है। पालकी के कहार गाँव की सीमा लाँघने पर, रास्ते में पहली बार कोई बावड़ी मिलने पर, नदी या खड्ड पार करने पर लाग लेते हैं। इसी तरह बजंत्री, लुहार, दाई आदि को लाग देना पड़ता है। विभिन्न क्षेत्रों में इन रस्मों में अंतर रहता है।

लाड़सू : (शि.) वर का प्रतिनिधि। यह वर का छोटा भाई या निकट सम्बंधी हो सकता है। शिमला के कुछ भीतरी पहाड़ी क्षेत्रों में विवाह के अवसर पर वर बारात लेकर नहीं जाता, अपितु लाड़सू ही वर की कटार और कन्या को दिए जानेवाले वस्त्राभूषणों की विधिवत् पूजा के बाद इन्हें लेकर कन्या के घर के लिए पाँच, नौ या ग्यारह व्यक्तियों के साथ प्रस्थान करता है। उस समय बंदूक दागी जाती है। कन्या के घर पर लाड़सू व अन्य लोगों का भव्य स्वागत किया जाता है। धी-ध्याइणें थाली में पुष्प, धूप तथा टीका लेकर सभी को टीका लगाकर फूल मालाएँ पहनाती हैं। **लाहणी** गाई जाती हैं। बाराती शगुन के तौर पर उनकी थालियों में पैसे डालते हैं। विश्राम करने के पश्चात् जब अन्य लोग भोजन करते हैं तो लड़कियाँ लाड़सू से वर की कटार छीनने की कोशिश में रहती हैं। यदि वे सफल हो जाएँ तो उसे वापिस लेने के लिए उन्हें मुँह माँगी राशि देनी पड़ती है। अतः लाड़सू व उसके साथी कटार को लेकर पूरे चौकस रहते हैं; क्योंकि कटार के बिना विवाह की रस्में पूरी नहीं की जा सकतीं।

भोजन के बाद बारातियों के डेरे में जाकर लड़कियाँ उनसे मेहंदी माँगती हैं फिर लाड़सू और कन्या के हाथ में मेहंदी लगाई जाती है। अगले दिन कन्या को सुहाग लगाते समय आभूषण व सौंदर्य प्रसाधन भी लाड़सू से ही माँगे जाते हैं। यदि सामान में किसी चीज़ की कमी रह जाए तो इसके लिए उन्हें दंड भरना पड़ता है। कन्या के तैयार हो जाने पर सभी

परिवारजन व सम्बंधी उसे टीका लगाते हैं और सामर्थ्यानुसार रुपए तथा उपहार देते हैं। उसके बाद लाड़सू और अन्य बारातियों के साथ कन्या को ससुराल की ओर विदा किया जाता है।

लाणा लगाना : (बि.) दे. लायाँ।

लाधड़ू : दे. लधड़ेती।

लायाँ : उपहार सामग्री। विवाह के समय कन्या को परिवार के लोग, निकट सम्बंधी और सखी-सहेलियाँ जो वस्तुएँ उपहार स्वरूप देती हैं, उन्हें लायाँ कहा जाता है। दहेज के रूप में माता-पिता द्वारा दी गई प्रत्येक वस्तु परम्परा से कन्या की सम्पत्ति होती है, जबकि लायाँ का सामान प्रायः आम इस्तेमाल का ही होता है।

लावाँ : एक वैवाहिक कृत्य। इसके अंतर्गत वर और कन्या अग्नि के चारों ओर फेरे लगाते हैं। परिक्रमा के समय वर और कन्या 'लिंजड़ी' से बंधे रहते हैं। अग्नि की सात परिक्रमाएँ की जाती हैं, जिनमें से चार फेरों में दूल्हा आगे चलता है और तीन में दुलहन। अंतिम फेरे से पहले पुरोहित दूल्हा व दुलहन को विवाह बंधन की सात शर्तें सुनाता है। इसके पश्चात् दुलहन दूल्हे की बायीं ओर बैठती है।

लाहणी : (शि.) दे. सिठणी।

लिंगचोला : लंबा चोगा। यह पीले रंग का होता है और विवाह में मामा की ओर से दिया जाता है। इसे कन्या लग्न में पहनती है। इसके अंदर कोई वस्त्र नहीं पहना जाता। इसे शुद्धि का प्रतीक माना जाता है। बारात की वापसी के अगले दिन ससुराल में दुलहन को इसे पहना कर आँगन में नहलाया जाता है। इसके बाद दूल्हा इसे आँगन से छत पर फेंकता है, जिसे दूल्हे की बहनें उठाती हैं।

लिंजड़ी : यह लाल या पीले रंग का वस्त्र है, जिसे शादी में फेरों के समय कन्या की ओढ़नी में गाँठ लगा कर वर के हाथ में थमा दिया जाता है या उसके कंधे पर रखा जाता है। लिंजड़ी तब बाँधी जाती है जब वेदी में लड़की को लड़के की दाहिनी ओर से उठाकर बायीं तरफ बिठाया जाता है और दूल्हा आगे और दुलहन उसके पीछे फेरे लगाती है। ग्रंथि-बंधन की

इस स्थिति को अटूट सम्बंध का प्रतीक माना जाता है। विवाह के अतिरिक्त कुछ अन्य भी ऐसे मांगलिक कार्य होते हैं, जिन्हें पति-पत्नी एक साथ निभाते हैं। ऐसे अवसरों पर भी वे परस्पर लिंजड़ी से अपने आप को जोड़े रहते हैं। हमीरपुर, कांगड़ा आदि शिवालिक क्षेत्र में लिंजड़ी को **रंगजौल** तथा चम्बा में **जौल़** कहते हैं। इसे पीपल पूजन पर ही उतारा जाता है।

लुआह : बारात जब वधू के घर जा रही होती है तो मार्ग में विश्राम के लिए वर को किसी के घर बैठाया जाता है। इस ठहराव को लुआह कहते हैं। जिस घर में वर कुछ समय के लिए रुकता है, भविष्य में वह घर वर और उसके परिवार का सम्बंधी बन जाता है। उस परिवार को प्रत्येक आयोजन में आमंत्रित किया जाता है। बारात जब वापिस आती है तो डोली किसी पवित्र पेड़ के नीचे या किसी के घर पर उतारी जाती है। इसे भी लुआह कहते हैं। जिस घर में या जिस पेड़ के नीचे डोली रखी जाती है, वह घर या स्थान वधू के लिए धर्म का मायका बन जाता है। इस घर के लोग वधू को बेटी और वर को जामाता की भाँति तमोल़ आदि लगाते हैं।

लुढ़ैक : सगाई के पश्चात् जब शादी की तिथि निश्चित हो जाती है तो शादी के लगभग पंद्रह-बीस दिन पूर्व लड़की के सगे-सम्बंधी लड़की को परिवार सहित या अकेले बारी-बारी से अपने घर भोजन पर बुलाते हैं। इसी तरह लड़के को भी उसके रिश्तेदार भोजन कराते हैं। कभी-कभी रिश्तेदार उन्हें अपने घर न बुलाकर, कुछ खाद्यान्न तैयार करके उन के घर में ही दे जाते हैं। इस प्रथा का एक लाभ यह होता है कि विवाहवालों को घर में खाना पकाने के झंझट से मुक्ति मिल जाती है और वे विवाह सम्बंधी कार्य निश्चित होकर कर सकते हैं।

लुम : लड़के और लड़की का रिश्ता पक्का होने पर कन्या के सम्बंधियों को शगुन के तौर पर दिए जानेवाले रुपये। इसे सम्बंधित व्यक्ति चाहे तो अपने पास रख सकता है और चाहे तो लौटा सकता है।

लुहाई : दे. बिदाई।

लेई-छेई : समिधा। 'सांद' के लिए शुभ मुहूर्त में आम की लकड़ी काटी जाती है और 'मौल़ी' से बाँध कर तोरण से बाहर रखी जाती है। पंडित इसे हवन

से पहले सुहागिन स्त्री से मंगवाता है, जिसे स्त्रियाँ निम्नलिखित माँगलिक गीत गाते हुए लाती हैं –

यह कौन सुहागण तेरिया लेइया छेइया आई
माई सुहागण तेरिया लेइया छेइया आई...

ग्रहों की शांति के उद्‌देश्य से पंडित इससे हवन करता है। लोक विश्वास है कि इससे उठे धुएँ के साथ वर तथा कन्या का रूप निखर आता है।

लोटड़े : (सि.) यह लोटे का ही स्थानीय नाम है, किंतु सांस्कृतिक परिदृश्य में यह तब अपना स्थान बनाता है, जब इसका प्रयोग विवाह, कथा जैसे अवसरों पर घी भरकर रिश्तेदारी में ले जाने के लिए किया जाता है। लोटके में जहाँ सिर्फ मुश्किल से डेढ़-दो सौ ग्राम घी आता है वहीं लोटड़े में पौना किलो तक घी आता है। रिश्तेदारी में जहाँ इसे देना अनिवार्य होता है, वहाँ कहा जाता है–*मेरे लागो तेथे लोटड़े।*

वारडा : दे. उआरंडा।

वारना : दे. उआरंडा।

विनायक पूजा : तेल-उबटन की रस्म के बाद वर की माता सारा श्रृंगार कर 'झामण' के नीचे ऊखल के पास आती है। पुरोहित द्वारा ऊखल में गणेश की पूजा करवाई जाती है। पूजा के बाद गणेश को यथास्थान रखकर ऊखल में वर की माता सहित सात सुहागिनों द्वारा धान कूटा जाता है। यह अन्न नाई को दिया जाता है। यह रस्म ग्रह शांति, विघ्न बाधा के निवारण हेतु निभाई जाती है।

शंखभरी : (शि., सि.) शाखोच्चार। विवाह मंडप में पाणिग्रहण के अवसर पर वर तथा कन्या-पक्ष के पुरोहितों द्वारा अपने-अपने यजमान की कुलीनता के ज्ञापनार्थ किया जानेवाला उनकी वंशावली का बखान। इस बखान के लिए ब्राह्मणों को धन दिया जाता है। ब्राह्मणों के यहाँ इस रस्म को शाखोच्चार कहा जाता है, वहीं कनैत लोग इसे शंखभरी कहते हैं। जिन क्षेत्रों में बहुपति प्रथा है वहाँ इस रस्म में विवाह मंडप में केवल एक पति का ही उपस्थित होना अनिवार्य होता है।

शटाम ब्याह : विवाह का एक प्रकार, जिसमें शटाम यानी स्टैंप सहित कोर्ट पेपर पर विवाह की सहमति लिखी जाती है। यह मनु प्राजापत्य विवाह का ही रूप है। कन्या का पिता लड़के-लड़की को सामने बैठा कर उन से प्रेमपूर्वक अपनी गृहस्थी चलाने, निभाने का प्रण करवाता है। शटाम ब्याह में लड़की-लड़के के साथ ही अभिभावकों की भी सहमति होती है। इस विवाह में दोनों की प्रतिज्ञाएँ एक सरकारी कागज़ पर लिपिबद्ध कर ली जाती हैं। कुछ लोग तो ब्रह्म आदि विवाह भी शटाम लिख कर करते हैं। परंतु शटाम विवाह उसे कहते हैं, जिसमें स्टैंप पेपर पर प्रतिज्ञा पत्र लिखना आवश्यक होता है। दोनों ओर के सम्बंधी व्यक्ति व दो-चार मध्यस्थ मिल कर शर्तें निश्चित करते हैं। शर्तों में चल या अचल संपत्ति जो दी जाती है, अकारण मार-पीट और सौत लाने की स्थिति में अपने पिता के घर रहकर पति से खर्च लेने का तथा संतान न होने पर पति को दूसरे विवाह की इजाज़त आदि का लिखित विवरण होता है। वर और वधू के लिए यह शटाम सब से महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, जिसे दोनों एक-दूसरे से छिपा कर रखते हैं।

शांत : (सि.) दे. सांद।

शांत बदलनी : शांति पूजा। विवाह के उपरांत नवदम्पती के क्रूर ग्रहों की शांति के लिए महामृत्युंजय के जाप या सत्यनारायण की कथा करवाई जाती है। यह पूजा विवाह के एक वर्ष के भीतर सम्पन्न करवाई जाती है।

शिङ्ग टकाश : (कि.) विवाह विच्छेद। यदि पति अपनी पत्नी पर अत्याचार करे, पतित या व्यभिचारी हो जाए तो पत्नी उसे छोड़ सकती है। ऐसे में एक विशेष संस्कार किया जाता है, जिसे किन्नौरी भाषा में शिङ्ग टकाश कहते हैं। प्रतिष्ठित लोगों की एक पंचायत बुलाई जाती है। पति-पत्नी पंचायत में अपनी-अपनी शिकायत प्रस्तुत करते हैं। पंच दोनों को इकट्ठा रहने की सलाह देते हैं। यदि वे मान जाएँ तो ठीक, अन्यथा एक लकड़ी लेकर उसका एक सिरा स्त्री के हाथ में तथा दूसरा पुरुष के हाथ में पकड़ा दिया जाता है। तब वह लकड़ी बीच से तोड़ दी जाती है। इस तरह विवाह विच्छेद की रस्म होती है। इसके बाद वे दूसरा विवाह कर सकते हैं। इसे शिङ् टक्शिङ् तथा शिङ् टग्-टग् भी कहा जाता है।

शिठणे : (सि.) दे. सिठणी।

शेशोंग : (सि.) सास-ससुर द्वारा जामाता को दी गई भेंट। विवाह के बाद जब लड़की पति के साथ अपने मायके आती है तो लड़का रिश्ते में लगनेवाली सासों के पाँव छू कर उनके माँवों पर कुछ धनराशि रखता है। सासें उस राशि को दोगुना करके दामाद को लौटाती हैं तथा उसके दाम्पत्य जीवन के सुखद होने का आशीर्वाद देती हैं। सगे सास-ससुर तो अपने दामाद को वस्त्र व आभूषण आदि भी प्रदान करते हैं। दामाद को दी गई यह भेंट ही शेशोंग कहलाती है।

शोराड़े : ससुराल। इससे जामाता का लगाव जगत प्रसिद्ध है। सिरमौर में लोकोक्ति प्रसिद्ध है–*शोराड़े पोइदा जवांय रो भूराड़े पोइदा बोलद पोड़े न जांदे,* अर्थात् ससुराल में बसे दामाद को वहाँ से निकालना उतना ही कठिन है, जितना भूसे के ढेर से बैल को हटाना मुश्किल होता है।

श्यान स्थापना : (कु., शि.) कलश स्थापना। विवाह-अनुष्ठान में सबसे पहला व महत्त्वपूर्ण कार्य पुरोहित द्वारा कुंभ की स्थापना होता है। कुल पुरोहित फर्श पर आटा, चावल और रंगों से चौकोर मंडल बनाता है। उस चौके में दीपक जला कर मंत्रोच्चारण के साथ कलश की विधिवत् स्थापना करता है। कुंभ जल से भरा होता है और उसमें बड़, पीपल और आम की टहनियाँ रखी होती हैं। पास ही गणपति की मूर्ति रखी जाती है। इसे शैण स्थापना या कुंभ स्थापना भी कहते हैं। तभी स्त्रियाँ मंगल गीत गाती हैं–हे दीपक ! तुम जलते रहना। तुम्हारे बिना कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। तू सोने, चाँदी और मिट्टी का दीपक है। रेशम की बत्ती है और घी-तेल से जलता है –

बौड़े-बौड़े दीया सौगरी राती रौ
तौएं विना घौड़ोए न होए
कीजू केरौ दीउड़ा, कीजू केरी बौड़ादी बाती
कीजू केरी लागदी धारौ
सूने केरौ दीउड़ेया, पाटा केरी बौड़ादी बाती
घीऊ केरी लागदी धारौ
रूपे केरौ दीउड़ेया, रेशमौ केरी बौड़ादी बाती
तेलौ घीऊ केरी लागदी धारौ...

संकल्प : कोई धार्मिक कृत्य करने की प्रतिज्ञा। प्रत्येक अवसर पर किसी भी वस्तु का दान करते समय सर्वप्रथम संकल्प लिया जाता है, तभी वह दान पूरा समझा जाता है। कन्यादान के समय लग्न-बेदी में अपनी बेटी को दामाद को सौंपते हुए माता-पिता संकल्प लेते हैं, जिसका मंत्र पुरोहित द्वारा पढ़ा जाता है। उस समय महिलाएँ गीत गाती हैं –

बाबुए संकल्पी शांखे शोब्दे
शोटी लाड़ेया मोठड़ा दी तेरे
इजिए संकल्पी शांखे शोब्दे
शोटी लाड़ेया मोठड़ा दी तेरे...

संभाल : विवाह के अवसर पर उपहार-स्वरूप दुलहन को दिया जानेवाला धन तथा वस्तुएँ। इसमें माता-पिता, भाई-बंधुओं, पति और सास द्वारा दिए गए उपहार सभी सम्मिलित होते हैं।

सकपाल : दे. खासा।

सकपालड़ा : (सो.) दे. लड़ाकसी।

सगण : जन्म, विवाहादि शुभ अवसरों पर दिया जानेवाला उपहार। इसे निमंत्रित व्यक्ति न्योता देनेवाले को देता है। यह पैसे, वस्त्र आदि के रूप में दिया जाता है। नवविवाहिता तथा सुहागिनों को शगुन में चूड़ी, बिंदी, रिबन, गरी का गोला आदि देने की प्रथा है।

सगण पाणा : शगुन डालना। **रोका** के पश्चात् कन्या पक्षवाले पंडित से मुहूर्त निकलवा कर लड़के के घर शगुन डालने जाते हैं। इस रस्म को लड़की का भाई या बड़ा जीजा निभाता है। इस दिन लड़के को वस्त्र, मिठाइयाँ, सूखे मेवे, फल आदि दिए जाते हैं तथा लड़के के माँ-बाप और विशेष रिश्तेदारों को भी शगुन के तौर पर कपड़े, मिठाइयाँ और कुछ पैसे दिये जाते हैं। इस रस्म के बाद वर पक्षवाले शुभ मुहूर्त निकलवा कर कन्या के घर शगुन डालने जाते हैं। लेकिन कन्या के घर में यह रस्म संक्षेप में निभाई जाती है। यहाँ केवल कन्या को ही वस्त्र, आभूषण आदि दिये जाते हैं तथा उसके सिर पर गोटे-सितारे युक्त चुन्नी ओढ़ाई जाती है। इस रस्म को **चुन्नी चढ़ाणा** भी कहते हैं।

सगाई : सगाई। विवाह पक्का करने की रस्म। 'कुड़माई' को सगाई भी

कहते हैं, परंतु इसमें थोड़ा अर्थ भेद है। इसका अर्थ सगा बनाना या निकट सम्बंधी बनाना है। अब कुड़माई और सगाई में कोई भेद नहीं पाया जा रहा है। दोनों शब्दों को पर्याय रूप में प्रयोग में लाया जा रहा है। जो संस्कार कुड़माई में होते हैं वही सगाई में किए.जा रहे हैं।

सिरमौर क्षेत्र में सगाई करने के लिए लड़के वाले घी से भरा हुआ मिट्टी का पात्र घ्यालू, एक भेली गुड़ और लड़की के लिए कपड़े का जोड़ा लेकर कन्या के यहाँ जाते हैं। उनके साथ ब्राह्मण और नाई भी होते हैं। यदि कन्या पक्षवाले उपर्युक्त वस्तुओं को स्वीकार कर लें तो सगाई पक्की समझी जाती है। यह उसी दशा में टूट सकती है यदि लड़की अथवा लड़के में से कोई एक पागल या कोढ़ी हो जाए या ऐसे ही किसी असाध्य रोग से पीड़ित हो। परंतु सगाई तोड़ने के लिए बिरादरी अथवा पंचायत की सहमति लेना आवश्यक होता है, अन्यथा बिरादरी इसे बुरा मानती है। सगाई तोड़ने की दशा में जो पक्ष पहल करता है उसे दूसरे पक्ष को सगाई पर हुए व्यय को लौटाना पड़ता है। सगाई पक्की होने के एक या दो वर्षों के भीतर विवाह कर दिया जाता है।

सगोती : मोयन युक्त मैदे से बना मोटा रोट यानी फीका पकवान, जिसे दूध के साथ खाया जाता है। यह दुलहंन को विदाई के समय मायके से दिया जाता है। इसे ससुराल में सम्बंधियों में बाँटा जाता है।

सग्गी : (ह.) सुहागपुड़ा। वर पक्ष की ओर से विवाह के दिन कन्या को दी जानेवाली प्रथम भेंट। यह सग्गी पहले मोटी 'मौली' से बंधी होती थी और दुलहन इसे वर्ष भर अपने बालों में बाँधती थी।

सटाबरा न्यूंदा : दे. चुल्ही न्यूंदा।

सतनाला : विवाह में प्रयुक्त होनेवाली लाल डोरी। इसमें कुछ-कुछ दूरी पर सात ढीली गाँठें लगाई जाती हैं। दूल्हा जब कन्या पक्ष के यहाँ पहुँचता है तो उसे यह सतनाला गाँठ खोलने के लिए दिया जाता है। वह इसका एक सिरा पैर के अँगूठे के नीचे रख कर, दूसरा सिरा दाहिने हाथ से खींच कर इसकी गाँठें खोलता है। इसे खोलने के बाद कन्या की माँ इस डोरी को दूल्हे के गले में डाल कर इसके दोनों सिरों को पकड़ कर स्वयं आगे चलती हुई, दूल्हे को गृह प्रवेश करवाती है।

सतागला : शनि की साढ़सती दशा। विवाह कार्य आरम्भ होने के दिन से सब रस्में पूरी हो जाने तक साढ़सती दशा वाले वर-कन्या को घर से कहीं दूर--नाले, खड्ड या जंगल में नहीं जाने दिया जाता। ऐसी मान्यता है कि विवाह आदि अवसर पर सतागले व्यक्ति के साथ कोई भी दुर्घटना घट सकती है। क्रूर-ग्रह के प्रकोप से लेकर भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी तक के प्रभाव की आशंका मानी जाती है।

सदणोज : (चं.) मुकलावा। गद्दी जाति में प्रचलित बाल विवाह। इसमें वधू छोटी आयु की होने के कारण प्रायः मायके में ही रह जाती है। सदणोज प्रथा में कन्या के जवान होने पर वर अपने कुछ सम्बंधियों सहित वधू को लेने जाता है। इस सदणोज को दो वर्ष या कभी-कभी पाँच वर्ष के पश्चात् भी सम्पन्न किया जाता है। वर के साथ कन्या पक्ष की लड़कियाँ हँसी-मज़ाक करती हैं। कन्या को विदा करते समय बीस सेर आटे के बबरू, दो चोलू, दो लुआंचड़ियाँ, चार-छह चादरें तथा कुछ गेहूँ भेंट-स्वरूप दी जाती है।

सनवाणी : दे. सुहागपाणी।

सबली : सुहागिन जो विवाह के सभी कार्यों में पहला हाथ लगाती है। जिस दिन विवाह की तिथि निश्चित की जाती है, उसी दिन राशि के अनुसार इस महिला का चयन किया जाता है। रंगना, सिलना, दलना, उबटन लगाना, बरी का सामान बाँधना आदि कार्य यही प्रारंभ करती है।

सबाह : कन्या पक्ष की ओर निभाई जानेवाली विवाह सम्बंधी एक रस्म। इसमें दूल्हा-दुलहन को ईशान कक्ष की दहलीज़ पर खड़ा करके उनकी पूजा की जाती है। इसके बाद दुलहन का पिता अपनी पुत्री को गोदी में बिठाता है। उसका मुँह बाहर की ओर तथा पीठ अंदर की ओर होती है। सामने जलते एक दीपक को परात से ढक कर बुझा दिया जाता है। दीपक बुझाने का अर्थ कन्या पराई होने से है। इस समय महिलाएँ हाथ में धान ले कर दुलहन के ऊपर सात बार घुमा कर अंदर की ओर फेंकती हैं। यह प्रक्रिया सात बार दोहराई जाती है। महिलाएँ गीत गाती हैं–

धाना बौहै धाना बौहै बेटिए देउरे द्वारै
आज निखुवी बेटिए उड़ाटै चारै...

सब्हालड़ा : (कां.) दे. पड़जंद्रा।

समिधा : यज्ञ की लकड़ी। विवाह के लिए जो लकड़ी काटी जाती है, उसे समिधा कहा जाता है। इसे काटने के लिए शुभमुहूर्त देखा जाता है और इसमें गाँववासियों का सहयोग नितांत आवश्यक माना जाता है।

समूहत : शुभमुहूर्त। विवाह का शुभारम्भ समूहत से होता है। इसमें सर्वप्रथम गणेश, कुंभ तथा नवग्रहों का पूजन किया जाता है। वर-कन्या के शरीर पर उबटन लगाया जाता है। सात सुहागिनें ऊन कात कर धागा तैयार करती हैं, जिसे बाद में हल्दी से रंगा जाता है। 'सांद' के समय पंडित परिवारवालों को इसका 'कंगणा' बाँधता है। ऊन के काले धागे के तीन तार वर व कन्या की कलाई पर बाँधे जाते हैं, ताकि उन पर कोई कुदृष्टि न पड़े। तत्पश्चात् उन्हें आँगन में ले जाकर स्नान करवाया जाता है। इस अवसर पर माता की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती है। स्नान के बाद काले धागे को उतार दिया जाता है और दोनों ओर माताएँ वर व कन्या को घर के अंदर ले आती हैं। समूहत का शुभारम्भ पुरोहित के मंत्रों तथा निम्न गीत के साथ किया जाता है–

सुरगा ते उतरै नरैण समूहते आई बैहओ
साडड़ा औण नईं होणा पौण ते पाणी बैहओ
साडड़ा औण नईं होणा लाड़ै रा बापू बैहओ
साडड़ा औण नईं होणा, लाड़ै रा चाचु बैहओ...

समोदृष्टि : विवाह से सम्बंधित एक लोक संस्कार। यह लग्न के अवसर पर होता है। विवाह पढ़नेवाला पुरोहित वर तथा वधू के सिरों पर दुशाला डालता है। उस समय वर-वधू एक-दूसरे को देखते हैं और यदि कोई गम्भीर शारीरिक दोष हो तो विवाह से इनकार भी किया जा सकता है। समोदृष्टि सम्पन्न होने पर ही लग्न परिपूर्ण होता है।

सरगारणा : विवाह में कन्या पक्ष के द्वार पर दूल्हे की आरती उतारना।

सरगुढ़ी : (चं.) विधवा विवाह। विधवा के किसी सजातीय पुरुष से विवाह को सरगुढ़ी कहा जाता है। इसमें वर अपने भाई या किसी अन्य सम्बंधी के साथ विधवा के घर जाता है। वहाँ जाकर वह वधू को एक आभूषण, जिसे बंद कहा जाता है, उपहार के रूप में भेंट करता है। इस प्रकार के

विवाह में गणेश या द्वार पूजा नहीं होती है।

सरतेड़ा : उच्च जाति के पुरुष और निम्न जाति की स्त्री की संतान। यह पिता की जाति से निम्न मानी जाती है। सरतेड़ा प्रायः तीन-चार पीढ़ी के पश्चात् पिता की जाति को प्राप्त करता है। दे. सरीत।

सराह्यणु-पराह्यणु : (सो.,शि.)। विवाह की एक रस्म। लड़की की विदाई के समय सराह्यणु-पराह्यणु का दिन निश्चित किया जाता है। प्रायः यह विदाई के दूसरे दिन आता है। यदि इस दिन करड़ा यानी क्रूर वार हो तो अगला दिन निर्धारित किया जाता है। इस दिन लड़की की ससुराल से नव दम्पती के साथ लड़के के माता-पिता तथा रिश्तेदार दुलहन के मायके जाते हैं। दुलहन के मायके में उनका खूब स्वागत होता है और उन्हें भोज दिया जाता है। इस दिन वे सभी वहीं रुकते हैं और अगले दिन दूल्हा-दुलहन को छोड़ कर बाकी सारे लोग वापिस लौटते हैं। उन्हें वस्त्र आदि देकर विदा किया जाता है। दूल्हा-दुलहन अपने घर तीसरे दिन लौटते हैं और दुलहन के साथ मायके से कुछ पकवान बना कर भेजे जाते हैं।

सरीत : (मं.) अंतर्जातीय विवाह। इसमें उच्च जाति का पुरुष निम्न जाति की स्त्री से विवाह करता है। यह शास्त्रीय विधि-विधान के बिना होता है। वह बिना ब्याहे घर लाई जाती है और द्वार-पूजा करके उसे भीतर प्रवेश करवाया जाता है। इससे पूर्व उसका शास्त्रीय पद्धति से अन्यत्र भी विवाह हुआ होता है। इस तरह ब्याही गई वधू भी सरीत ही कहलाती है।

सर्वारम्भ : सर्व+आरम्भ। विवाह संस्कार का प्रारंभिक कृत्य। विवाह का मुहूर्त निकलवा कर उसकी शुरुआत करना। इस दिन वर तथा कन्या के हाथ में रक्षासूत्र बाँधे जाते हैं और इसके बाद वे घर से बाहर नहीं जा सकते। इस दिन रंगना, सिलना, दलना आदि विवाह में होनेवाले सभी कार्यों का आरम्भ किया जाता है। गणपति की पूजा की जाती है और वर-कन्या के शरीर पर तीन से पाँच दिन तक उबटन लगाया जाता है। उबटन लगाने से उनका रूप निखर जाता है।

ससरपाली पूजणा : (मं.) विवाह के समय जब मामा 'सांद' का पानी भरता है तो उसी समय ससरपाली (श्वेत दूर्वा) को भी शादी के लिए आमंत्रित करता है, इसकी पूजा लग्नपूर्व अथवा लग्न के समय की जाती है। इस

कृत्य को ससरपाली पूजणा कहा जाता है। यह पौधा वंश-बेल को बढ़ाने का प्रतीक माना जाता है।

सस्सड़ रोट : (कां.,बि.) सास के लिए रोट। जब लड़की ससुराल के लिए विदा होती है तो उसके साथ मायके से सास के लिए मेवे से युक्त मीठा रोट काँसे, पीतल या स्टील की थाली में सजा कर भेजा जाता है। आजकल रोट के बदले में मिठाई का प्रचलन आ गया है। इसे लड़की ससुराल में पहुँच कर डोली या कार से बाहर पैर रखते ही अपनी सास को देती है। इसके साथ सास के लिए एक सूट भी होता है।

सांद : शांति पूजन। विवाह का आरम्भ वर तथा कन्या पक्ष की ओर सांद संस्कार से होता है। जिस कमरे में सांद होती है उसकी पूर्वाभिमुख दीवार में पुरोहित सर्वप्रथम सांद लिखता है, जिसमें अनेक देवी.देवताओं को चित्रित किया जाता है। मंत्रादि से पुरोहित देवताओं का आह्वान करता है और स्त्रियाँ मंगलगीत गाती हैं–

सांद लिखैंदे पाधेया तुहांजो क्या लोड़ी दा
जीयो मेरी जजमानणियों मिंजो गोहा लोड़ी दा
गोहा गोरनी बुथेरा सांदी लिखणे दी करियो...

यह दुष्ट ग्रहादि के निवारणार्थ की जानेवाली पूजा है। पुरोहित लड़के और लड़की से ग्रह शांति के लिए पूजन करवाते हैं। उनकी कलाई में 'कंगणा' बाँधा जाता है। नवग्रहों की शांति के लिए नौ प्रकार के अन्न रखे जाते हैं, जिन्हें बाद में पुरोहित को दक्षिणा और पगड़ी के साथ दिया जाता है। चम्बा के जनजातीय क्षेत्रों में नवग्रहों की पूजा के बाद उनके निमित्त बकरे की बलि देने की प्रथा है। इसके बाद तेल-बटणा संस्कार पूर्ण किया जाता है। साँद में मामा-मामी का भाग लेना अति अनिवार्य होता है। लड़की का मामा कन्या को नथ, चूड़ा और वस्त्र देता है और लड़के का मामा दूल्हे को वस्त्र, सेहरा व विविध उपहार देता है। वर तथा कन्या मामा के घर से लाए गए वस्त्र पहनते हैं। इस अवसर पर मामा पूरी साज-सज्जा के साथ अपनी बहन के घर आता है। वहाँ एकत्र स्त्रियाँ व्यंग्य करते हुए गालियाँ गाती हैं –

मामा आया बण ठण के, सूट लिआया मंग शुंग के

सूट तेरै आब नहीं, क्या मामा तिज्जो लाज नहीं...

अर्थात् मामा यूँ तो बड़ा बन-ठन कर आया है पर सूट माँग कर लाया है। सूट सुंदर भी नहीं है, क्या मामा तुझे शर्म नहीं आती ?

सांद के समय एकत्र महिलाएँ कन्या की ओर सुहाग गीत व वर की ओर घोड़ियाँ गाती हैं।

सुहाग गीत–

खोल मामा तीलियाँ पहनादे मामा नथ
कुआरेपणे दियाँ तीलियाँ सुहागपणे दी नथ
खोल मामा बंगड़ियाँ पहना दे मामा चूड़ा
कुआरपणे दियाँ बंगड़ियाँ सुहागपगे दा चूड़ा...

घोड़ी गीत–

सांदी बैह साँदी बैह, लाड़े दा मामा
मामा बैहंदा क्यों नी
सारी उमरा दा खटेया कमाया
इना घड़ियाँ जो रखेया
मामा लाँदा क्यों नी...

सांदी : (चं.) विवाह के अवसर पर 'सांद' में प्रयुक्त बग्गड़ नामक घास की रस्सी, जिसमें गलगल के पत्ते लगाए जाते हैं, इसे मामा सांदवाले कमरे में लगाता है। इसे सांदी तथा **सांद** कहते हैं। विश्वास है कि ऐसा करने से घर में शांति का वास होता है। चम्बा के जनजातीय क्षेत्रों में इसे **सांदोड़ी** कहते हैं, लेकिन वहाँ इसे लगाने से पूर्व इस पर सांद में नवग्रहों की शांति के लिए दी गई बकरे की बलि का रुधिर छिड़का जाता है।

सांदोड़ी : (चं.) दे. सांदी।

साई : अग्रिम राशि। वह धन जो विवाहादि अवसरों पर भोज तैयार करने या गाने-बजानेवालों को नियत समय पर काम करने के लिए अग्रिम रूप से दिया जाता है।

साई-सगाई : एक वैवाहिक कृत्य। सिरमौर में कन्यादान से पहले दूल्हे का पिता तथा कुछ अन्य व्यक्ति दुलहन के लिए लाए गए आभूषण, वस्त्र आदि

दिखाते हैं। इस प्रकार दुलहन के लिए लाए गए सामान को सभी के सामने खोलकर दिखाने की रस्म को साई-सगाई कहा जाता है।

साए : (सि.) लड़के की ओर से लड़की के घर सगाई के समय दो रुपए रखे जाते हैं, जिसे शादी के लिए सहमत होने की अवस्था में लड़की स्वयं उठाती है। इन रुपयों को साए कहते हैं, जिन्हें बाद में वह अपने कुलदेवता के मंदिर में चढ़ाती है।

सादा : (चं.) व्यक्तिगत निमंत्रण। ननिहालवालों को, फूफा-फूफी को तथा निकट सम्बंधियों को विवाह में सम्मिलित होने के लिए व्यक्तिगत रूप से जाकर बुलाने को सादा कहते हैं। वर-कन्या के माता-पिता निमंत्रण पत्र के साथ मिठाई भी ले जाते हैं।

सापालड़ा : (सि.) दे. पड़जंद्रा।

सिंध भौरना : माँग भरना। विवाहोत्सव में 'सिंधी चिणना' के बाद दूल्हा चाँदी के रुपये से लड़की की माँग में सिंदूर भरता है।

सिंधी चिणना : (कां.) एक वैवाहिक कृत्य। विवाहोत्सव में 'सिरगुंदी' के समय दुलहन की माँग में दूल्हे द्वारा पैसे चिने जाते हैं। प्रथानुसार दूल्हा माँग में नौ सिक्के चिन कर चाँदी के सिक्के से इन्हें अपने हाथ में गिराता है। यह विधि तीन या सात बार की जाती है। इसके बाद दुलहन की माँग भरी जाती है।

सिठणी : वर तथा कन्या पक्ष में गाए जानेवाले गाली गीत। यूँ तो ये शिष्ट गीत ही होते हैं, परंतु यदि अशिष्टता का कुछ अंश प्रवेश कर भी जाए, तब भी उसका बुरा नहीं माना जाता। महिलाओं द्वारा विवाह के विभिन्न अवसरों यथा–मातुल पक्ष के आने पर, बारात पहुँचने के तत्काल बाद चायपान करते हुए, 'बरी' खोलते हुए तथा विशेषतः बारात के अंतिम भोज के समय सिठणियाँ गाकर सुनायी जाती हैं। दूल्हा आँगन में बनी वेदी में भोजन ग्रहण करने बैठा होता है, उसके साथ उसका 'लजोड़ू' और अन्य मित्र, शेष पंक्तियों में अन्य सम्बंधी व बाराती बैठते हैं। जैसे ही दूल्हा प्रथम ग्रास मुँह में डालता है, महिलाएँ गा उठती हैं–

लाड़ा सत्तां दिनां दा भुक्खा, ग्राहियाँ खूब मारदा
अम्मा ने भेजेया लाडला भुक्खा, ग्राहियाँ खूब मारदा...

अर्थात् सात दिनों का भूखा दूल्हा बड़े-बड़े ग्रास लेकर खा रहा है। माँ ने अपना लाडला भूखा भेजा है।

इस प्रकार बारी-बारी से सभी सम्बंधियों को गालियाँ दी जाती हैं। ऐसा ही स्वागत वर पक्ष के यहाँ दुलहन व उस के साथ आए व्यक्तियों का होता है। अतः दोनों ही पक्ष उसे बुरा नहीं मानते। वास्तव में यह सब मज़ाक और हल्के मनोरंजन का माहौल बनाने के लिए होता है। इस प्रथा को **गाली लाणा** तथा **लाहणी** भी कहते हैं। दुलहन को दी जानेवाली एक सिठणी–

वौटी एडी एडी एडी, साडे मुंडे ते वी केडी,
वौटी कड़ियां न छणका, साडे मुंडे नो न डरा...

सिरगाही : बारात का कन्या के घर के ऊपर की ओर से आना सिरगाही माना जाता है। इसकी वर्जना है। अतः बारात को दूसरे रास्ते से आना पड़ता है।

सिर गुंदवाई : दे. सिरगुंदी।

सिरगुंदी : विवाह की एक रस्म। इसके अंतर्गत दुलहन के सिर के बालों को विशेष प्रकार से संवारा जाता है। यह कृत्य लग्न समाप्त होने पर विदाई से पहले किया जाता है। दूल्हा तथा दुलहन को पूजा गृह में 'कौहरा' के सामने बिठाया जाता है और दुलहन की मामी द्वारा दी गई सात डोरियाँ दूल्हा जब दुलहन के सिर पर रखता है, तब मामी या नाइन सिर गुंदाई करती है। वह दुलहन के बालों की कई वेणियाँ बना कर इनमें डोरियाँ बाँध कर विशेष ढंग से व्यवस्थित करती है। इसे मांगलिक समझा जाता है अतः इस बात का ध्यान रखा जाता है कि सिरगुंदी के समय कोई छींक न मारे। इस अवसर पर निम्न प्रकार के गीत गाए जाते हैं –

सिरे गुंदेयाँ नी नाणी, नाण गुंदांवण आई
लाणी ए सिरे जो मौली नी, नाण गुंदांवण आई...

कुछ स्थानों पर ससुराल में 'दुद्धाभत्ती' की रस्म के बाद भी सिरगुंदी की जाती है। इस अवसर पर वर से वधू के परांदे की गाँठ खुलवाई जाती है। ऐसा करने के लिए दोनों के मध्य मूँज की एक चारपाई खड़ी की जाती है। मूँज में से वधू की चोटी को गुज़ार कर वर से उसकी गाँठ खुलवाई

जाती है, फिर नाइन उसके बाल खोलकर 'चौंक' आदि लगाकर बालों को गूँथती है। इसके लिए नाइन को नेग दिया जाता है। मुख्य रूप से सिर के बालों को संवारने के कारण इसे सिरगुंदी कहते हैं। सं. ग्रंथि का मूल अर्थ बनाना या बाँधना है। इस कृत्य के अंतर्गत भी बालों को व्यवस्थित किया जाता है।

सिल : संस्कृत शिला से व्युत्पन्न सिल शब्द पत्थर का वह उपकरण है, जिस पर चटनी तथा मसालों आदि को पीसा जाता है। विवाह में सप्तपदी के समय पर्वत के प्रतीक रूप में सिल को वर और वधू के पाँवों के नीचे रखा जाता है। इसके पीछे वैवाहिक जीवन में आनेवाली कठिनाइयों से विचलित न हो कर पर्वत की तरह अडिग रहने की धारणा रहती है। इस समय महिलाएँ गीत गाती हैं –

बेदी दैं अंदर सिल बट्टा रक्खेया
इन्हाँ गुणाँ मन्नेयाँ जी अलबेल्लेया कान्हाँ...

सुंगरु खिलाणा : (मं.) एक वैवाहिक कृत्य। इसमें दुलहन के घर सुअर के आकार का आटे का एक खिलौना बनाकर पकाया जाता है। उसे दुलहन की छोटी बहनें थाली में सरसों डालकर दूल्हे के आगे नचाती हैं। दूल्हा उसका शिकार करता है।

सुआंपणी : (बि., मं.) एक वैवाहिक कृत्य जो दूल्हे के पुरुष सम्बंधियों की ओर से 'पंजणी' के बाद और 'बिदाई' से पहले किया जाता है। वे वरिष्ठता के आधार पर बारी-बारी से दुलहन की गोद में पैसे, आभूषण, वस्त्र और सूखे मेवे डालते हैं। उसके बाद लड़की के माता-पिता उनके माथे पर टीका लगाते हैं और कुछ पैसे और रूमाल उन्हें भेंट करते हैं। दूल्हे के सम्बंधियों द्वारा दिये गए सारे सामान पर दुलहन का अधिकार होता है।

सुआज : (चं.) विवाह की एक प्रथा। विवाह अवसर पर कन्या को उसके निकट सम्बंधी, आमंत्रित जन व सखी-सहेलियों द्वारा उपहार में वस्त्र-आभूषण या नकद राशि दी जाती है, जिसे सुआज कहते हैं। सम्बंधित परिवार द्वारा ऐसे अवसर पर ही यह उन्हें लौटाया जाता है।

सुआणी : (कां.) सुहागिन। विवाह के अवसर पर पंडित पाँच सुहागिनों और एक कन्या के हाथ में कंगन बाँध देता है, जिनसे सभी शुभ कार्य आरम्भ

करवाये जाते हैं। वे विवाह की एक रस्म 'बिलड़ी' में बिलड़ियाँ भर कर वर के पाँव धुलाती हैं। सर्वप्रथम वर-कन्या को कंगन सुआणी द्वारा ही बाँधा जाता है, जो विवाह की समाप्ति पर पीपल के पास खोला जाता है।

सुखपाल : दे. खासा।

सुतरात : (मं.) सुहागरात। बारात के वापिस घर लौटने पर दी जानेवाली धाम के दिन दुलहन को उसके परिजनों के साथ मायके भेज दिया जाता है तथा मुहूर्त निकलवाकर तीसरे या पाँचवें दिन दूल्हे सहित तीन व्यक्ति दुलहन को पहली बार लाने के लिए उसके मायके जाते हैं। दूल्हे द्वारा दुलहन के पहली बार के स्वागत को सुतरात कहते हैं।

सुबाठी : (सि.) दे. दुणाठी।

सुबो पाइतो : (सि.) कन्यादान में दिए जानेवाले बर्तन तथा वस्त्र। इसमें पाँच, सात या नौ बर्तन होते हैं तथा मामा की ओर से एक बड़ा बर्तन अवश्य दिया जाता है।

सुब्बर : विवाहोत्सव में दुलहन के लिए उसके ननिहाल द्वारा लाया गया खादी का एक विशेष दुपट्टा, जिस पर सुंदर कढ़ाई की होती है।

सुरमा बाहणा : 'सेहराबंदी' के बाद दूल्हे की भाभी उसकी आँखों में सुरमा डालती है। उस समय हँसी-मज़ाक का माहौल होता है। भाभी एक आँख में सुरमा डालने के बाद दूसरी आँख में तभी सुरमा डालती है, जब देवर उसे नेग दे देता है। इस समय गाए जानेवाले गीतों में भाभियाँ देवर को काचर' कह कर छेड़ती हैं। यथा–

सुरमा बाहेयां भाबो मैं घर सौहरेयाँ दे जाणा

आह्खीं काचरियाँ देवरा, सुरमा बाही मैं गुआया
आह्खीं खरियाँ भाबो, तिज्जो बाहणा नीं आया...

सुहाग : सौभाग्य। 'कुड़माई' वाले दिन लड़के की ओर से लड़की को दिये जाने वाले आभूषण को सुहाग कहते हैं। इनमें मुख्यतः चाक और गले का आभूषण होते हैं। इनके अतिरिक्त विवाह में गाये जानेवाले मांगलिक गीतों को भी सुहाग कहते हैं, जो कन्या पक्ष की ओर विवाह की निश्चित तिथि से आरम्भ किए जाते हैं और विवाह संस्कार के बीच भी यथासमय गाए

जाते हैं। इनमें कन्या के अखंड सौभाग्य की कामनाएँ की जाती हैं। सुहाग के गीतों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। विवाह से पहले, विवाह शुरू होने पर देवमंडल के आह्वान, कुलजा की स्थापना तथा तेल-उबटन के समय गाए गीत और विदाई गीत। एक सुहाग–

चरखे दियाँ पूणियाँ दादी चरखे च रहियाँ
छाई दी रही गई छलाँज दादी हुण चलिया जाणा
अन्न धन दादी धिए तिज्जो मैं दिन्नी हाँ
तेरा दादु दिंगा जागीर धिए अजे नहीं तैं जाणा
अन्न धन दादी अपणी नुआँ जो देयाँ
पुत्ताँ जो देयाँ नी जागीर दादी मैं तां चलिया जाणा
चरखे दियाँ पूणियाँ माए चरखे च रहियाँ
छाई दी रही गई छलाँज माए हुण चलिया जाणा...

सुहाग गीत अकसर रात दस-ग्यारह बजे तक स्त्रियों द्वारा गाए जाते हैं। वापसी पर इन्हें गुड़-चने दिए जाते हैं।

सुहागड़े : (कां.) दे. सुहाग।

सुहागपटारी : गोटा-किनारी युक्त लाल कपड़े से ढकी पिटारी। विवाह के मौके पर इसमें दुलहन की 'बरी' डाली जाती है और इसे उठानेवाला व्यक्ति बारात के आगे-आगे चलता है। सुहागपिटारी में वधू के लिए पाँच, सात या नौ सूट, शृंगार पेटिका, आभूषण, जूते-जुराब आदि के साथ मेवे, मौली, कुमकुम और सुपारी भी रखी होती है। स्वर्ण आभूषणों में नथ और माँग-टीका तथा वस्त्रों में लाल रंग का गोटे से जड़ा दुपट्टा अवश्य होते हैं। स्त्रियों की प्रसाधन सामग्री रखनेवाले उपकरण को भी सुहागपिटारी कहते हैं। विवाह के अवसर पर यह ससुराल से आती है। पहले यह बाँस की खपच्चियों से बनाई जाती थी, परंतु अब प्लास्टिक आदि की कई डिज़ाइनों की बनती है। इसमें सौंदर्य प्रसाधन रखने के लिए अलग-अलग स्थान बने होते हैं।

सुहागपाणी : सौभाग्य पानीयम्। विवाह में सुहागिनों द्वारा किया जानेवाला एक कृत्य। मुख्य भूमिका इसमें मामा-मामी की होती है। इसके अंतर्गत 'सांद' वाले दिन वर तथा कन्या के मामा-मामी दोनों पक्षों की ओर निकट के जलाशय के पास पानी भरने जाते हैं। इनके साथ पाँच-सात की संख्या

में अन्य जोड़ियाँ भी जाती हैं। इनमें सबसे आगे मामा-मामी की जोड़ी होती है। दूसरे लोग भी उनके साथ शामिल होते हैं। ये सभी बाजे-गाजे के साथ नाचते हुए जाते हैं। मामा-मामी बावड़ी से पानी भरते हैं। पानी की गागर मामा उठा कर लाता है। वर तथा कन्या को इसी गागर के पानी से नहलाया जाता है। कांगड़ा में इसे **सनवाणी** कहते हैं।

सुहागपुड़ा : एक मांगलिक वस्तु। यह एक कागज़ की मोटी-सी पुड़िया होती है, जिसके अंदर दूर्वा, हल्दी, सिंदूर तथा मेहंदी आदि वस्तुएँ होती हैं। विवाह के अवसर पर यह वर पक्ष की ओर से कन्या के लिए लाया जाता है। इसे नाइन 'सिरगुंदी' में दुलहन के बालों में मौली की सहायता से बाँध देती है। यह सुहाग का प्रतीक माना जाता है। सुहाग की प्रतीक हल्दी, सिंदूर तथा मेहंदी आदि वस्तुएँ कागज़ की पुड़िया में बंद होने के कारण ही इसे 'सौभाग्य पुटिका' का अपभ्रंश रूप माना जाता है।

सुहाग लगाणा : (शि.) 'सिरगुंदी' में निभाई जानेवाली एक रस्म, जिसमें नववधू को सुहाग के आभूषण पहनाये जाते हैं। सिर गूँदने के लिए नाम-राशि देखकर सुहागिन का चयन किया जाता है। इस समय दुलहन की सखियाँ आभूषणों से लेकर शृंगार प्रसाधन की माँग वर पक्ष से आए 'लाड़सू' से सुहागगीत गाते हुए करती हैं और सुहागिनें दुलहन का शृंगार करती जाती हैं। यदि शृंगार प्रसाधन में कोई चीज़ वर पक्षवाले उपलब्ध न करवा पाएँ तो दंडस्वरूप उन्हें पैसे देने पड़ते हैं। सिरगुंदी हो जाने पर वर पक्ष की ओर से सुहागिनों को 'सुहागी' और सुहाग लगानेवाली स्त्री को वस्त्र भी दिए जाते हैं।

सुहाग लाणा : विवाह की पुष्टि के लिए 'खाण-खाणा' के दिन लड़के की ओर से लड़की को सुहाग के एक या अधिक जेवर दिए जाते हैं। इनमें मुख्यतः चाक, गले की खगाली आदि शामिल होते हैं। इसे सुहाग लाणा कहा जाता है।

सुहागी : सुहाग की सामग्री। इसमें चूड़ी, बिंदी, रिबन, सिंदूर, मेहंदी, काजल आदि वस्तुएँ शामिल होती हैं। सुहागिनें हर सुहाग के व्रत में इसका आदान-प्रदान करती हैं।

सूही : स्त्रियों के अभिनंदन का एक रूप। जो स्त्री वैदिक विवाह या देव-विवाह से ब्याही गई हो, वह सूही करके बड़ों का अभिवादन करती है। सूही शब्द स्वस्ति का तद्भव रूप है। सूही करने का विशेष नियम है। स्त्री दोनों हाथ जोड़कर नीचे झुकती है और अपने जोड़े हुए हाथों से पहले अपने आँचल का स्पर्श करती है फिर धीरे से सामने के व्यक्ति के चरणों का स्पर्श करती है। वह व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) उसे सदा सुहागिन अर्थात् *सौभाग्यवती हो* कहता है। वैदिक विवाह में धामवाले दिन सूही करने की रस्म निभाई जाती है। इसमें नव वधू से रिश्ते में बड़ों को सूही करवाई जाती है, ये सभी अपनी सामर्थ्यानुसार उसे रुपए देते हैं। रुपए लेकर वधू एक बार पुनः उसे सूही करती है। यदि स्त्री का देऊ या वैदिक पद्धति से विवाह न हुआ हो और किसी अन्य रूप से विवाहित हो तो वह सूही नहीं करती। बल्कि सीधे पैर छूती है।

सेईनिङ कुन्नु : (कि.) इसका शाब्दिक अर्थ है–रिश्ता पुकारना। यह विवाह पर किया जानेवाला एक लोकाचार है, जिसमें वर तथा वधू को उनके सम्बंधियों से परिचित करवाया जाता है और वे उन्हें बंधुत्ववाची शब्दों–देवर, जेठ, ससुर, सास आदि से पुकार कर नमस्कार करते हैं।

सेहरा : वर के ललाट से चेहरे पर लटकती हुई महीन मालाओं वाला कलात्मक मुकुट। इससे वर का मुँह ढका रहता है। सेहरा काँच, मनके, मोतियों तथा सितारों को जड़कर कलात्मक ढंग से बनाया जाता है। यह वर-यात्रा निकलने से पहले वर के माथे पर बाँधा जाता है। दूसरे विवाह की स्थिति में वर की पहली पत्नी से हुए बच्चों को पिता का सेहरा और उसके विवाह के किसी भी कृत्य को देखना मना होता है। ऐसा माना जाता है कि पिता का सेहरा देखने से बच्चों का दुर्भाग्य जागृत होता है। कहीं-कहीं इसे दुलहन के सिर पर भी बाँधा जाता है। सेहरा बाँधने के समय गाये जाने वाले गीतों को भी सेहरा ही कहते हैं।

सेहरा गीत–

वीरा वे तेरे सेहरे नो सुच्चे जड़े
सुच्चे जड़े वे सितारे जड़े
सोहणेया वे तेरे देखणे नो लखां खड़े
लखां खड़े वे करोड़ां खड़े

वीरा वे तेरे देखणे नो मामे खड़े
मामे खड़े ताये चाचे खड़े
वीरा वे तेरे देखणे नो वीरे खड़े...

सेहरा झामणा : (बि.), सेहरा उठाना। यह कृत्य वेदी में फेरे से पहले किया जाता है। इसमें दूल्हे की सास या पंडित उसके सेहरे की लड़ियों को बीच से उठा कर सेहरे की कलगी में फँसा देते हैं। इसके बाद की सारी रस्में दूल्हे द्वारा खुले चेहरे से ही निभाई जाती हैं।

सेहराबंदी : सेहरा बाँधना। वरयात्रा के प्रस्थान करने से पहले मंडप के पास दूल्हे को सेहरा बाँधा जाता है। सेहरा व विवाह के वस्त्र प्रायः मामा द्वारा लाए जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में सेहरा व वस्त्र दूल्हे की बुआ या बहनें लाती हैं। इस समय सभी महिलाएँ 'सेहरा' गाती हैं। इस अवसर पर दूल्हे को मुहूर्त में सिले हुए वस्त्र–चूड़ीदार पाजामा, कमीज़ तथा शेरवानी पहनाए जाते हैं। सिर पर पगड़ी बाँधने के पश्चात् सेहरा बाँधा जाता है। कुछ क्षेत्रों में दूल्हे को सेहरा बाँधने से पहले इसे एक बछड़े के सिर में लगाते हैं और बाद में यह बछड़ा पंडित को दे दिया जाता है। सेहराबंदी के बाद वर खड़ा हो जाता है और पुरोहित उसकी आरती दायें से बायें की ओर तीन बार उतारता है। वर की माँ उसके तीनों ओर तीन लुच्चियाँ (तेल में पकी मैदे की रोटी) फेंकती है। इसके बाद पिता अपने पुत्र को 'तमोल' में पैसे देता है, जो पुरोहित को दिए जाते हैं। जब दूल्हा तैयार हो जाता है तो उसकी माँ उसके 'दुशुटण' वाले दिन के वस्त्र दिखाती है। इसका तात्पर्य यह होता है कि उसका बेटा कभी पैदा हुआ था जो आज ब्याहने जा रहा है। इसके बदले में दूल्हा अपनी माँ को 'नेग' देता है। इसी समय उसकी सभी बहनें, बुआएँ, चाचियाँ, ताइयाँ व आमंत्रित मेहमान उसे टीका लगाते हैं। टीके के बदले सभी बहनों व बुआओं को वस्त्र दिए जाते हैं।

सेहरा मुंजणा : (मं.) दूल्हे को मामा द्वारा लाए गए वस्त्र पहनाने के बाद जब सेहरा बाँधा जाता है तो परिवार के सभी सदस्य उसे हाथ लगाते हैं तथा पंडित को दक्षिणा देते हैं। इस रस्म को सेहरा मुंजणा कहते हैं।

सोथवाल : (शि.,सि.) कन्या के साथ उसके गाँव से उसकी ससुराल जानेवाले युवक तथा बच्चे।

सोथा : (शि., सि.) वर पक्ष की ओर से वधू को सगाई के अवसर पर दिया जानेवाला धन। सगाई के अवसर पर लड़के का बाप, बिचौलिया और पंडित शुभ मुहूर्त निकाल कर लड़की के माँ-बाप के घर जाते हैं। इस अवसर पर लड़की को कपड़े, जूते और सोने या चाँदी का एक गहना दिया जाता है, जिसे सोथा कहा जाता है।

सोबड़ू : (सि.) दुलहन के विदा होने पर मायके से उसके साथ जानेवाले व्यक्ति, जिनमें अधिकतर युवा या उसके भाई होते हैं। उनका दुलहन की ससुराल में खूब स्वागत किया जाता है। 'झाझड़ा' ब्याह में सोबड़ुओं की संख्या सैकड़ों तक भी होती है। इन्हें दो-तीन धामें खिलाई जाती हैं।

सौकण मिलावा : (सि.) सौतन मिलन। सिरमौर क्षेत्र में पति द्वारा दूसरी पत्नी लाने पर सौकण मिलावा अवश्य किया जाता है, जिसकी प्रक्रिया इस प्रकार है–नई लाई गई पत्नी को कमरे के एक कोने में बिठा दिया जाता है। पहली उससे दूसरी ओर के कोने में बैठ जाती है। दोनों के हाथ में एक-एक चाँदी का रुपया होता है। दो अन्य स्त्रियाँ उन दोनों के समीप अपने-अपने हाथों में एक-एक जलता हुआ दीया लेकर खड़ी हो जाती हैं। कमरे के मध्य में ब्राह्मण अथवा कोई अन्य वरिष्ठ स्त्री खड़ी हो जाती है। बीच में एक चौड़ा कपड़ा अथवा कम्बल तान कर रखा जाता है। अब दोनों सौतनें आहिस्ता-आहिस्ता अपने स्थानों से ब्राह्मण तथा उस ताने हुए कपड़े की ओर बढ़ती हैं। दीयेवाली स्त्रियाँ भी उनके साथ-साथ चलती रहती हैं। मध्य में खड़ा ब्राह्मण अथवा स्त्री कम्बल के आर-पार से उन दोनों के हाथ पकड़ कर मिला देती है। वे अपने-अपने हाथों में पकड़े हुए चाँदी के रुपए आपस में बदल लेती हैं। दोनों ओर दीये इसलिए जलते रहते हैं ताकि एक पर दूसरी की परछाई न पड़ने पाए। इसके पश्चात् सभी उपस्थित लोगों में शक्कर अथवा गुड़ बाँटा जाता है।

स्यांदी भरना : दे. सिंध भौरना।

स्योल : (कां.) वर तथा कन्या दोनों पक्षों में तेल डालने के बाद वर व कन्या को काला कम्बल ओढ़ा कर आँगन में स्नान के लिए ले जाया जाता है। सबसे आगे 'पोह्ई' पानी की 'ओली' से गंगाजल मिश्रित पानी का

छिड़काव करती है। महिलाएँ स्योल गीत गाती हुई चलती हैं–

क्या नी अड़िए मोइए
स्योल दिंदिए लाड़े दिए बैह्णे
लाड़े नहौण संजोया
नगरा रे नाऊए सदाओ
लाड़े नहौण संजोया...

वर-वधू को 'नुहांडी' में पटड़े पर बिठाकर नहलाया जाता है और गीत के बोल गूँज उठते हैं–

पहला गड़वा किने डोलेया, आँगण चीकड़ होया
अपणे दादेरा पोता, पहला गड़वा तिने डोलेया...

हरजा : दे. रीत।

हरफेरा : (कां.) विवाह की एक रस्म। दूल्हे और दुलहन को धाम के दूसरे दिन दुलहन के मायके भेजा जाता है, जिसे हरफेरा कहते हैं। इस अवसर पर वे कुछ पकवान और वधू के माता-पिता के लिए उपहार ले जाते हैं। उनके साथ ससुराल से कुछ सगे-सम्बंधी भी जाते हैं। उनके जाने के बाद तोरण उखाड़ दिया जाता है। हरफेरा वाले दिन वरपक्ष के सगे-सम्बंधियों को लक्षित करके कन्यापक्ष की ओर खूब गालियाँ गाई जाती हैं –

नदिया कनारे इक्कोई बूटड़ा
ओ बी होया घमा घोर
कित्थों आया आरे
दूरों लहौरों आया आरे
हाटों हाट जांदा, नगरों-नगर जांदा
लिंदा कोई न आरे
ऐ ता सुकड़ू घोड़ा आरे...

कुछ क्षेत्रों में नवदम्पती एक महीने के भीतर कभी भी अच्छा वार देख कर हरफेरे के लिए जाते हैं।

हाँदी-साँदी : (कु.) 'समूहत' सम्पन्न होने के पश्चात् हाँदी-साँदी शुरू हो जाती है। हाँदी-साँदी उसे कहते हैं जब वर जोगी बनता है तथा भिक्षा

माँगता है। उस समय गीत गाया जाता है –

निक्का जिणा जोगी बणेया जोगटू
कन्ने पाइयाँ मुंदरौ हत्थो जोग डंठो
देयाँ भाइयो भिच्छिया जोग ध्यायो
कोह खेरै कारणो जोग ध्यायो
जनेऊ खेरै कारणो जोग ध्यायो...

हार : (शि.) विवाह का एक प्रकार, जिसमें किसी विवाहिता का अपहरण किया जाता है। ऐसे में स्त्री के पहले पति द्वारा स्त्री के मायकेवालों से दंड-स्वरूप बड़ी राशि और बकरा आदि लिया जाता है और यह राशि अक्सर स्त्री के मायकेवाले उसके दूसरे पति से वसूलते हैं। हार विवाह के अंतर्गत रोहड़ू क्षेत्र के सिंगिया नामक व्यक्ति द्वारा सिरमौर से एक विवाहित स्त्री लाई गई थी, जिस पर गीत भी बना है, जो आज भी प्रसिद्ध है।

हारकर्न : द्वितीय विवाह की स्थिति में दिया जानेवाला जुर्माना। यदि कोई स्त्री अपने पति की सहमति के बिना किसी अन्य पुरुष के साथ भाग जाती है तो उसका पहला पति उस व्यक्ति से न्यायालय के माध्यम से जुर्माने के रूप में कुछ राशि वसूल कर सकता है। यह राशि 'रीत' की राशि के अतिरिक्त होती है।

होरोंग : (सि.) 'हार' विवाह के अंतर्गत लड़की के हरण के दंडस्वरूप लड़के द्वारा दिया जानेवाला हरज़ाना। इसे दोनों पक्षों के चुनिंदा व्यक्ति निर्धारित करते हैं। यह दंड नकद राशि या बकरे आदि के रूप में तय होता है।

अंत्येष्टि संस्कार

अंतकारी : (सि.) श्राद्ध के समय ब्राह्मणों को परोसा गया भोजन या उन्हें दिया जानेवाला सूखा अन्न।

अग्गीयूड़ : शवदाह के लिए आग ले जाने का पात्र। यह एक नया घड़ा होता है, जिसका ऊपर का हिस्सा काट दिया जाता है। इसमें गाय के गोबर के उपले जलाए जाते हैं। इसे ले कर एक व्यक्ति शवयात्रा में सबसे आगे चलता है। इसे चिता पर एक ही चोट से तोड़ा जाता है। यदि यह एक बार की चोट से न टूटे तो किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु की आशंका रहती है। इसे **ठिक्कर** तथा **घियारी** भी कहते हैं।

अद्ध मासकी : अर्द्ध+मासिकी। मृतक के निमित्त किया जानेवाला कृत्य। इसमें मृतक की मृत्यु की तिथि के पंद्रह दिन बाद मृतात्मा के निमित्त महाब्राह्मण को भोजन कराया जाता है या अन्नदान किया जाता है।

अधमारग : अर्द्धमार्ग। मृत्यु संस्कार का एक कृत्य। जब मृतक के शव को श्मशान ले जाया जाता है तो आधे रास्ते में अरथी को कंधे से नीचे उतारा जाता है। वहाँ उस को मुक्ति दिलवाने के निमित्त तीसरा पिंडदान किया जाता है और मिट्टी का एक घड़ा फोड़ा जाता है। उस स्थान से आगे अरथी उठानेवाले अपनी दिशा बदल लेते हैं।

अस्तु चुगणे : दे. फूल चुगणा।

आक्टो : (शि.) मृत्यु संस्कार से सम्बंधित एक कृत्य। मृत्यु के तीसरे दिन जब 'पुजियारा' को शुद्धि के लिए बुलाया जाता है तो वह एक स्लेट पर यंत्र बनाकर उस पर हवन करता है। कुछ देर बाद जलते हुए आक्टे अर्थात् हवन सामग्री के अंगारे को विशेष दिशा के मार्ग में फेंक दिया जाता है। लोक मान्यता है कि जहाँ पुजियारे द्वारा आक्टो फेंका जाता है, उस रास्ते में छोटे बच्चे आदि नहीं आने चाहिए।

आहर : पितरों के निमित्त दिया आहार। पितरों को विशेष दिनों में अर्पित अन्न या पकवान का नाम आहर है, जिसे पुरोहित प्राप्त करता है।

इक पैहरी : (चं.) दे. एकार।

उत्तर सराहणे सटणा : प्राणी के मरणासन्न होने पर उसका सिर उत्तर दिशा की ओर करना। इसके लिए भूमि को गोबर से लीप कर उसके ऊपर केले के पत्ते या कम्बल बिछा कर व्यक्ति को चारपाई से उतार कर उत्तर दिशा की ओर सिर करके लेटाया जाता है, ताकि चारपाई पर मृत्यु न हो। लोकविश्वास है कि चारपाई पर मृत्यु होने से प्रेतात्मा की गति नहीं होती।

उथारनी : (सि.) शवयात्रा में परम्परा से निर्धारित विश्रामस्थल। यहाँ विशेष शोक धुनें बजाई जाती हैं तथा शवयात्रा में सम्मिलित होने के लिए परिजनों की प्रतीक्षा की जाती है।

उपरेणा : (चं.) दे. टल्ली।

उल्टा गूशणा : (शि.) एक परम्परा जिसके अंतर्गत अंतिम यात्रा के लिए शव को घर से बाहर निकालते ही मृतक के सगे-सम्बंधी घर में दरवाजे की तरफ से भीतर की ओर झाड़ू-पोंछा लगाते हैं, जिसे उल्टा गूशणा कहा जाता है।

एकार : (सि.) एकाहार। मृतक के परिजनों द्वारा एक, तीन या पाँच की संख्या में तेरहवीं तक दिन में एक ही बार भोजन किया जाता है, जिसे एकार और व्रत रखनेवालों को इकारुवा कहा जाता है। इन सब को मृतक की खास पसंद का भोजन खिलाया जाता है। परोसे गए भोजन में से कुछ अंश अंजीर के पत्ते पर निकाल कर, छत के रोशनदान में से मृतक के लिए प्रतिदिन तर्पण किया जाता है।

ओम काफरा : (कि.) मार्ग वस्त्र। जब मृतक के शव को श्मशान के लिए ले जाया जाता है तो अरथी के आगे-आगे दो व्यक्ति एक वस्त्र को टेढ़ा फैलाकर चलते हैं जिसमें राम-नाम की छाप लगी होती है। इसका प्रयोजन मृतात्मा का मार्गदर्शन करना होता है।

औतर एणा : (कु.) मृत आत्मा का किसी व्यक्ति में प्रवेश होना। अल्पमृत्यु की स्थिति में कदाचित् मृतक की आत्मा शोक संतप्त किसी व्यक्ति में प्रवेश करती है। तब उसके शरीर में कुछ अकड़ाव आ जाता है और वह अपने दाँत पीसता है। ऐसी अवस्था में उससे जो कुछ पूछा जाता है, मृत आत्मा उसके माध्यम से उसका उत्तर देती है।

औतरा : दे. मोहरा।

औह्ल़ : (कु.) दे. सल़।

कंधा बदल़णा : मृत्यु सम्बंधी कार्य। अरथी को घर से ले जाने के बाद एक विशेष दूरी पर जाकर उसे नीचे रखा जाता है और वहाँ पर एक पिंड का दान किया जाता है। इस समय अरथी को आगे से उठानेवाले पीछे की ओर हो जाते हैं और पीछेवाले अगली ओर से अरथी को कंधा देते हैं।

कजिया : मृत्यु सम्बंधी संस्कार। दे. मुकाह्ण।

कट्ठी : (चं.) क्रिया। चम्बा ज़िला के पांगी क्षेत्र में कट्ठी मृत्यु के तीसरे, नवमें या तेरहवें दिन की जाती है। इस दिन तक मृतक के सम्बंधी उपवास रखते हैं और इसी दिन शुद्धि होती है। कपड़े, खेस आदि धो लिए जाते हैं और उपवास तोड़ लिया जाता है। क्रियावाले दिन पुरोहित पत्थर पर मृत व्यक्ति की तस्वीर उकेर कर पनिहार पर स्थापित करता है, जिसे 'धाच्च' कहा जाता है। एक मास के बाद बड़ी कट्ठी की जाती है। इस दिन सभी लोगों को भोज दिया जाता है। सम्भव हुआ तो भेड़ या बकरी भी काटी जाती है।

कठवासी : वे व्यक्ति जो शव को जलाने के लिए अंतिम समय तक चिता के पास रहते हैं। दे. दग्याहरू।

कड़छू : राजाओं के निधन पर दाह संस्कार के समय का भोज्य पदार्थ खानेवाला व्यक्ति।

कनाकत : आश्विन कृष्ण पक्ष में किए जानेवाले श्राद्ध। उस समय सूर्य कन्या राशि में प्रवेश करता है, अतः इसे कन्यागत और मुख-सुख से कनाकत कहा गया। इन दिनों अपने पितरों के निमित्त उनकी मृत्यु की तिथि के दिन श्राद्ध किया जाता है। चम्बा व मंडी क्षेत्र में प्रथा है कि मृतक का चतुर्वार्षिक एक बार ख्याह की तिथि को किया जाता है तथा दूसरी बार पार्वण श्राद्ध के समय, जिसे कनाकत-चबर्खा कहा जाता है।

कनेड़ा : दे. कान्ना।

कपाल-क्रिया : शवदाह में मुर्दे की ख़ोपड़ी को बाँस से फोड़ने की क्रिया। जब मुर्दा आधा जल चुकता है तो मृतक की अधजली खोपड़ी को बाँस के डंडे के एक सिरे से फोड़ कर उसमें घी डाल दिया जाता है। यह कृत्य मृतक का सबसे बड़ा पुत्र और पुत्र के अभाव में भतीजा अथवा भाई करता है। जो व्यक्ति कपाल क्रिया करता है, मृत्यु से सम्बंधित समस्त कर्म

अकसर वही सम्पन्न करता है। शवदाह के समय मृतक की कपाल-क्रिया करना अनिवार्य होता है, क्योंकि इसके बिना संदेह बना रहता है कि कोई तांत्रिक तंत्र विद्या में प्रयोग के लिए मृतक की साबूत खोपड़ी को न ले जाए। लोक विश्वास है कि पुत्र के द्वारा कपाल-क्रिया हो जाने पर मृतक की गति हो जाती है, अन्यथा वह भूत-प्रेतों की योनि में भटकता-फिरता रहता है।

करडा वार : सख्त वार। मंगल, वीर, शनि और रविवार को करडा वार माना जाता है। कुछ क्षेत्रों में इन दिनों किसी के घर शोक प्रकट करने नहीं जाते।

करुआ : (मं.) दे. तरमड़ा।

कलाई : (मं.) मृतक के निमित्त रखे चावल, गरी, छुहारे, दाख, दाड़ू, अखरोट, खीरा, सेब के टुकड़े आदि। क्रिया-कर्म, वार्षिक, द्विवार्षिक, चतुर्वार्षिक के अवसर पर ये एक दोने में रखे जाते हैं, जो बाद में पंडित को दिए जाते हैं।

कलूतरी : (कु.) दे. कोरा।

कांबल बछाणा : दे. पट्टू बछाणा।

काक बल़ : कौवे को दी जानेवाली बलि। श्राद्ध में बनाए भोजन में से गौ-ग्रास के साथ कौए के लिए भी ग्रास निकाला जाता है। श्राद्ध का भोजन करवाने से पूर्व मृतक का सम्बंधी कौवे को काउ-काउ... बुलाकर घर की छत पर रोटी के टुकड़े, दही, बड़े और उसके उपरांत पानी फेंकता है। लोक मान्यता है कि मरने के बाद पितर कौओं का रूप धारण कर भोजन प्राप्त करते हैं। इसे काओल़ भी कहते हैं।

काण : (सि.) एक संस्कार जो मृत्यु के तेरहवें या सोलहवें दिन किया जाता है। दे. तेरहवीं। इस दिन सभी रिश्तेदार सम्मिलित होते हैं, जिन्हें काणू-पाऊणे कहा जाता है। वैसे यह शब्द गाली रूप में प्रयुक्त होता है, जैसे जब कोई किसी को तंग करता है तो उसे कहा जाता है–*तेरी काण कोरू आं।*

काणे री मौड़ : मुर्दघाट। यह उस स्थान पर बनाया जाता है, जहाँ कभी व्यक्ति का शत्रु रहता हो और आपसी दुश्मनी के कारण वह स्थान छोड़ कर वहाँ से कहीं चला गया हो या उजड़ गया हो। इसी शत्रुता के कारण इष्ट देव की आज्ञा लेकर वहाँ श्मशान बना दिया जाता है।

कानड़ : दे. कान्ना।

कान्ना : (बि.,ह.) बाँस प्रजाति का एक पौधा, जो झोंपड़ी छाने के काम आता है। इससे कलम और छाज आदि भी बनाए जाते हैं। इसका प्रयोग उस समय भी किया जाता है जब कोई प्राणी शाम के समय या रात को मरता है और उसे जलाना सम्भव नहीं होता, तब शव के साथ उसकी लम्बाई का एक कान्ना रख दिया जाता है। लोक विश्वास है कि ऐसा न करने से शव की लम्बाई बढ़ जाती है। कान्ना को **कानड़, कनेड़ा** भी कहते हैं।

का पाणा : (चं.) दे. श्राद्ध।

किरया : मृतक के निमित्त किया जानेवाला संस्कार। इसे मृतक के परिवारवाले वर्ण अनुसार ब्राह्मण ग्यारहवें दिन, क्षत्रीय तेरहवें दिन, वैश्य सोलहवें दिन तथा दलित एक मास के उपरांत महाब्राह्मण से करवाते हैं। इसमें मृतक के निमित्त क्रियाकर्म करनेवाले पंडित को शय्यादान, गोदान, बरतन, जूते आदि का दान किया जाता है। जनमानस में धारणा है कि इससे मृतात्मा को शांति मिलती है।

कीरने : (ऊ.,ह.) मृत्यु गीत। 'वार' के दिनों में स्त्रियाँ मृतक के गुण कहती कीरने गाती हुई छातियाँ पीटकर **स्यापा** करती हैं। कीरने के बोल पहले नाइन बोलती है, फिर शेष महिलाएँ उसे दोहराती हैं।

कृष्णे भाट : ऐसा ब्राह्मण जो मृत्यु सम्बंधी सभी संस्कार करवाता है और उस समय किया जानेवाला दान भी लेता है।

कैह्त : (बि.,मं.) दे. कौह्थ।

कोटङ् : (कि.,ला.) चबूतरा। किन्नौर में मृतकों के नाम पर पत्थरों के चबूतरे बनाए जाते हैं, जिन पर विशेष उत्सवों के अवसर पर झंडियाँ चढ़ाई जाती हैं। कोटङ् को **शेखर** अथवा **शखरि** भी कहा जाता है। ऐसी प्रथा लाहुल में भी है।

कोड़वी रोटी : (सि.) वह भोजन जो शवदाह के बाद वापिस आए सम्बंधियों को खिलाया जाता है। इसे लहसुन-प्याज तथा छौंक के बिना बनाया जाता है।

कोरा : नया, जो धुला न हो, मांड़ीदार कपड़ा। कफ़न। मुर्दे पर लपेटा जानेवाला सफेद कपड़ा। यह व्यक्ति के मरने के बाद ही लाया जाता है। इसे किसी लिफाफे, थैले में डालकर नहीं लाया जाता है, बल्कि हाथ में खुला लाते हैं, जिससे किसी भी देखनेवाले को यह आभास हो जाता है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गई है। मृतक को नहला कर जब धरती पर

लेटाते हैं तो उसके नीचे इसे बिछा देते हैं। इसमें शव को लपेट कर इसे हाथ से सिल दिया जाता है। इसके पश्चात् अरथी के ऊपर सभी सगे-सम्बंधी चादर डालते हैं। चादर व कफ़न बाद में या तो रीति अनुसार किसी जाति विशेष के लोगों को दिए जाते हैं या साथ ही जला दिए जाते हैं और कुछ हरिद्वार के पंडे के लिए भी ले जाते हैं। उल्लेखनीय है कि बच्चे के शव को केवल कोरे में ही लपेटा जाता है और इस कपड़े को उसके साथ ही दबा दिया जाता है।

कौड़ी रात : (चं.) मृत्यु के दसवें दिन को कौड़ी रात कहते हैं। इस दिन शोक में बिछाया गया पट्टू (कंबल) प्रातः चार बजे उठा दिया जाता है। परिवार के सभी सदस्य नहाते हैं। घर की सफाई और कपड़ों की धुलाई की जाती है।

कौह्थ : मृतक के निमित्त किया जानेवाला उपवास। घर में किसी की मृत्यु वाले दिन परिवार के सदस्य तथा निकट सम्बंधी केवल एक समय भोजन करते हैं। अगले दिन से सभी का कौह्थ रखना आवश्यक नहीं होता। लेकिन पिंडदान करनेवाले को क्रिया-कर्म तक उपवास रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य भी इच्छानुसार कौह्थ रखते हैं। यह शब्द सं. क्वाथ से निरसृत हुआ है। क्वाथ का अर्थ कष्ट, शोक, दुख, व्यसन है। यहाँ यह दुख और शोक में किये जानेवाले उपवास के लिए विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसे ध्वनि भेद से **कैह्त** भी कहते हैं।

क्लुतरि : (कु.) दे. कोरा।

खटरस दान : दशदान। किसी की मृत्यु पर किया गया दान। यह सभी वर्णों द्वारा किया जाता है। इसमें दस वस्तुओं, यथा—गाय, भूमि, तिल, स्वर्ण, घृत, वस्त्र, धान, गुड़, रजत और नमक का दान किया जाता है।

खाट : दे. फड़क।

खाडी खाणी : सम्बंध तोड़ना। परिवार का कोई व्यक्ति यदि कुष्ठ या तपेदिक रोग से पीड़ित होकर मरता है तो उसे जलाने के बजाए दबाया जाता है। उसके निमित्त न दीपक या ठीकरा रखा जाता है और न ही कोई क्रिया-कर्म आदि संस्कार किए जाते हैं। जब परिवार-जन उसे दबाकर लौटते हैं तो कहीं बकरा भी काटा जाता है और सब उसका माँस खाते हैं। इससे यह माना जाता है कि अब मृतक से सदा के लिए सम्बंध समाप्त हो गया। यह कृत्य एक तरह से महामारी से सम्बंध तोड़ने का प्रतीक भी मालूम होता है।

खाडु : (मं.) एक व्यक्ति विशेष जो स्तर में 'चारज' से निम्न होता है। यह मृत्यु सम्बंधी संस्कारों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मृतक के ऊपर डाली गई चादरों में से कुछ चादरें खाडु को दी जाती हैं। मृतक के निमित्त नौ दिनों तक जलाए दीपक के पास रखा 'नटा नसरावाँ' तथा सपिंडीकरण के समय वस्त्र तथा दक्षिणा इसे दी जाती है। समय के साथ इस जाति के लोग दुर्लभ होते जा रहे हैं।

खाप : वह खाद्यान्न जो मृतक के सम्बंधी और बांधवों द्वारा शोक के दिनों में लाया जाता है। यह मृतक परिवार के सहायतार्थ होता है।

खापण : (बि.) दे. कोरा।

खूड : गोशाला। मृत्यु सम्बंधी एक संस्कार । यह मृत्यु के पाँचवें दिन होता है। इस दिन मृतक के सगोत्री और सगे-संबंधी उसके घर एकत्र होते हैं और क्रिया के लिए लकड़ी काटते हैं। घर के कपड़े धोते हैं और खूड यानी गोशाला साफ करते हैं। मुख्य कार्य खूड साफ करने का होने के कारण सम्भवतः इसका यह नाम पड़ा हो।

खोबरू : (शि., सि.) संदेशवाहक। किसी व्यक्ति की मृत्यु की सूचना उसके सम्बंधियों तक पहुँचानेवाले निम्न वर्गीय व्यक्ति जो उसी दिन विभिन्न गाँवों के रिश्तेदारों के घर जाकर उन्हें लकड़ी डालने में सम्मिलित होने की सूचना देते हैं, उन्हें खोबरू कहा जाता है। इसके पारिश्रमिक के रूप में प्रत्येक परिवार उन्हें एक प्रस्थ (5 सेर) अनाज देता रहा है। अब यह सूचना दूरभाष पर ही दी जाती है।

ख्याह : मृत्यु से सम्बंधित एक कृत्य। यह मृतक के मरने की तिथि पर प्रतिवर्ष किया जाता है। इस दिन मृतक के नाम पर पंडित को भोजन करवाया जाता है तथा वस्त्र व दक्षिणा दी जाती है। यदि मृतक पुरुष हो तो पंडित को और यदि स्त्री हो तो पंडिताइन को भोजन करवाया जाता है।

गंगमाला : एक माला विशेष। मृतक की अस्थियों को गंगा में प्रवाहित करने गए व्यक्ति, वहाँ से गंगा जी का प्रसाद तथा मालाएँ लाते हैं, जो विशेष प्रकार के घास की बनी होती हैं। इस माला को गंगमाला कहते हैं। ये मालाएँ धर्मशांतिवाले दिन कन्याओं और विवाहित धी-ध्याइणियों में बाँटी जाती हैं।

गऊ ग्रास : गाय के लिए निकाला गया प्रथम ग्रास। यह एक समय प्रातः के भोजन से रखा जाता है। इसे 'मणश' कर गाय को खिलाया जाता है।

थाली से गो-ग्रास न निकालने के विकल्प में तवे से प्रथम रोटी उतार कर, उस पर दाल-सब्जी रख कर गाय के निमित्त रखी जाती है। घर में किसी की मृत्यु हो जाने पर परिवार का हर सदस्य उपवास रखता है और एक समय भोजन करता है। उस समय गौ-ग्रास रखना अति आवश्यक माना जाता है।

गऊदान : दे. गोदान।

गऊ मणसणा : दे. गोदान।

गति : (कु.) मृत्यु सम्बंधी एक संस्कार। यह मृत्यु के तीसरे, पाँचवें या सातवें दिन होता है। इसकी तिथि या तो व्यक्ति की मृत्यु के दिन निश्चित की जाती है या दूसरे दिन। यह प्रायः 'बाई पाँधे' करनेवालों पर निर्भर करता है, क्योंकि गति इसके बाद ही की जाती है। इस दिन मृतक के परिवारवाले अपने घर में साधारण भोज का आयोजन करते हैं, जिसमें खट्टी दाल अवश्य बनती है। इस भोज में नज़दीकी रिश्ते के घर से एक व्यक्ति अवश्य शामिल होता है। ये अन्न और पैसे के रूप में इन्हें **बरतण** देते हैं। भोजन तैयार होने पर सबसे पहले यह मृतक को अर्पित किया जाता है। इसके बाद परिवारवालों को हींग खिलाया जाता है। परिवार के पुरुष सदस्यों की 'भद्रा' की जाती है। इसी दिन शोक समाप्त हो जाता है। इससे पहले प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त तथा सायंकाल में घर की देहली पर ज़ोर-ज़ोर से विलाप करने की प्रथा रही है।

गभरुवटी : नवजात शिशुओं की मृत्यु हो जाने पर उन्हें दफनाने का स्थान। शिमला के कुछ क्षेत्र में इसे **सड़दाबणी** यानी सड़ने के लिए दबाना भी कहते हैं।

गमी : मृत्यु शोक। किसी की मृत्यु पर न केवल निकट सम्बंधी बल्कि पूरा गाँव उस शोक की स्थिति में सम्मिलित होता है। गाँव में यदि कोई उत्सव आदि हो तो उसे स्थगित कर दिया जाता है। यदि उस परिवार में कोई विवाह आदि हो तो गमी हो जाने पर उसे स्थगित कर दिया जाता है और यदि ऐसा सम्भव न हो तो बहुत साधारण रूप में सम्पन्न किया जाता है। गमीवाले घर में विशेषतया स्त्रियाँ स्त्रियों के पास तथा पुरुष पुरुषों के पास संवेदना प्रकट करने आते हैं।

गया-गोदावरी : पितरों को मोक्ष दिलाने के लिए पुत्र द्वारा उनके निमित्त क्रमशः हरिद्वार, काशी, मथुरा, वृंदावन आदि तीर्थों में पिंडदान किया जाता

है। फिर अयोध्या में सरयू नदी में रेत का पिंड दिया जाता है। उसके बाद पिता के मोक्ष के लिए पिंड दान गया में और माँ के लिए गोदावरी में किया जाता है। यहाँ पिंडदान करने के बाद मनुष्य मोक्ष को प्राप्त हो जाता है, ऐसी मान्यता है। तब उसका श्राद्ध करने की भी आवश्यकता नहीं रहती।

गरुड़ पुराण : अठारह पुराणों में से एक, जिसमें नरकों का वर्णन, प्रेतकर्म का विधान आदि है। इस पुराण को 'चारज' या अन्य कोई पंडित मृतक के घर में दस दिनों के भीतर पढ़ता है। इसे गाँव के लोग और सभी सगे-सम्बंधी सुनते हैं। सभी श्रोता पंडित की इस पोथी पर पैसे चढ़ाते हैं।

गहणे बसैहणे : (मं.) गहने उतारना। परिवार में किसी की मृत्यु होने पर उस घर की सभी सधवाएँ तथा धी-ध्याइणें अपने गहने उतार देती हैं। इन्हें धी-ध्याइणें 'किरया' वाले दिन तथा बहुए 'तेरहवीं' के दिन मुहूर्त के अनुसार पहनती हैं।

गाँठ : (मं.) दे. गोंठ।

गितकारेस गीथङ् : (कि.) एक गीत विशेष, जिसमें मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति की आत्मा की यात्रा, यमराज से मिलने तथा रल्डङ् पर्वत पर पहुँचने का वर्णन किया जाता है। किन्नौर के चगांव ग्राम में 'फुलैच' के अवसर पर इस गीत को आठ व्यक्ति रात भर खड़े रह कर गाते हैं तथा उन्हें वर्ष भर में मृत व्यक्तियों के परिवारों के लोग दिवंगत आत्माओं के नाम पर भेंट देते हैं। गीत में यमराज से आत्मा को भेंट स्वीकार करने के लिए गाँव में भेजने की प्रार्थना की जाती है। आत्मा के आगमन का विवरण आने पर मृतक के परिजन रोने लगते हैं और भेंट सामग्री गीत गाने वालों को देते हैं ताकि वे आत्मा तक वह सामग्री पहुँचा सकें।

गियारी : जौ, घी, भेखल, हल में से काटी गई लकड़ी का हवन। मृतक के घर शुद्धि के लिए इसे तीसरे या पाँचवें दिन किया जाता है। दे.-जन्म खंड।

गोंठ : (कु.) मरते हुए व्यक्ति के मुँह में डाले जानेवाले पाँच-रत्न। सोना, चाँदी, हीरा, ताँबा और तुलसी जैसे पाँच रत्न इसमें सम्मिलित रहते हैं। कई बार केवल सोने या चाँदी का अंश ही मुँह में डाला जाता है। अब पंचरत्न को पानी में डालकर, वह जल ही मुँह में डाला जाने लगा है। यह विश्वास किया जाता है कि इससे आत्मा को शांति मिलती है और प्राण जाते हुए कष्ट नहीं होता। मंडी में इसे **गाँठ** तथा शिमला में **शणंसा** कहते हैं।

गोआ पाणा : (चं.) दे. घरालना।

गोदान : गाय का दान। जब व्यक्ति जीवन के अंतिम क्षण गिन रहा होता है तो उसे चारपाई से उतार कर नीचे ज़मीन पर लिटा दिया जाता है। ज़मीन पर उतारते ही उससे गोदान करवाया जाता है। मरणासन्न व्यक्ति को गाय की पूँछ पकड़ा कर गाय के साथ श्रद्धानुसार कुछ पैसे आदि संकल्प के साथ दान करवा कर महाब्राह्मण को दिए जाते हैं। जन विश्वास है कि गाय वैतरणी पार करने के लिए विशेष सहायक सिद्ध होती है। गाभिन गाय का दान निषिद्ध होता है।

लड़की की शादी में भी गोदान का विधान है। गाय को पूरी तरह सजाया जाता है, यथा क्षमता पैर में चाँदी के घुँघरू पहनाये जाते हैं और सींग भी चाँदी से मढ़वा लिए जाते हैं। इसे कन्या के माँ-बाप दान करके लड़की को दे देते हैं।

घराल़ना : मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य। अरथी को घर से उठा लेने के पश्चात् औरतें घर की सफाई करके गाय के गोबर से घर की लिपाई करती हैं। इसे घराल़ना और कहीं **लिम्मणा** कहते हैं।

घियारी : दे. अग्गीयूड़।

चबर्ख : चतुर्वार्षिक श्राद्ध। लोक विश्वास है कि मृतक चार साल तक पितरों में शामिल नहीं होता और प्रेत योनि में रहता है। इससे छुटकारा दिलाने के उद्‌देश्य से चार साल बाद मृतक का चबर्ख किया जाता है, जिसे कुल पुरोहित से करवाया जाता है और इसे शय्या, गौ, वस्त्राभूषण, जूते, बर्तन आदि दान में दिये जाते हैं। इससे मृतक प्रेतत्त्व से छूट कर अपने पूर्वजों में मिलता है। चबर्ख के बाद इसका श्राद्ध किया जाता है।

चादर : अरथी पर डाली जानेवाली शोख रंग की चादर। मृतक के सभी सम्बंधी व मित्र शव पर चादर डालना पुण्यकर्म समझते हैं। अतः एक अरथी पर कई-कई चादरें पड़ती हैं। शवदाह से पहले उन चादरों को उठा लिया जाता है और कुछ चादरें 'चारज' को दी जाती हैं तथा शेष हरिद्वार में पंडों को दी जाती हैं।

चाब : (चं.,ह.) मृतक की धर्मशांति के दिन परिवार की विवाहित बेटियाँ शोकग्रस्त पुरुषों के सिर पर टोपी पहनाकर चबाने के लिए मक्की आदि के भुने दाने देती हैं, जिन्हें एक बार मुँह में डालकर थूक दिया जाता है और दूसरी बार चबाकर सब पुरुष एकदम खड़े हो जाते हैं।

चारज : महाब्राह्मण का एक वर्ग जो प्रेतकर्म कराता है और उसमें किया

जानेवाला दान लेता है। उसी को मृतक के नाम पर भोजन कराया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उसका खाया मृतक को पहुँचता है। स्त्री की मृत्यु पर उसके नाम पर दिया जानेवाला सामान चारज की पत्नी को दिया जाता है। पहले यह प्रचलन रहा है कि इस अवसर पर चारज जिस भी वस्तु की माँग करता था, वह उसे दे दी जाती थी। राज परिवार में किसी की मृत्यु होने पर तो चारज इतना धन-दौलत प्राप्त करता था कि वह मालदार हो जाता था। यही कारण था कि किसी सदस्य की मृत्यु होने पर महल की मूल्यवान वस्तुओं को उसकी दृष्टि से छिपा दिया जाता था। चारज स्वयं अपना शुद्धि संस्कार नहीं करवा सकते, अतः अपने परिवार में किसी की मृत्यु होने पर वे दूसरे चारज को बुलाते हैं।

चारा : बारीक व सूखी लकड़ियाँ। चिता में गीली और ताज़ा काटी गई लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है। इसलिए उसे जलाने के लिए चारा को बीच में डाला जाता है ताकि अग्नि ठीक से प्रज्वलित हो सके।

चिख : दे. मौउथड़।

चुआरू : (कां.) दे. तरमड़ा।

चूण : (चं.) पितर के निमित्त रखा भोजन। इसे गाय को दिया जाता है।

चोढ़ा शोटणा : (कु.) दे. भद्रा।

छंटचामो : (कि.) मृतक के निमित्त दिया जानेवाला भोज। शवदाह के बाद सुविधानुसार बारह दिन के बाद किसी भी दिन बंधुजनों को भोज दिया जाता है, जिसे छंटचामो कहते हैं। इस दिन बंधु-बांधवों को आमंत्रित कर खूब भोजन व शराब खिलाया-पिलाया जाता है और रात के समय एक शोकगीत गाकर शोकावधि की समाप्ति की जाती है। इसके बाद अन्य प्रकार के गीत आदि गाकर उत्सव मनाया जाता है। ऊपरी किन्नौर में इसे **छोत्पा** कहते हैं।

छमाही : मृत्यु के छह महीने बाद होनेवाला श्राद्ध। इस अवसर पर उसी ब्राह्मण को बुलाया जाता है, जो 'मासक' में आता है। इसे भोजन करवा कर वस्त्र आदि दान में दिए जाते हैं।

छाई धोणी : चिता को बुझाना। शव के पूर्ण रूप से जल जाने पर चिता की आग को नदी या खड्ड के पानी से बुझाया जाता है और राख व हड्डियों को धोकर जल में प्रवाहित किया जाता है। यही कारण है कि

श्मशान प्रायः पानी के किनारे ही होते हैं। यदि बहता पानी निकट न हो तो श्मशान की राख उठाकर निकट की नदी तक ले जा कर बहाते हैं।

छिजाणो : (सि.) दूध पीते बच्चे की मृत्यु।

छीटा लैणा : मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य। धर्मशांति वाले दिन क्रिया की रस्म पूरी हो जाने के बाद किसी खुले पात्र में पानी और पंचगव्य में तिल डाल कर परिवार के सभी सदस्यों पर दूर्वा या कुशा से इस जल के छींटे दिए जाते हैं, जिससे पातक की अशुद्धि मिट जाती है।

छेउआ : (मं.) कौवे के लिए निकाला गया ग्रास। माता या पिता में से किसी की मृत्यु होने पर कर्म करनेवाला बेटा दस दिनों तक उपवास रखता है और अपने लिए स्वयं भोजन तैयार करता है। इसमें से सर्वप्रथम वह एक भाग किसी साफ पटरे या पत्थर पर निकाल कर इसे कौवे के लिए किसी पेड़ पर छोड़ आता है, इसे छेउआ कहते हैं। इसके बाद वह स्वयं भोजन ग्रहण करता है।

छोगा : (ला.) क्रिया-कर्म। जनजातीय क्षेत्र लाहुल में मृतात्मा की शांति और सद्गति के लिए छोगा किया जाता है, जो चार से नौ दिनों तक चलता है। इन दिनों लामागण कई प्रकार के अनुष्ठान करते हैं और प्रतिदिन कोई न कोई ग्रामवासी सहायता करने आता है, साथ ही सांत्वना देने और शोक प्रकट करनेवाले भी आते रहते हैं। छोगा के अंतिम दिन गाँववालों को ब्रह्मभोज दिया जाता है और लामाओं को दक्षिणा दी जाती है। मान्यतानुसार मृत्यु के उनचासवें दिन जब आत्मा यमलोक में प्रवेश करती है, उस दिन भी छोगा अनुष्ठान का आयोजन कर ग्रामवासियों को भोजन कराया जाता है और छंग (नशीला पेय) पिलाई जाती है।

छोत्पा : (कि.) दे. छंटचामो।

छौर : (मं.) दे. भद्रा।

जामणी सींज : (सि.) घर में एक पीढ़ी की समाप्ति पर या किसी विशेष व्यक्ति के मरने पर तेरहवीं के दिन सहभोज के बाद मध्य रात्रि में होनेवाली विशेष पूजा, जो प्रेतात्माओं के अनिष्ट से परिवार की रक्षा हेतु करवाई जाती है। इस पूजा के लिए एक सम्बंधी को भी तीन दिनों तक रुकना पड़ता है। इसके लिए सर्वप्रथम किसी पात्र में जौ बीजे जाते हैं तथा परिवार के सभी सदस्यों को जंत्र बाँधे जाते हैं। आठ दिन तक सभी परिवारजनों को इस रात्रिपूजा में सम्मिलित होना पड़ता है। इतने दिनों तक उस घर से कोई भी

वस्तु बाहर नहीं जाती है। ठीक आठवें दिन उस पात्र को जिसमें जौ बीजे होते हैं, प्रेतात्मा की तृप्ति हेतु छत पर रखा जाता है।

जिनस्त्रेक्च : (ला.) मृतक के निमित्त किया गया हवन। शव को चिता में स्थापित कर देने के बाद लामा उसके निकट एक दीप जलाता है। इसी के साथ अलग से अग्नि प्रज्वलित कर के मंत्रपाठ पूर्वक हवन करता है, जिसे जिनस्त्रेक्च कहते हैं।

जिमणा : (सि.) खास अवसर पर विशेष आग्रह से आमंत्रित ब्राह्मणों द्वारा ब्रह्मभोज स्वीकार करना जिमणा कहलाता है। कई लोग मनोकामना पूरी करने के लिए भी ब्राह्मणों को जिमाणे की मनौती करते हैं। भारतीय संस्कृति में पवित्र मानी जानेवाली गौ भी जिमाई जाती है।

जुठालि़णो : (शि.) मृतक की मौत के ग्यारहवें दिन अथवा कई बार यदि ग्यारहवाँ दिन दूसरे मास में जाता हो तो नौवें दिन की जानेवाली शुद्धि। इस दिन गाँववाले तथा नाते-रिश्तेदार **बरतण** देने आते हैं और यहाँ भोजन करते हैं।

जेउड़ा शेटणा : (कु.) यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु ऊँची चट्टान, पहाड़, ढाँक या वृक्ष से गिर कर हो जाए तो उसका प्रेत तब तक लोगों को डराता, धमकाता और तंग करता है जब तक उसका श्वास एकत्रित न किया जाए। इसके लिए पराल को बाट कर इतनी लम्बी रस्सी बनाई जाती है, जो व्यक्ति के गिरने के स्थान से लेकर उसकी पड़ी लाश तक पर्याप्त हो। तब उसका गोला बना कर उसे अभिमंत्रित करके गिरने की जगह से ऐसे ही फेंका जाता है जैसे वह व्यक्ति गिरा हो। उस रस्सी को दो, चार या छह दिनों तक वैसे ही रखने के बाद, उसे नीचे की ओर खींचा जाता है और शव के गिरने के स्थान पर दबा दिया जाता है। उसके ऊपर कीलें गाड़ी जाती हैं। लोक विश्वास है कि इससे उसकी भटकती आत्मा शांत हो जाती है। इस क्रिया को **शाह ढाबणा** भी कहते हैं।

जोलारे : (शि.) किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर दूर के विशेष सम्बंधियों को सूचना देने के लिए भेजे जानेवाले संदेशवाहक। ये किसी समुदाय विशेष के लोग होते हैं। सूचना मिलने पर मृतक के सम्बंधियों के साथ उनका लगभग पूरा का पूरा गाँव अंतिम दर्शनों के लिए आता है। कभी-कभी तो यह संख्या सैकड़ों में होती है।

जौंरा रा हिस्सा : यमराज का हिस्सा। शवदाह के पश्चात् घर लौटने पर

'दगाऊ' को भोजन कराया जाता है और उन में से एक व्यक्ति उस भोजन में से एक ग्रास उठाकर बायें हाथ से सिनाली (छत से धुआँ निकलने की चिमनी) से श्मशान की ओर जौंरा यानी यम के लिए फेंकता है।

झोकू : दे. ठुरनाठी।

झोरा : दे. ठुरनाठी।

टल्ली : सफेद रंग का चौकोर कपड़ा। इसे मुखाग्नि देनेवाला व्यक्ति अपने सिर पर 'दसन्हाण' तक बाँधता है। इस दिन टल्ली को सिर से खोला जाता है और 'किरया' वाले दिन सगे-सम्बंधी इसे पगड़ी देते हैं।

टाला : (शि.) मृतक पर डाला जानेवाला चादरनुमा वस्त्र। मृतक को जब अंतिम दर्शनों के लिए खुले प्रांगण में रखा जाता है तब रिश्तेदारों की तरफ से मृतक पर टाला डालने की रस्म होती है। टाला विशेष तौर पर मृतक की ससुराल, बहनोई तथा बहू के मायकेवालों की तरफ से डाला जाता है। गाँववालों की तरफ से एक सामूहिक टाला भी डाला जाता है। जिस व्यक्ति के शव पर जितने अधिक टाले पड़ते हैं, उसे उतना ही भाग्यशाली माना जाता है। इसे कई क्षेत्रों में **मसरू** भी कहते हैं।

टोपोरी : बाँस की बनी टोकरी जिसमें तिल, जौ, घी आदि शव के साथ श्मशान तक ले जाया जाता है।

ठंडी लकड़ी : मृतक के वंश के लोगों तथा भानजों द्वारा चिता में आग लगाने से पहले जो लकडी डाली जाती है, उसे ठंडी लकड़ी कहते हैं।

ठिक्कर : दे. अग्गीयूड़।

ठीकरा : मिट्टी का बर्तन या उसका टुकड़ा। किसी व्यक्ति के मरणोपरांत दस दिन तक इसकी ओट में दीपक रखा जाता है, जिसे दसवें दिन ब्रह्ममुहूर्त में निर्जन स्थान में फेंका जाता है। मृत व्यक्ति के दाह संस्कार हेतु मृतक के घर से आग जला कर ले जाने का मिट्टी का पात्र भी ठीकरा है। ध्वनि भेद से कहीं इसे **ठिक्कर** भी कहते हैं। दे. अग्गीयूड़।

ठुई : (ला.) मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य। शवदाह के बाद चिता से संचित अस्थियों को एक थैली में डालकर घर लाया जाता है। वहाँ उन्हें थैली से बाहर निकालकर उन पर जल छिड़काया जाता है, जिसे ठुई अर्थात् पवित्र स्नान कहा जाता है। तब पुनः थैली में भरकर ऊपर से गाँठ लगा दी जाती है।

ठुरनाठी : (सि.) अरथी में से निकाला गया बाँस का लम्बा डंडा, जिससे चिता पर रखे गए शव के अधजले अंगों को हिलाया जाता है, ताकि शव पूर्ण रूप में जल सके। कपालक्रिया भी इसी डंडे से की जाती है। जहाँ बाँस नहीं होता वहाँ किसी दूसरी लम्बी लकड़ी का उपयोग होता है। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में इसके पर्याय **झोकू, बहली, झोरा, मुजयाठी** (सि.), **डोई** (कु.) हैं।

डाक : (सि.) शव को श्मशान ले जाते हुए आम रास्ते से अलग शवयात्रा के रास्ते पर जहाँ दोराहा आता हो, हल के अग्रभाग में लगनेवाले सख्त लकड़ी के हिस्से पर जिसमें लोहे का फाला लगाया जाता है, जिसे नासड़ा या नांगल कहा जाता है, परांदा लपेटा जाता है और उसे वहाँ गाड़ दिया जाता है ताकि प्रेतात्मा वापिस आकर ग्रामीणों को भयभीत न करे। यह एक तांत्रिक क्रिया है।

डोई : (कु.) दे. ठुरनाठी।

ढड : (चं.,ह.) किसी की मृत्यु पर बजाया जानेवाला ताल विशेष। दे. धाए।

ढुंडकू : (शि.) मृतक के निमित्त रखी गई विशेष सामान से युक्त टोकरी। मृतक के सिर की ओर एक विशेष आकृति की टोकरी रखी जाती है, जिसमें 'मूड़ी', गरी का गोला, मेवे आदि भरे होते हैं। मृतक यदि स्त्री हो तो इसमें श्रृंगार की सामग्री भी रखी जाती है। यह सारी सामग्री बाद में बजंत्रियों को दी जाती है, क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में मृत्यु पर शोक का नगाड़ा भी बजाया जाता है।

तरकाष्टा : त्रिकाष्ठा। मृत्यु सम्बंधी संस्कार में प्रयुक्त लकड़ी का बना तिकोना उपकरण। मृतक के निमित्त शाम के समय जो कर्मकांड किया जाता है, उसमें दीपक और तरकाष्टा प्रयोग में लाए जाते हैं।

तरमड़ा : (बि.,सो.) मृत व्यक्ति के घर पर दस दिनों तक रखा जानेवाला घड़ा। मिट्टी का एक मटका जिसके पैंदे में छिद्र किया जाता है, उसमें तिल, चावल, फूल और दूध मिश्रित पानी भर कर उसे घर के बाहर लटका दिया जाता है। उसके नीचे गोबर का पिंड, जिसमें दूर्वा लगाई होती है, स्थापित किया जाता है। मटके से इस पिंड पर बूँद-बूँद जल गिरता है। लोक मान्यता है कि यह पानी मृतक के मुँह में पड़ता है। यह घड़ा क्रिया तक लटकाया जाता है और यह ध्यान रखा जाता है कि घड़े से लगातार पानी टपकता रहे। अतः कुछ-कुछ देरी बाद घड़े में ताज़ा और स्वच्छ जल डाला

जाता है। क्रिया के दिन ब्रह्ममुहूर्त में इसे बहते जल मे बहाया जाता है। कांगड़ा में इसे **चुआरू** और मंडी में **करुआ** चम्बा में **पत्तरालोई** और शिमला के कुछ क्षेत्रों में **घरमौड़ा** कहते हैं। मिट्टी का कोरा घड़ा, सफेद कपड़ा, सिल्की चादर तथा जौ आदि वस्तुएँ घर में अवश्य सुरक्षित रखी जाती हैं। इन्हें जीने-मरने की चीज़ें कहते हैं।

तिवार : (शि.) मृत्यु सम्बंधी एक संस्कार। शिमला ज़िला के ऊपरी क्षेत्रों में क्रियाकर्म के तीसरे मास मृतक के निमित्त भोज दिया जाता है, जिसे धर्म-शांति भी कहते हैं। इस दिन सामर्थ्यानुसार ब्राह्मण से हवन करवा कर शैयादान किया जाता है। भानजे को भी नए वस्त्र पहनाकर भोजन कराया जाता है। तत्पश्चात् सभी परिजनों व गाँववालों को भोज खिलाया जाता है। इसी दिन निकट के किसी चश्मे या बावली पर मृतक के नाम से पानी का नालू लगाया जाता है। इस दिन के बाद परिवारवाले निकट सम्बंधियों के घर होनेवाले विवाह आदि समारोहों में भाग ले सकते हैं।

तुलका लगाणा : मृत्यु सम्बंधी संस्कार। यदि किसी छोटे बच्चे की मृत्यु संक्रांति से तीन-चार दिन पहले हुई हो तो तीसरे दिन क्रिया कर दी जाती है, जिसे तुलका-लगाणा कहा जाता है। लोक विश्वास है कि शोक को दो महीनों में नहीं बाँटना चाहिए, इसलिए संक्रांति से पहले ही शोक समाप्त कर दिया जाता है।

तेरहवीं : मृत्यु सम्बंधी संस्कार। यह संस्कार मृत्यु के तेरहवें दिन करते हैं। इस दिन तेरह ब्राह्मणों तथा कुटुम्बवालों को भोजन कराया जाता है। मृतक के सबसे बड़े पुत्र के सिर पर पगड़ी बाँधी जाती है। पगड़ी और इस दिन के भोज की व्यवस्था पुत्र के ससुरालवाले करते हैं। उसी दिन मृतक के नाम पर वस्त्र, आभूषण और शय्या का दान किया जाता है। यदि मृतक स्त्री हो तो स्त्रियों के वस्त्र और यदि पुरुष हो तो पुरुष के वस्त्र 'चारज' को दिये जाते हैं। तेरहवीं होने से पहले अगर मृतक के कुल में कोई मांस, मछली, हींग आदि खा ले तो मान्यता है कि उसका कुप्रभाव कुल की किसी न किसी शादी पर पड़ता है और ऐसे अवसर पर किसी की मृत्यु होने के कारण उत्सव शोक में बदल जाता है।

तेल कपड़ा : (कु.) मृतक के निमित्त दिया जानेवाला सरसों का तेल तथा कपड़ा। कपड़ा प्रायः मृतक की अरथी के ऊपर ही डाला जाता है, लेकिन किसी कारणवश यदि यह उस समय न दिया जाए तो दस दिनों के भीतर

कभी भी पैसों के रूप में तेल के साथ दिया जाता है। तेल न दिए जाने की अवस्था में भी पैसे ही दिए जाते हैं।

त्रिणी पाणी : (चं.) अंत्येष्टि सम्बंधी एक कृत्य। शवयात्रा से पहले परिवार के बड़े-बूढ़े, स्त्रियाँ और बच्चे तीन प्रकार की लकड़ियाँ मुर्दे पर डालते हैं और उन द्वारा तीन बार उसकी उलटी परिक्रमा की जाती है। ये तीन तरह की लकड़ियाँ चंदन, आँवला और दाड़िम की होती हैं। कपाल-मोचन के बाद सभी लोग चिता में चंदन की लकड़ी डालते हैं। उसे भी त्रिणी कहते हैं। चम्बा में इस कृत्य को **मुट्‌टू पाणा** या **लांमु लाणा** भी कहा जाता है। कई जगह इसे **धरम लकड़ी** कहते हैं।

थुल्मा : (ला.) मृतक क्रिया के अवसर पर पारस्परिक लेन-देन की एक प्रथा, जिसका प्रचलन लाहुल की चंद्रभागा घाटी में है। इसमें परस्पर लेन-देन का व्यवहार रखनेवाले घरों में इन अवसरों पर बर्तनों के माप के हिसाब से अनाज लिया तथा दिया जाता है और इसका हिसाब रखा जाता है। विभिन्न परिवारों के बीच इस लेन-देन की मात्रा पहले से ही निश्चित होती है। अतः उतना अनाज ही दिया जाता है, जितना उस व्यक्ति के घर से आया हो। लेन-देन की इस प्रथा को थुल्मा कहते हैं। यह मृत्यु संस्कार को निभाने के लिए सामाजिक सहकार का उदाहरण है।

थूनिङ् : (ला.) मृत्यु सम्बंधी संस्कार का एक कृत्य अर्थात् दाल-रोटी को कौए को फेंकना। शव को श्मशान की ओर ले जाने के बाद घर में दाल या सब्जी के साथ एक रोटी को कौवों के निमित्त घर की छत पर डाल दिया जाता है। ऐसा विश्वास है कि कौए जब इसे खाते हैं तो उनके माध्यम से यह भोजन मृतात्मा को प्राप्त हो जाता है।

थौह बणाणी : (कु.) स्थान बनाना। मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य। यह मृत्यु के दूसरे दिन होता है। इस दिन प्रातः गाँव के प्रत्येक परिवार से एक पुरुष मृतक के घर जाता है। वे सभी आम रास्ते में, जो चलने के लिए सबसे अधिक प्रयुक्त होता हो, पत्थरों को चिन कर एक चबूतरा बनाते हैं जिसे स्थानीय बोली में थौह कहते हैं। थौह शब्द संस्कृत स्था धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ ठहरना, बैठना आदि है। लोक-विश्वास के अनुसार थौह मृतक के आराम हेतु बनाई जाती है।

दगवाई : (शि.) दे. दग्याहरू।

दगाऊ : शव को जलानेवाले व्यक्ति जो विषम संख्या में होते हैं और तब तक

श्मशान में ही रहते हैं, जब तक चिता पूरी तरह न जल जाए। दे. दग्याहरू।

दग्याहरू : कपालक्रिया के बाद शवयात्रा के साथ आए सभी लोग हाथ-पैर धोकर, त्रिणी डालकर लौट आते हैं। श्मशान में तीन या पाँच व्यक्ति रह जाते हैं, जो शव के पूरी तरह जल जाने के बाद ही लौटते हैं। इन व्यक्तियों को दग्याहरू कहा जाता है। जिला चम्बा में इनको **संघारू** और शिमला के कुछ क्षेत्रों में **दगाऊ, दगवाई, संगतेरू, कठवासी** तथा कुल्लू में **मदरौह्णू** कहते हैं। यहाँ मृतक के परिवारवाले शुद्धि के बाद इन्हें भोजन पर बुलाते हैं।

दवाल़ : (मं.) मृत्यु सम्बंधी शोक। यह मरने से पंद्रह दिन या बीस दिनों तक रहता है। इन दिनों मृतक के निमित्त उसके सगे-सम्बंधी एक समय भोजन करते हैं। भोजन में भात और रोटी मिश्रित रूप में खाई जाती है। यह बिना प्याज, हींग, लहसुन, बिना छौंक के तथा बिना तला हुआ होता है।

दवाल़ भानणा : (मं.) शोक को तोड़ना। मृत्यु के पंद्रह दिन बाद पंडित को मुहूर्त दिखा कर शोक समाप्त किया जाता है, जिसे दवाल़ भानणा कहते हैं। इस दिन वधू के मायकेवाले पुरुषों के लिए तौलिया तथा स्त्रियों के लिए चूड़ियाँ, बिंदी आदि सुहाग की वस्तुएँ लाते हैं। मायके से आई स्त्री शोक संतप्त परिवार की महिलाओं के सिर में तेल लगा कर उनकी चोटी बनाती है। इस दिन के बाद से ये हींग और तली हुई रोटी आदि खा सकते हैं। कुछ क्षेत्रों में ग्यारह या तेरह दिनों बाद क्रिया होने पर हींग का छौंक शुरू किया जाता है।

दशगात्र : मृत्यु के दसवें दिन पूरा होनेवाला एक औध्र्वदैहिक कृत्य। इस कर्म के अंतर्गत प्रतिदिन दिए गए पिंड से क्रमशः प्रेत के दस अंगों का निर्माण होता है। दस दिन तक प्रतिदिन शाम के समय मृतक के नाम पर गलगल के पत्तों के पाँच दोने जल, शहद, फूल, धूप, दीप रख कर दान किए जाते हैं तथा प्रातः प्रतिदिन पिंड तथा पानी मिश्रित दूध के दोने का मृतक के नाम संकल्प होता है। पिंड तथा दोने की संख्या प्रतिदिन एक-एक बढ़ाई जाती है, यानी पहले दिन एक, दूसरे दिन दो, तीसरे दिन तीन, यह क्रमशः किया जाता है। दसवें दिन हरिद्वार में पिंडदान किया जाता है।

दसन्हाण : मृत्यु सम्बंधी संस्कार। मृत्यु के दसवें दिन पूरा होनेवाला एक औध्र्वदैहिक कृत्य। किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उस परिवार में नौ दिन तक कपड़े नहीं धोए जाते, बाल नहीं बनाए जाते, हजामत नहीं की जाती।

तेल, साबुन आदि का प्रयोग नहीं किया जाता। दसवें दिन पिंडदान करने व दीया उठाने के बाद ये कृत्य होते हैं। दसवें दिन दो या तीन व्यक्ति 'ठीकरा', 'दीया' तथा **चुआरू** आदि को उठाकर दूर कहीं नदी, खड्ड, नाले या सूनी जगह पर ले जाते हैं। दीपक जलता हुआ ही ले जाया जाता है। वे अपने साथ सूखी लकड़ियाँ भी ले जाते हैं। साथ लाई गई सारी सामग्री को बड़ी सावधानी से जलाया जाता है। यह ध्यान रखा जाता है कि कोई चीज़ तनिक भी बचने न पाए। इस सामग्री को बड़े तड़के इसलिए ले जाया जाता है कि कोई व्यक्ति रास्ते में न मिले। ठीकरा उठाने के बाद उस स्थान पर छलनी में आटा डालकर छान दिया जाता है। सूर्योदय होने पर उस आटे पर किसी न किसी प्राणी का पाँव लगा हुआ देखा जा सकता है। लोक विश्वास है कि जिस जीव का पैर लगा हो, मृतक उसी योनि में जन्म लेता है।

इस दिन प्रातः पुरोहित पिंडदान कराता है। घर की औरत मौन रहकर, सारे घर में झाड़ू लगाकर, गोबर फेरती है। बिरादरी की औरतें इस परिवार के सारे वस्त्र धोती हैं। पिंड देनेवाला पिंड उठा लेता है। बुहार देनेवाली औरत दस दिन के कूड़े, बचे गोबर तथा जिन ईंटों पर पिंड पकाया होता है, उन्हें उठाकर एक टोकरी में रख लेती है; वह एक झाड़ू तथा आसन उस टोकरी में डालकर कुएँ की ओर बिना बोले सबसे आगे चलती है। गोपथ पार करके पगडंडी के किनारे वह उस कूड़े की टोकरी को रख देती है। उसके पीछे-पीछे अन्य स्त्री-पुरुष कपड़े धोने के लिए चलते हैं। मृतक के परिवार का एक सदस्य पंचगव्य तथा तेल आदि साथ ले लेता है। परिवार की एक औरत एक स्थान पर बैठकर कपड़े धोने लगती है तो शेष औरतें उसकी बायीं ओर क्रमशः बैठती जाती हैं। यदि पानी बहता हुआ न हो तो मर्द कुएँ से पानी निकाल कर देते हैं। मर्द नाई से हजामत करवा कर अपने पहने हुए वस्त्र धोते हैं और स्नान करते हैं। पिंडदान करनेवाला व्यक्ति पिंड प्रवाहित कर सिर की 'टल्ली' को भी वहीं प्रवाहित कर देता है। कपड़े धोने के बाद स्त्रियाँ भी स्नान करती हैं तथा पंचगव्य छिड़कती हैं। मृतक के परिवार की स्त्रियाँ शेष बचा साबुन और कपड़े धोने की थापी वहीं फेंक देती हैं और किसी धी-ध्याइण से सिर में तेल लगवा कर बचा तेल व कंघी भी वहीं फेंक देती हैं। यह प्रक्रिया समाप्त होने पर सबसे अंत में आनेवाला व्यक्ति सबसे पहले वापिस लौटता है। शेष लोग उसके पीछे चलते हैं। आधी दूरी तय करने पर सब थोड़ी देर के लिए बैठ जाते हैं, फिर

मृतक के घर के पास पहुँचकर, दूर्वादल तोड़कर मृतक के घर में प्रवेश करते हैं। कमरे में जल रहे तेल के दीपक के पास प्रत्येक व्यक्ति दूर्वादल रखकर, वहीं पड़े चने की दाल के भीगे दानों में से दो-तीन दाने उठाकर चबा लेता है। इसका आशय यह है कि भविष्य में घर में सुख-शांति रहे। सब कुछ दूर्वादल की तरह हरा-भरा रहे। प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में इसके पर्याय **दसाणक** (चं.), **दसौंग** (मं.), **दसुआँ** (कां.) हैं।

दसौंग : (मं.) दे. दसन्हाण।

दसाणक : (चं.) दे. दसन्हाण।

दसुआँ : (कां.) दे. दसन्हाण।

दाग देणा : दाग सं. दाह से व्युत्पन्न शब्द है। दाह का अर्थ जलाना, मुर्दा जलाना आदि है। अतः दाग देणा मृतक को जलाने का भाव या क्रिया है। इस कृत्य के अंतर्गत जब शव को चिता पर लिटा दिया जाता है तो उस का सबसे बड़ा पुत्र चिता को आग लगाता है। पुत्र के न होने की स्थिति में यह कार्य पौत्र से भी करवाया जाता है। वह भी न हो तो किसी निकट सम्बंधी द्वारा दाग दिया जाता है। चिता में आग लगाने से पूर्व मृतक की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की जाती है। जो व्यक्ति दाग देता है अकसर वही अस्थि बहाने हरिद्वार जाता है। श्मशान में अग्निदाह के समय या इसके उपरांत भी किसी की चिता को फूँक मार कर नहीं जलाया जाता। लोकविश्वास है कि इससे मृतक की आत्मा को कष्ट होता है। इसलिए चिता की अग्नि को घास या पत्तों से भरी डालियों से हवा दी जाती है। कई बार जलता हुआ शव अंत में थोड़ा-सा ढेले के रूप में रह जाता है, जो काफी प्रयत्न करने पर भी जलने में नहीं आता। ऐसी दशा में उसकी आत्मा को किसी प्रियजन के इंतज़ार में अटका हुआ माना जाता है। ऐसी परिस्थिति में मान्यता है कि उस घर का कोई व्यक्ति जब उस प्रियजन की ओर से लक़ड़ी डालता है तो वह ढेला बहुत जल्दी जल जाता है। किन्नौर तथा स्पीति के बौद्ध लोगों में अग्नि संस्कार के साथ-साथ पारसियों की भाँति ऊँचे टीले पर मृत शरीर को ले जाकर गिद्धों को खिलाने का रिवाज भी है।

दागू : दाह संस्कार में शामिल होनेवाले लोग। ये मृतक के निकट सम्बंधी और मित्र होते हैं। मनुष्य का शादी-गमी में शामिल होना जहाँ एक सामाजिक कर्तव्य है, वहीं दाह संस्कार में शामिल होना पुण्य कार्य भी

समझा जाता है। सभी दागू चिता पर धर्म-लकड़ी डाल कर अपने-अपने घर आते हैं। घर पहुँच कर इन्हें बाहर ही नहलाया जाता है। ये पहने हुए कपड़े धोकर दूसरे कपड़े पहनते हैं। गंगा जल छिड़क कर ही वे गृह में प्रवेश करते हैं।

दाल़ : चिता चिनते समय लम्बाई की ओर लगाई जानेवाली लकड़ियाँ, जो पाँच हाथ लम्बी होती हैं, दाल़ कहलाती हैं।

दिवा : दे. दीया।

दीया : मिट्टी का छोटा पात्र, जिसमें बत्ती डालकर तेल या घी के योग से जलाया जाता है। इसका प्रयोग मंदिर, देवालय, देवस्थान आदि में आराध्य देव के सम्मुख किया जाता है। जहाँ इसका प्रयोग मांगलिक अवसर पर होता है, वहीं मृत्यु की अशुभ घड़ी में भी इसका विशेष महत्त्व है। जब किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो उसके सिरहाने के पास सरसों के तेल का दीपक जलाया जाता है। यह मृत्यु के नौ दिन तक लगातार जलता रहता है। तेल खत्म हो जाने से यह बुझ न जाए और मृतात्मा को यमलोक के रास्ते में भटकना न पड़े, इसलिए दीये का रात-दिन पहरा दिया जाता है। दसवें दिन इसे प्रातः ही किसी जलाशय में बहाया जाता है।

दीये दीणा : (चं.) मृत्यु संस्कार से सम्बंधित कर्म। मृतक के सगे-सम्बंधी संध्या के समय चौबाटे में दस दिन तक दीपक जलाते हैं और कुछ देर तक वहीं बैठते हैं। लोक विश्वास है कि मृतात्मा को इससे राह में अंधकार नहीं होता और वह सुगमता से आगे बढ़ सकती है।

दुध फेरना : (कु.) शव के चारों ओर दूध फेरना। शव को जब अरथी पर रखते हैं तो मृतक के परिवारवाले तथा सभी निकट सम्बंधी इसके चारों ओर दूध की धार अर्पित करते हैं। इस समय दूध फेरनेवाला व्यक्ति तथा सभी उपस्थित स्त्रियाँ ज़ोर-ज़ोर से विलाप करते हैं। शोक ध्वनि के रूप में शंख बजाया जाता है।

दुम रातिङ् : (कि.) इकट्ठा होने की रात। दुम का अर्थ है एकत्र होना और रातिङ् का अर्थ है रात्रि। यह वह रात्रि होती है जिस दिन व्यक्ति की मृत्यु होती है। इसमें गाँव के लोग तथा सम्बंधी उस रात्रि को मृतक के घर में एकत्र होकर शोक मनाते हैं तथा शोक संतप्त परिवार के लोगों को तरह-तरह से सांत्वना देते हैं।

दुस : दोष। यदि किसी त्योहार के दिन घर में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाए तो वह दिन दुस यानी दूषित हो जाता है। उस त्योहार को भविष्य में तब तक नहीं मनाया जाता जब तक उसी त्योहार के दिन घर में कोई बच्चा पैदा न हो।

देवठी : (शि.) यह देव+स्थान का अर्थबोधक शब्द है। सं. देव का अर्थ स्वर्ग में विचरण करनेवाला दिव्य शक्ति सम्पन्न देवता है। हिन्दू मान्यतानुसार मनुष्य मरने के पश्चात् स्वर्ग चला जाता है। अतः कहीं देवठी का अर्थ मृतक की मूर्ति की स्थापना भी है। शुद्धि के दिन एक पत्थर पर मृतक की मूर्ति खुदवाई जाती है और पानी के पास स्थापित की जाती है। इसे प्रतिवर्ष वैशाखी के दिन फूल-माला चढ़ाई जाती है और बच्चे घर से भोजन ले जाकर इसे अर्पित करके स्वयं भी वहीं खाते हैं।

देहल़ : मरणासन्न व्यक्ति से करवाया जानेवाला दान। हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार ऐसा विश्वास किया जाता है कि व्यक्ति जो कुछ इस लोक में दान करता है, वही उसे परलोक में प्राप्त होता है। इसलिए पूरे हिमाचल में ऐसी प्रथा है कि मरणासन्न व्यक्ति से, चाहे वह अमीर हो या गरीब, विभिन्न प्रकार के अनाज, दालें, घी और मसाले आदि दान करवाए जाते हैं और ब्राह्मणों तथा गरीब व्यक्तियों में बाँटे जाते हैं।

द्वारे ढोल बजाणा : शोकग्रस्त परिवार के किसी निकट सम्बंधी के घर यदि कोई शुभ कार्य हो तो वे शोकसंतप्त परिवार को भी निमंत्रण देते हैं और शोक समाप्त करने के लिए उनके घर जाकर ढोल बजाते हुए शुभ राग अलापते हैं। ऐसा करने से शोक समाप्त माना जाता है और वह परिवार शुभ कार्य में भाग ले सकता है।

धरम काठी : (सि.) दे. धरम लकड़ी।

धरम लकड़ी : दे. त्रिणी पाणी। शवयात्रा में सम्मिलित सभी लोगों द्वारा अपनी ओर से चिता में डाली जानेवाली एक-एक लकड़ी। जो व्यक्ति शव यात्रा में शामिल नहीं हो पाते वे अपनी ओर से यह लकड़ी किसी अन्य के हाथ ज़रूर भिजवाते हैं। इसे सिरमौर में **धरम काठी** कहते हैं।

धरमशांति : दे. तेरहवीं।

धरमौड़ा : (शि.) दे. तरमड़ा।

धाए : (सि.) शोकधुन। बजंत्रियों द्वारा शवयात्रा से पहले तथा यात्रा के

दौरान वाद्ययंत्रों पर जो धुनें बजाई जाती हैं, उन्हें धाए कहते हैं। इनमें पुराणों, महाभारत और रामायण काल के मरणप्रसंगों की व्याख्या की जाती है। चम्बा तथा हमीरपुर में इस धुन को **ढड** तथा कुछ क्षेत्रों में **फाट** कहते हैं।

धाच्च : (चं.) पत्थर पर उकेरी गई मृत व्यक्ति की तस्वीर। उसे पुरोहित क्रियावाले दिन पनिहार पर स्थापित करता है।

धाह् : (शि.) दे. हाक।

धीन : (मं.) दान। शय्यादान। धार्मिक कृत्य में शय्यादान के बिना दान नहीं होता। यह विवाह, उद्यापन, वार्षिकी, चतुर्वार्षिकी के अवसर पर किया जाता है, जो यथावसर कुल पुरोहित, धी-जवांई तथा चारज को दिया जाता है। इसमें गृहोपयोगी सारी वस्तुएँ, यथा–चारपाई, बिस्तर, वस्त्राभूषण, जूते, छाता तथा रसोई में काम आनेवाले सभी बर्तन आदि दिए जाते हैं। दान लेनेवाले व्यक्ति को चारपाई पर बैठाया जाता है और उसके सिर पर छाता ताना जाता है। फिर उसकी पूजा कर उसे तिलक किया जाता है। दान में स्त्री के वस्त्राभूषण तथा शृंगार की वस्तुएँ भी दी जाती हैं।

धुखैरी : (कां.) यह पीतल या मिट्टी का बना बर्तन होता है। इसमें सूखे उपले डाल कर आग जलाई जाती है। जब इससे धुआँ निकलने लगता है तो यह धुखैरी बाँस के डंडे को चीर कर उसमें फँसा कर श्मशान ले जाई जाती है और इससे चिता को आग लगाई जाती है।

नटा नसरावाँ : व्यक्ति के प्राण निकलते समय करवाया जानेवाला दान। इसमें मरणासन्न व्यक्ति से पाँच-सात दालें, चावल, गेहूँ तथा खाने के लिए थाली व अन्य आवश्यक सामान दान करवाया जाता है।

नलु : (चं.) दे. कान्ना।

नाज छुहाणा : जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उसके नज़दीकी रिश्तेदार गेहूँ, मक्की आदि अनाज थैले में लाते हैं और मृतक के पाँव से छुआ कर एक ओर रख देते हैं। इसे 'चारज' को देने की प्रथा है।

नारायण बलि : एक कर्म विधि। लोक विश्वास है कि जब किसी व्यक्ति की अकाल मृत्यु हो जाए तो उसे मुक्ति नहीं मिलती और वह प्रेतयोनि में जाता है। अतः प्रायश्चित्त के रूप में मृतक की और्ध्वदैहिक क्रिया करने से पूर्व ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और प्रेत के निमित्त बलि दी जाती है। यह

कार्य महाब्राह्मण से करवाया जाता है और अंत में मृतक के नाम पर महाब्राह्मण को वस्त्र, आभूषण, गौ, शय्या आदि दान दिए जाते हैं। यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु भूमि के बजाय चारपाई पर हो जाए तो भी नारायण बलि का प्रावधान है अन्यथा प्रेतात्मा की गति नहीं होती, ऐसा माना जाता है।

नालु : दे.-जन्म संस्कार।

निकलना : (कु.) शोक से निकलना। दे. रोंडिणा। पति की मृत्यु के बाद क्रिया के दिन स्त्री सफेद वस्त्र धारण करती है। उसे देखकर कोई भी अनुमान लगा सकता है कि उसके पति की मृत्यु हो चुकी है और विधवा शोक में है। यह शोक स्त्री की इच्छानुसार कभी भी खुल सकता है। पुराने समय में विधवा स्त्री साल-दो साल तक भी शोक में रहती थी, लेकिन अब यह समय तीन महीने से साल तक हो गया है। किसी विशेष संक्रांति या त्योहार के दिन शोक से बाहर निकला जाता है। इस दिन मायकेवाले इसे रंगीन वस्त्र तथा कान में कोई आभूषण पहनाते हैं। इस अवसर पर स्त्री के अन्य सगे-सम्बंधी भी उसे वस्त्र देते हैं और सभी अपने घर से पकवान बना कर लाते हैं। परिवारवाले अपने ग्रामवासियों और उपस्थित सभी सम्बंधियों को भोजन करवाते हैं और सुरा भी पिलाते हैं।

निशांसा : (शि.) दे. मोहरा।

नेती : (कां.) मृतक के निमित्त प्रतिदिन जो आहार गाय को खिलाया जाता है, उसे नेती कहते हैं। इसे भोजन करने से पूर्व सबसे पहले अलग निकाल दिया जाता है। इस नियम का वार्षिकी तक पालन किया जाता है।

न्याछ : (मं.) मृतक के निमित्त किया जानेवाला प्रातःकालीन पिंडदान। यह दस दिनों तक दिया जाता है।

पंजक : पंचक। धनिष्ठा से रेवती तक के पाँच नक्षत्र जो हर मास आते हैं। फलित ज्योतिष के अनुसार धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती, इन पाँच नक्षत्रों में शुभ कार्य करना निषिद्ध है। इस अवधि में मांगलिक, धार्मिक तथा शुभ कार्य नहीं किए जाते। पंचक में किसी की मृत्यु होना भारी संकट का सूचक माना जाता है। कहते हैं, जिस परिवार में कोई पंचक में मरता है, उसमें पाँच व्यक्ति एक वर्ष के अंदर-अंदर अवश्य मर सकते हैं, अतः इसके निवारणार्थ उस मृत व्यक्ति के साथ घास-पात के या आटे के पाँच पुतले बनाकर जलाए जाते हैं। कुछ क्षेत्रों में पंचक में

मरे व्यक्ति के शव को जिस द्वार से बाहर निकाला जाता है, उसकी चौखट पर गाय के गोबर से सतनाजा चिपकाया जाता है और बकरे का कान काटकर विशेष मंत्र पढ़ते हुए उसका रक्त चौखट पर छिड़का जाता है। इस अवधि में पुत्र जन्म भी अशुभ समझा जाता है।

पंजगव्य : गाय का दूध, दही, घी, गोबर और गौ मूत्र। इनका मिश्रण बहुत पवित्र माना जाता है। इसे शुद्धि के लिए छिड़का जाता है।

पचयारा : (बि.,ह.) **धरमशांति** के बाद विवाहित बहनें या बेटियाँ तवे पर तेल लगाकर पकवान बनाती हैं, जिसे सगोत्रियों को खिलाया जाता है। इसके पश्चात् यह परिवार किसी भी त्योहार को मना सकता है।

पटारू : (कु.) मायके में किसी की मृत्यु होने पर शुद्धिवाले दिन विवाहित बेटियों द्वारा ले जाये जानेवाले पकवान। ये अपने घर से भटूरू, भल्ले, चावल पका कर ले जाती हैं। विशेष परिस्थिति में पके अन्न के स्थान पर कच्चा अन्न ले जाने या पैसे देने की प्रथा है। कच्चे अन्न में माश, चावल, घी, हींग, हल्दी, नमक, मिर्च, मसाले शामिल होते हैं। इसे शुक्का पटारू कहते हैं। पटारू विशेषतः बाँस की बनी हत्थी युक्त टोकरी को कहते हैं। पुराने समय में इसमें पकवान ले जाने के कारण इस प्रथा का नाम पटारू रूढ़ हो गया है, बेशक आज लोग पटारू के स्थान पर थैले का प्रयोग कर रहे हैं।

पट्टू बछाणा : घर में किसी की मृत्यु होने पर अरथी उठने के बाद नहा-धोकर उस कमरे में एक ओर पट्टू बिछाया जाता है, जिस पर दस दिनों तक उस परिवार के सदस्य और सगोती बैठते व सोते हैं। यह पट्टू 'कौड़ी रात' के दिन उठाया जाता है। चम्बा में मृतक स्त्री के मायके में भी शोक के लिए पट्टू बिछाया जाता है, जिसे पाँच दिन बाद उठाया जाता है। कुछ क्षेत्रों में पट्टू बछाणा को **कांबल बछाणा** कहते हैं।

पड़ाऽ : किसी की मृत्यु होने पर उसके निमित्त कफ़न के साथ सहायतार्थ दी जानेवाली राशि, जो उसके परिवार-जनों को दी जाती है। इसे उसके क्रियाकर्म आदि में लगाया जाता है।

पतरयाली : (मं.) मृत्यु से सम्बंधित एक क्रिया। पक्वान्न का परोरा। किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके परिवार के लोग दिन में केवल एक बार सूर्यास्त से पहले भोजन करते हैं। खाने से पहले पके हुए भोजन का एक परोसा पत्तल पर निकाला जाता है, जिसमें चावल, दाल, सब्जी तथा दही आदि होता है। इस भोजन को गाय को खिलाया जाता है। क्योंकि ऐसा

विश्वास है कि गाय मृतात्मा को वैतरणी पार करा कर पितृलोक में जाने का मार्ग प्रशस्त करती है।

पत्तरालोई : दे. तरमड़ा।

परजतना : दे. गोंठ।

पराछ : (कु.) दे. फसका।

पवित्री : सरकंडे के पत्तों से बनाई गई एक तरह की अँगूठी, जिसे पिंडदान व अन्य धार्मिक संस्कारों के समय यजमान अनामिका में पहनता है।

पाँजड़े : (सि.) किसी की मृत्यु हो जाने पर उसे श्मशानघाट तक उठाकर ले जाने के लिए बाँस या काख की बनी मंजी को इस नाम से जाना जाता है। बाँस के दो लम्बे डंडों के साथ बीच-बीच में पाँच टुकड़े मजबूती से बाँधे जाते हैं, जिस पर मृत देह को लिटाकर उसे अंतिम यात्रा के लिए ले जाया जाता है। इसे **माँजरी**, **पाँजरी** तथा **रामसीढ़ी** भी कहा जाता है।

पाँजरी : दे. पाँजड़े।

पाघा बाँधणा : (मं.) पगड़ी बाँधना। मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य, जिसमें पिंडदान करनेवाले को पगड़ी दी जाती है। घर में जब किसी की मृत्यु होती है तो मुखाग्नि देनेवाला व्यक्ति अपने सिर पर सफेद कपड़ा बाँधता है तथा परिवार के अन्य पुरुष अपना सिर नंगा रखते हैं। इसके बाद कुल पुरोहित मृत्यु शोक खत्म करने के लिए शुभ दिन देखता है। इस दिन वधू के माता-पिता आकर पुरुषों को टोपी या पगड़ी और स्त्रियों को सुहाग की वस्तुएँ चूड़ी-बिंदी आदि देते हैं। इस दिन से शोक खत्म समझा जाता है। आजकल टोपी के स्थान पर तौलिया या कपड़े दिए जाते हैं। पाघा यानी पगड़ी बाँधने की रस्म मुख्य होने के कारण इस का नाम पाघा बाँधणा पड़ना युक्तिसंगत है।

पाछकी : पाक्षिक। मृत्यु के पंद्रह दिन बाद मृतक के निमित्त किया जानेवाला श्राद्ध। इस दिन ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

पातक : परिवार में किसी की मृत्यु पर अशुद्धि की अवधि। जब परिवार में किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उस परिवार के साथ-साथ कुटुंबियों में भी 'किरया' तक अशुद्धि रहती है। इस बीच घर में कोई भी शुभ कार्य नहीं होता तथा अंडा, मांस, शराब, लहसुन, प्याज़, हींग आदि तामसिक भोजन वर्जित होता है। इस अवधि में शोक प्रकट करने के लिए बाहर से आए

लोग प्रायः इस परिवार में खाना खाने से परहेज़ करते हैं।

पारू : (चं.) मिट्टी का कलश जैसा एक पात्र विशेष। जब किसी व्यक्ति के प्राण निकलने लगते हैं तो अन्न, गोदान के साथ अग्नि का भी दान किया जाता है। इस अग्नि को जिस मृण्मय पात्र में रखा जाता है उसे पारू कहते हैं। इस पारू को मृतक के साथ श्मशान तक ले जाते हैं तथा इससे चिता को अग्नि दी जाती है।

पिंड देणा : यह कृत्य प्रायः मृतक का ज्येष्ठ पुत्र करता है। लेकिन पुत्रहीन होने की अवस्था में यह कार्य किसी अन्य निकट सम्बंधी से भी करवाया जाता है। पुरोहित सबसे पहले घर के अंदर ही पुत्र के हाथ से जौ के आटे का पिंड मृतक के सिर से स्पर्श करा कर दान करवाता है। उसके बाद शंखनाद के साथ तीन व्यक्ति मृतक को सिर, कमर तथा पाँवों के पास से पकड़ कर देहली तक लाते हैं, जहाँ पुरोहित दूसरा पिंडदान करवाता है। यहाँ से उठा कर मुर्दा जब अरथी पर रखा जाता है तो पुरोहित एक और पिंड दिलाता है। इसके पश्चात् अरथी को जब श्मशान की ओर ले जाते हैं तो दो पिंड थाली में डाल कर साथ ले चलते हैं। इनमें से एक पिंड अर्द्धमार्ग में परम्परा से निश्चित स्थान पर अरथी को नीचे रख कर दान करवाया जाता है और दूसरा पिंड श्मशान पहुँच कर शव को चिता पर लेटाने से पूर्व दान किया जाता है।

इसके बाद पुरोहित दस दिन तक प्रतिदिन प्रातः या दोपहर बाद एक पिंड दान करवाता है। यदि पिंडदान प्रतिदिन न करवाया जा सके तो उस स्थिति में दसवें दिन इकट्ठे ही दस पिंड दान करवाये जाते हैं। लोकविश्वास है कि जिसके पिंड नहीं दिये जाते, उसकी मुक्ति नहीं होती। वह सदैव प्रेतावस्था में ही रह जाता है। इसके पश्चात् मृतक के प्रति पिंडदान 'ख्याह' तथा श्राद्ध के दिन किया जाता है, लेकिन इस दिन जौ के स्थान पर चावल का पिंड दिया जाता है। इस कृत्य को **पिंड भरना** भी कहा जाता है।

पिटणा : रोने की एक विधि। मृत्यु के अवसर पर महिलाओं के रोने की कई शैलियाँ हैं। पिटणा में हाथों को छाती पर मार-मार कर रोया जाता है। जब मृतक के घर में शोक प्रकट करने दूर से महिलाएँ आती हैं तो घर की बहुएँ व बेटियाँ खड़ी होकर छाती पीटती हुई एक लय में मृतक के गुण गा-गाकर रोती हैं और बाहर से आनेवाली स्त्रियाँ भी उनके बोल को दोहराती हुई, उनके गले लगती हैं। शोक के दिनों में कुटुम्ब की सभी महिलाएँ उसी

घर में रहती हैं तथा सफेद चुन्नियाँ और फीके वस्त्र पहनती हैं और शोक प्रकट करने आनेवाली स्त्रियाँ भी सफेद दुपट्टे ओढ़ कर आती हैं।

पितर मेला : (मं.) पितृ पक्ष में मिलाना। मृत्यु के तीन वर्ष बाद प्राणी को पितरों में मिलाने की रस्म पूरी की जाती है। इसमें प्रत्येक वस्तु का दान किया जाता है और सभी सगे-सम्बंधियों को भोजन खिलाया जाता है।

पुंघिणा : (कु.) श्राद्ध आदि में कौए के लिए निकाले गए भोजन का कौओं द्वारा खाया जाना।

पुआर : परलोक गमन की स्थिति। कभी-कभी मरणासन्न व्यक्ति कई दिनों तक बेहोशी की स्थिति में रहता है। ऐसा लगता है जैसे व्यक्ति के प्राण निकल गए हों, लेकिन नाड़ी धीमी गति से चलती रहती है। कुछ दिनों तक ऐसी स्थिति में रहने के बाद वह व्यक्ति पुनः होश में आ जाता है और अपने परलोक गमन का पूरा वृत्तान्त सुनाता है। कभी-कभी पुआर से वापिस आने के बाद व्यक्ति कई सालों तक जीवित भी रहता है।

पुआस : दे. कौह्थ।

पुजियारा : (शि.) चारज ब्राह्मण। यह केवल मृत्यु सम्बंधी संस्कार ही करवाता है। मृतक के अंतिम संस्कार के तीसरे दिन इसे बुलाकर पूजन करवाया जाता है और मृतक से सम्बंधित वस्त्र, बर्तन, बिस्तर आदि दिए जाते हैं। सामान लेकर जब पुजियारा घर से बाहर निकलता है तो उसके पीछे चूल्हे से निकालकर अंगारा फेंका जाता है। लोक-विश्वास है कि ऐसा करने से मृतक की आत्मा अपनी वस्तुओं को ले जानेवाले पुजियारे के साथ चली जाती है।

पुड़ी : दे. गोंठ।

पैहजणा : (मं.) पहनाना। वार्षिकी, चतुर्वार्षिकी, श्राद्ध, उद्यापन तथा अन्य धार्मिक कृत्यों के अवसर पर पुरोहित व पुरोहिताइन को जो वस्त्र पहनाए जाते हैं उन्हें विशिष्ट रूप में पैहजणा कहते हैं।

पौड़ाई : दे. कोरा।

पौथणा : (कु.) दे. माटे देणा।

फड़क : (शि., सि.) अरथी। यह तीन तख्तों को जोड़कर संदूक की भाँति बनाई जाती है। इसे बढ़ई बनाता है। शोभा के लिए इसके ऊपर चारों कोनों पर पक्षी आदि की आकृतियाँ भी बनाई जाती हैं। इस पर कपास,

तिल आदि फेंक कर सफेद कपड़ा बिछाया जाता है, जिस पर मृतक को लिटा कर दाह के लिए ले जाते हैं। यदि मृतक सौ वर्ष या इससे अधिक आयु का हो तो फड़क को गुब्बारों से सजाया जाता है और इसे बाजे-गाजे के साथ ले जाते हैं।

फसका : जौ, मक्की, धान व कनक के मिश्रण को, जिसमें सिक्के भी डाले जाते हैं, फसका कहते हैं। इसे अरथी से लगा कर श्मशान तक अरथी के पीछे-पीछे फेंकते चले जाते हैं। इसे कुल्लू में **पराछ** तथा शिमला के कुछ क्षेत्रों में **मड़दान** व **शांबल** कहते हैं, जो संबल से व्युत्पन्न शब्द है अर्थात् यात्रा मार्ग का यह संबल होता है।

फाट : दे. धाए।

फीट-फांट : किसी के निधन पर उसके क्रिया-कर्म के लिए परिजनों द्वारा किए गए आर्थिक योगदान को फीट-फांट कहा जाता है। इसमें हरिद्वार में किए जानेवाले पिंडदान एवं अस्थि प्रवाह हेतु नकद राशि स्वेच्छा से दी जाती है तथा ब्राह्मण भोज के लिए आटा, चावल व घी आदि मृतक के परिवार-जनों को इस भाव से दिया जाता है कि दुःख के इन क्षणों में उनकी कुछ सहायता हो सके और यह मृतक के प्रति श्रद्धांजलि का प्रतीक भी है।

फुली : (शि.) मृत्यु के समय शोक प्रकट करने आए व्यक्ति मृतदान के लिए अरथी पर सिक्का चढ़ाते हैं, जिसे फुली कहते हैं। ये सिक्के बजंत्री को दिये जाते हैं।

फुलैच : (कि.) फूल, वार्षिक श्राद्ध। किन्नौर ज़िला में व्यक्ति की मृत्यु के एक वर्ष बाद फुलैच मनाया जाता है, जिसमें मेढ़े को मृतक के नाम पर मूँडा जाता है, उसे मृतक के वस्त्र पहनाए जाते हैं, फिर उसकी बलि दे दी जाती है और उसका मांस पकाकर सभी रिश्तेदारों को खिलाया जाता है। लामा को मृतक के निमित्त भोजन व वस्त्र दिए जाते हैं। जब तक वार्षिकी नहीं हो जाती तब तक परिवार का कोई भी सदस्य नए वस्त्र नहीं पहनता। उसके बाद फूल तथा नए वस्त्र धारण किए जा सकते हैं।

फूल चुगणा : मृत्यु सम्बंधी संस्कार। यह मृत्यु के तीसरे दिन या उसी दिन किया जाता है। इस दिन पंडित तथा कुछ सगे-सम्बंधी श्मशान जाते हैं। सर्वप्रथम वहाँ पर गंगाजल छिड़का जाता है। इसके पश्चात् राख में से छाँट कर जली हुई अस्थियों का संचय करके उन्हें एक थैली में भर लिया जाता है। अस्थियों की थैली घर आ कर नज़दीक ही किसी पेड़ पर टाँग

दी जाती है या मिट्टी में दबाकर रखते हैं, ताकि सुरक्षित रहे। अस्थियों के निकट प्रतिदिन रात को दीया जलाया जाता है। इन्हें दस दिन के भीतर गंगा या अन्य पवित्र नदी में प्रवाहित करने को ले जाते हैं।

बतप्रगड़ी : (कां., चं.) दीपक। प्रकाश करने का साधन। भाद्रपद मास को काला महीना कहा जाता है। इस मास की संक्रांति से गोधूलि वेला में द्वार पर दीपक जलाया जाता है, जो पितरों के निमित्त होता है। ऐसा पूरे मास किया जाता है और बची हुई बत्तियाँ मासांत को इकट्ठी जला दी जाती हैं।

बतरणी देणी : (मं.) दे. गोदान।

बत्ती : रुई, पुराने कपड़े आदि को ऐंठ या बटकर बनाई गई पतली पूनी जिसे तेल में डालकर दीया जलाते हैं। मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य। मृतक के निमित्त वर्ष भर एक बत्ती तेल में भिगो कर प्रतिदिन संध्याबेला में घर के सामने जलाई जाती है। लोक-विश्वास है कि एक साल तक मृतक की आत्मा दूसरी योनि में नहीं जाती और रात को अँधेरे में भटकती रहती है। मृतक की आत्मा न भटके इस उद्‌देश्य से वार्षिकी तक बत्ती जला कर उजाला किया जाता है।

बमाण : दे. फड़क।

बरतण : दे.-विवाह खंड।

बरही : वार्षिकी। मृत्यु के एक वर्ष बाद बरही का आयोजन किया जाता है। इस दिन मंडल बनाया जाता है। मंत्रों द्वारा मृतक की आत्मा को शांत करने का प्रावधान है और मृतक के निमित्त पिंड दान किया जाता है। इस अवसर पर सभी रिश्तेदारों को बुलाया जाता है। अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार उन्हें भोज दिया जाता है। मृतक के नाम पर ब्राह्मण को जिमा कर उसे शय्यादान, गोदान के साथ वस्त्राभूषण, जूते आदि दिए जाते हैं। मृतक के परिवारवाले बरही से पहले कोई त्योहार नहीं मनाते। इस दिन के बाद शोक समाप्त हो जाता है और सभी त्योहार मनाये जाते हैं।

बरो : नाथ या 'चारज' को मृत व्यक्ति के निमित्त एक वर्ष तक दिया जानेवाला भोजन। मृत्यु सम्बंधी संस्कार, जैसे–दाह संस्कार, पिंडदान, क्रिया, श्राद्ध आदि चारज करता है। मंडी क्षेत्र में जिस चारज से दाह संस्कार, नौ दिनों तक कर्मकांड और क्रिया आदि करवाए जाते हैं, उसे मृतक के निमित्त वार्षिकी तक लगातार दोपहर और शाम को दो समय भोजन कराया जाता है या उसके घर भेजा जाता है। यदि उसे पका हुआ

अन्न न खिलाया जा सके तो इसके बदले में चावल, दाल, गेहूँ का आटा, घी, हल्दी, नमक आदि दिया जाता है।

बलोची : (शि.) दे. कोरा।

बहली : दे. ठुरनाठी।

बाई पाँधे : (कु.) सं. वापिः और पार्श्वे से व्युत्पन्न शब्द बाई पाँधे मृत्यु सम्बंधी एक विशेष कृत्य के लिए प्रयुक्त होता है। यह कृत्य बावड़ी के पास किया जाता है। इसमें सगी धी-ध्याइणों की मृत्यु होने पर मायकेवालों द्वारा तथा मायके में माँ-बाप की मृत्यु होने पर बेटी द्वारा मृतक के निमित्त अपनी निकट की बावड़ी के पास एक भोज का आयोजन किया जाता है। इसमें सभी निकट सम्बंधी दूर से रोते हुए आते हैं और **बरतण** के रूप में इन्हें गेहूँ या पैसे देते हैं।

बाड़ : (सि.) रक्षा के लिए बनाया हुआ काँटे, बाँस आदि का घेरा। मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य। अंत्येष्टि के बाद वापिस आते समय सबसे पीछेवाला व्यक्ति एक बड़ी झाड़ी काटकर 'डाक' वाले स्थान पर बाड़ लगा देता है, जिससे प्रेतात्मा वापिस न आ सके।

बारखी : दे. बरही।

बारदो थोडोल : (कि.) बौद्धों की एक धार्मिक पुस्तक, जिसे गरुड़ पुराण का भोटी संस्करण मान सकते हैं। इसके अनुसार मृत्यु के पश्चात् मृतक को घर के एक कोने में रखा जाता है तथा उसे भोजन आदि परोसा जाता है। विश्वास किया जाता है कि मृतक के शरीर से उसकी आत्मा के निकलने के लिए लगभग साढ़े तीन दिन का समय लग जाता है। अतः मृतक का दाह संस्कार करने या दफनाने के कार्य में शीघ्रता नहीं की जाती। लामा शव के सामने बारदो थोडोल के उन अंशों को पढ़कर सुनाता है, जिनमें इस संसार की नश्वरता की चर्चा की गई है।

बालमौत : बाल-मृत्यु। जो व्यक्ति जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है, परंतु कई बार बच्चे जन्म लेते ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे मृतक बच्चे को गाँव की कोई सयानी स्त्री या पुरुष पंचगव्य से नहलाकर, सफेद कपड़े में लपेट कर, जरायु सहित अंतिम संस्कार के लिए तैयार करते हैं। पुरुष घर से कुछ दूर खाली सुनसान स्थान पर गहरा गढ़ा खोद कर तैयार कर लेते हैं। शव को गढ़े में दबाने के लिए प्रायः वही स्त्री ले जाती है, जिसने

उसे कफ़न में लपेटा होता है। शिशु का शव गढ़े में डालने के बाद गाँव के लोग दोनों हाथों से अँजलि भर कर मिट्टी शव पर डालते हैं, फिर गढ़ा मिट्टी से भर दिया जाता है। तत्पश्चात् उस पर काँटेदार झाड़ियाँ तथा मोटे-मोटे पत्थर रखे जाते हैं ताकि जंगली जानवर गढ़े को खोद न सकें।

बच्चे की मृत्यु के तीसरे दिन, जिस स्त्री के बच्चे होने बंद हो गए हों, वह प्रसूता को नहला कर साफ-सुथरे वस्त्र पहनाती है। यदि माँ का दूध पीनेवाला बच्चा मर जाए तो उसकी माँ या गाय-भैंस का ताज़ा दूध निकाल कर तीन, पाँच या सात दिनों तक उस गढ़े पर डाला जाता है। ऐसे बच्चों की मृत्यु का पाँच या सात दिन तक पातक माना जाता है और यदि बच्चा पैदा होने के कुछ ही समय बाद मरे, लेकिन उसका **नालु** न काटा हो तो उसका पातक नहीं लगता। चार या पाँच साल के बच्चे की यदि मृत्यु हो जाए तो उसका दाह-संस्कार निजी **सलूई** में किया जाता है और यदि मृतक कन्या हो तो दाह-संस्कार अपनी सलूई पर न करके, कहीं अन्यत्र खड्ड आदि में करते हैं।

ज़िला चम्बा में पाँच साल तक के बच्चे की मृत्यु हो जाने पर उसे या तो दबाया जाता है या नदी में फेंक दिया जाता है। इस आयु के बच्चे का क्रियाकर्म न करके पाँच, सात, ग्यारह दिन या एक माह बाद औरत या मर्द को खाना खिलाकर, कपड़े आदि पहनाए जाते हैं। लगभग पंद्रह दिन तक 'सोग' माना जाता है।

जनजातीय क्षेत्र लाहुल-स्पीति में बच्चा यदि पैदा होते ही माँ के दूध को चखे बिना ही मर जाए तो उसे घर के अंदर ही मिट्टी में दबाने की प्रथा है।

बाहरीणा : मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य। चम्बा के जनजातीय क्षेत्र में मृतक की अस्थियों को चुनकर जब घर लाया जाता है तो एक कम्बल बिछाकर उस पर अस्थियोंवाला पात्र रखा जाता है। जब अस्थियों को हरिद्वार ले जाना होता है तो शुभमुहूर्त देखकर उन्हें बाहर निकाला जाता है और उन्हें ले जानेवाला व्यक्ति भी उसी समय बाहर बैठ जाता है। सभी सम्बंधी उस पर वारना करते हैं। इसके बाद वह व्यक्ति घर के अंदर प्रवेश नहीं करता और बाहर से ही हरिद्वार चला जाता है। इस प्रक्रिया को बाहरीणा कहते हैं।

बिलणी : मृत्यु सम्बंधी एक प्रथा। मृतक के निकट सम्बंधियों के साथ मातमपुर्सी के लिए आई दूसरे गाँव की महिलाओं को गाँव के अन्य घरों

में पाँच-पाँच, छह-छह की संख्या में भेजा जाता है, जहाँ उन्हें उस परिवारवाले खाना खिलाते हैं, क्योंकि मृतक के घर या बिरादरी में खाना उचित नहीं समझा जाता। इस प्रथा को बिलणी कहा जाता है।

बुदा : (कु.) दे. लांबू।

बुरनाउई : (मं.) अशुभ शंखध्वनि। शवयात्रा निकलने पर बुरनाउई बजाई जाती है, जिससे आस-पास के लोगों को पता चल जाता है कि इस घर में किसी की मृत्यु हुई है।

बुरा पाणा : स्त्री के पति की मृत्यु होने पर दसवें दिन उसे दिए जानेवाले वस्त्र तथा एक आभूषण। ये मायके तथा ननिहालवालों की तरफ से दिए जाते हैं।

बैतण : (मं.) वैतरणी नदी को पार करानेवाली गाय। इसका दान जीवन के अंतिम क्षणों में किया जाता है। दे. गोदान।

बौइ : (कु.) कुल्लू ज़िला के बाहरी सिराज क्षेत्र में मुर्दे को जलाने के पश्चात् एक विशेष कपड़े या चादर को, जो मुर्दे के ऊपर से निकाली हुई होती है, अस्थियों सहित मृतक के घर लाकर, दस-ग्यारह दिनों तक पातक के शुद्धिकरण तक कमरे के कोने में रखा जाता है। इस चादर को बौइ कहते हैं। शुद्धि होने पर इसको जल में प्रवाहित कर दिया जाता है।

बौड़ी हौणी : (कु.,शि.) दे. हींग चखाणा।

भड्डू : (ह.) दे. पारू।

भद्रा : सं. भद्रकरण का तत्सम शब्द भद्रा। यह शब्द किसी की मृत्यु होने पर सिर, दाढ़ी-मूँछ आदि के मुंडन के लिए प्रयुक्त होता है। यह संस्कार मरने के दसवें दिन किया जाता है। घर में किसी की मृत्यु होने पर परिवार के सदस्य दस दिनों तक न नहाते हैं और न ही दाढ़ी-मूँछ और सिर मुंडवाते हैं। दसवें दिन पिंडदान करने व दीया उठाने के बाद कपड़े धोए जाते हैं और इनकी भद्रा की जाती है। किसी भी व्यक्ति की भद्रा सबसे पहले उसके माता या पिता की मृत्यु पर की जाती है। इस दिन परिवारजनों के अतिरक्त निकट के रिश्तेदार भी स्नेह भाव से भद्रा करवाते हैं। लेकिन मृतककर्म करनेवाले पुत्र या सम्बंधी की भ्रदा कई जगह दाह संस्कार से पूर्व भी कर ली जाती है। वर्तमान समय में जो लोग अपने सिर पर उस्तरा नहीं फिरवाना चाहते, वे सिर के बालों को बीच-बीच से कैंची से इस प्रकार

कटवा लेते हैं कि शोक का पता सहज ही चल सके।

भाटी : सं. भट्टः। भट्टः का अर्थ भाट ब्राह्मण है। यहाँ पंडित को भोजन कराए जाने के कारण भट्ट-भाट से भाटी शब्द व्युत्पन्न हुआ है, जो ब्राह्मण भोज के लिए प्रयुक्त होता है। यह भाटी पितरों के निमित्त श्राद्ध, वार्षिकी, द्विवार्षिकी तथा चतुर्वार्षिकी में ब्राह्मणों के साथ अन्य लोगों को भी खिलाई जाती है।

भूइयाँ तुआरणा : मरणोन्मुख व्यक्ति को नीचे उतारना। व्यक्ति की चारपाई पर मृत्यु होना अशुभ माना जाता है। लोक-विश्वास है कि ऐसे मृतक की गति नहीं होती। अतः ज्यों ही यह आभास होता है कि व्यक्ति प्राण त्यागनेवाला है, तुरंत उसका बिस्तर नीचे लगा दिया जाता है। उस के मरने के बाद वह बिस्तर किसी गरीब को दिया जाता है और 'मांदरी' एक निर्धारित स्थान पर जला दी जाती है।

भूमिसेज : भूमि शय्या। जब व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो भूमि को गाय के गोबर से लेपकर उस पर मिट्टी व दूर्वा बिछाई जाती है और इस स्थान पर चादर फैला कर शव को लेटाया जाता है। इसके पीछे यह धारणा है कि व्यक्ति पंचतत्त्व से पैदा होता है और अंत में पंचतत्त्व में ही लीन हो जाता है।

मड़थान : (मं.) दे. मौउथड़।

मड़दान : (शि.) दे. फसका।

मड़धूड़ : मृतक की राख। श्मशान से लाई गई मृतक की राख जो तांत्रिक उपचार में प्रयोग की जाती है। इसका उपयोग तांत्रिक गुप्त रूप से करते हैं।

मड़नुहाण : शव स्नान। शव को श्मशान ले जाने से पहले ठंडे पानी से स्नान करवाया जाता है। यदि मरनेवाला पुरुष हो तो स्नान बेटे-पोते कराते हैं और यदि स्त्री हो तो बहुएँ या कुनबे की स्त्रियाँ स्नान करवाती हैं। स्त्री के गर्भाशय में जौ का आटा या रुई या चिकनी मिट्टी और चाँदी का टुकड़ा भर दिया जाता है। लोकविश्वास है कि ऐसा करने से उसे रास्ते में यम तंग नहीं करते। सुहागिन स्त्री को दुलहन की तरह सजाया जाता है।

मड़बसां : दे. मौड़बशांव।

मड़बसोह : दे. मौड़बशांव।

मड़वी : (शि.) दे. मौउथड़।

मड़ा जाणा : (मं.) शव की परिक्रमा करना। यह परिक्रमा सभी निकट सम्बंधी करते हैं।

मड़ेगिए : (कु.) श्राद्ध पक्ष। आश्विन मास की पूर्णिमा से कृष्ण पक्ष की अमावस्या तक के सोलह दिन। इन दिनों में लोग अपने-अपने पितरों का श्राद्ध उनकी मृत्यु तिथि के अनुसार करते हैं।

मढ़ह्रात रुहुंड्री : (ला.) शव का पहरा देना। लाहुल-स्पीति तथा कई अन्य क्षेत्रों में किसी व्यक्ति की शाम या रात को मृत्यु होने पर शव की रखवाली करने के लिए गाँव के प्रत्येक घर से एक-एक पुरुष मृतक के घर में जाता है। शव को अकेला नहीं रखा जाता, यह मनुष्यता का शिष्टाचार है। लोकविश्वास के अनुसार कभी-कभी मृतक उठकर चलने लगता है, जो सभी के लिए अशुभ माना जाता है। इसलिए भी शव का पहरा दिया जाता है।

मणशणा : चुल्लू में पानी ले कर किसी वस्तु के गिर्द घुमाने की क्रिया को मणशणा कहते हैं। यह वस्तु जिसके निमित्त मणशी जाती है, उसे ही दी जाती है।

मदरौह्णू : (कु.) दे. दग्याहरू।

मशाण : दे. मौउथड़।

मशान : (कु.) पितरों के लिए किया जानेवाला तर्पण। मशान हर त्योहार में किया जाता है। ऐसे अवसरों पर सबसे पहले स्थानीय देवता को धूप चढ़ाया जाता है। तत्पश्चात् त्योहार में बनाए गए विशेष पकवानों को थाली में परोस कर पितृ-तर्पण किया जाता है और उस भोजन को स्वयं न खाकर परिवार के दूसरे सदस्यों को खिलाया जाता है। विवाहित बेटी भी अपने मृत माता-पिता, बहन-भाई को अपनी ससुराल में मशान कर सकती है।

मसरू : (चं.,शि.) दे. टाला।

मस्वान : (मं.) खाने से पूर्व थाली से सर्वप्रथम चिड़ियों और कौओं के लिए निकाला गया ग्रास।

मांज़री : (सि.) दे. पाँजड़े।

मांदरी : (कु.) धान की पराल से बुनी चटाई। दे. मांदरी जाल़णा।

मांदरी जाल़णा : (कु.) मृतक व्यक्ति के प्रति किया जानेवाला एक कृत्य। मृतक की अरथी को श्मशान की ओर ले जाते हुए एक व्यक्ति मृतक के नीचे बिछी 'मांदरी' को ले कर चलता है। श्मशान के आधे रास्ते में परम्परा से निश्चित स्थान पर अरथी को नीचे रख कर मांदरी को जलाया जाता है। लोक विश्वास है कि मांदरी जलाने से मृतक को परलोक में भी बैठने व सोने के लिए मांदरी मिलती है। मंडी क्षेत्र में इसे **मांजरी फुकणा** कहते हैं। वहाँ शवयात्रा में बच्चे और औरतें सभी शामिल होते हैं। गाँव के बाहर जाकर मृत प्राणी के नीचे बिछाई गई पराल की मांजरी जलाई जाती है और वहीं से बच्चे तथा औरतें घर लौट आते हैं।

मांजरी फुकणा : (मं.) दे. मांदरी जाल़णा।

माटे देणा : (सि.) मृत शिशु को दबाना। इसे कुल्लू में **पौथणा** कहते हैं। दे. बाल मौत।

मासक : मासिक श्राद्ध। मृत्यु के पश्चात् एक वर्ष तक हर मास मृतक की मरने की तिथि पर ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है। जिस ब्राह्मण को पहली बार जिमाया जाता है, साल भर प्रति माह उसे ही भोजन कराया जाता है।

मासकू : मृत्यु के बाद प्रति मास किया जानेवाला अन्नदान। प्रत्येक मास मृतक के निमित्त मासकू मणसा जाता है। पहले चार महीनों में लगभग पंद्रह दिन के बाद आठ अधमासक तथा शेष पूरे मासकू मणसे जाते हैं। इस प्रकार साल भर में पूरे सोलह मासकू किए जाते हैं।

माहिकी : दे. मासक।

मुकाह्ण : मृतक के प्रति शोक व्यक्त करने के दिन। मृत्यु के पश्चात् सगे-सम्बंधी शोक प्रकट करने के लिए मृतक के घर आते हैं, इसे मुकाह्ण कहते हैं। शोक प्रकट करने के लिए नये वस्त्र पहनकर आना अच्छा नहीं माना जाता, इसलिए इस अवसर पर रोज़मर्रा के वस्त्र पहनकर ही आया जाता है। स्त्रियों की शोक प्रकट करने आने की अलग रीति है। वे स्वभाव से भावुक होती हैं, इसलिए गाँव के बाहर से ही ज़ोर-ज़ोर से रोना आरम्भ कर देती हैं। रोते हुए वे मृतक का गुणगान और अपनी व्यथा का वर्णन करती हैं। शोक प्रकट करने के लिए मृत्युवाले दिन को छोड़ कर अन्य दिनों में 'वार' का विशेष ध्यान रखा जाता है। सोमवार, बुधवार, शुक्रवार तथा शनिवार को ही मुकाह्ण करने जाया जाता है। इन्हीं दिनों पुरुष मृतक के

ससुराल तथा स्त्री के पीहर में मृतक के परिवार के सदस्य तथा गोत्रज पुरुष-स्त्रियाँ मुकाहृण के लिए जाते हैं। इसका अभिप्राय शोक को दो घनिष्ठ परिवारों में बाँटना होता है। मृतक के यही सम्बंधी क्रिया-कर्म का सामान जुटा देते हैं, जिससे शोकग्रस्त परिवार को किसी सीमा तक आर्थिक सहयोग भी मिल जाता है।

मुख पौरछ्णा : (कु.) मृतक का गुणगान करते हुए ज़ोर-ज़ोर से किया जानेवाला विलाप। यह 'गति' तक ब्रह्ममुहूर्त में तथा त्रिकाल बेला में निकट सम्बंधियों द्वारा मृतक के घर की देहली पर बैठ कर किया जाता है।

मुखा : मंडी में प्रचलित मृत्यु सम्बंधी एक प्रथा। यहाँ किसी की मृत्यु होने पर नौ दिनों के भीतर सामान्यतः मंगल और शनिवार को महिलाएँ और पुरुष मृतक के परिवारजनों के पास सम्वेदना प्रकट करने जाते हैं।

मुजयाठी : (सि.) दे. ठुरनाठी।

मुट्टू पाणा : (चं.) दे. त्रिणी पाणी।

मुड़दघाट : दे. मौउथड़।

मूंड़ी : (मं.) गेहूँ को भून कर तैयार किया गया चबेना। (2) गेहूँ , राजमाष आदि अन्न को उबाल कर बनाया गया सूखा खाद्य, जिसमें मसाले के तौर पर केवल नमक डाला जाता है। इसमें अखरोट की गिरी मिला कर इसे निरा खाया जाता है। (3) मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य। यह धर्मशांति के बाद होता है। इसके लिए पंडित शुभ दिन निकालता है। इस दिन रिश्ते-नाते की सभी स्त्रियाँ मूड़ी ले कर मृतक के घर आती हैं। यहाँ इन्हें खाना खिलाया जाता है और वापसी में मूड़ी दे कर ही विदा किया जाता है। यह शोक के दिनों का खाद्य है, इसलिए इस सूखे-भूने अन्न का आदान-प्रदान होता है। आजकल भूने हुए गेहूँ के स्थान पर बिना भूना गेहूँ ले जाने का भी प्रचलन है।

मोकाण : (सि.) मृत्यु सम्बंधी एक प्रथा। 'किरया' के दिन मृतक के घर आनेवाला प्रत्येक सम्बंधी अपने साथ घी, आटा तथा उड़द लाता है। इस सामग्री को मोकाण कहते हैं। यदि कोई व्यक्ति घी, आटा और उड़द न लाए तो वह उसके बदले पैसे दे देता है, परंतु यह अपवाद-स्वरूप ही होता है। यह अन्न शोक में घर पर पकाये जानेवाले भोजन में सहयोग देने के उद्देश्य से दिया जाता है। कुछ क्षेत्रों में इस सामग्री को **सातू** कहते हैं, क्योंकि सत्तू भी ऐसे अवसर के अनुकूल सूखा भोजन है। सत्तू देने की प्रथा

से अन्न देने की इस परम्परा का नाम सातू देणा हो गया।

मोरोग : शोक समाप्ति का अंतिम दिन। यह प्रायः तेरहवीं का दिन होता है, परंतु मेले-त्योहार, शादी-विवाह या अन्य परिस्थितिजन्य रुकावटों के कारण इसकी समाप्ति, इससे पहले विषम दिनों में भी की जा सकती है। इस दिन सात्विक भोजन में विशेषतः उड़द की दाल बनाई जाती है, जिसमें समधी ही अपने घर से लाए गए घी का छौंक लगाता है। इस कार्य को उस गोत्र या गाँव का कोई भी व्यक्ति नहीं कर सकता।

मोहरा : मुख। मृतक के शरीर का प्रतीक रूप। मृत्यु के ग्यारहवें या तेरहवें दिन शय्यादान की क्रिया सम्पन्न कराकर मृतक के प्रतीक रूप में मोहरा रखा जाता है। इसे एक शिला के ऊपर मृतक का रूप उकेर कर बनाया जाता है। इस पर घी मलने के बाद सिंदूर पोता जाता है। उसके बाद इस पर छोटा-सा लाल वस्त्र ओढ़ा कर डोरी से बाँध देते हैं। मोहरा तैयार होते ही आचार्य मृतक के परिवारवालों से तीन संकल्प कराता है– (i) मृतक के परिवार के सदस्य इस मोहरे को कहीं जलाशय के समीप या पीपल के पेड़ के नीचे रख कर एक वर्ष तक प्रतिदिन तिल डालकर एक लोटा जल चढ़ाया करेंगे। (ii) प्रतिदिन गोधूलि वेला में मृतक के नाम की 'बत्ती' आँगन के किनारे जलाकर जल चढ़ाएँगे। (iii) प्रतिदिन किसी को भोजन कराएँगे। पीपल के पास रखे मोहरे पर रविवार तथा मंगलवार को जल नहीं चढ़ाया जाता।

सूतक-पातक में भी जल चढ़ाना निषिद्ध है, लेकिन बत्ती जलाई जा सकती है। वर्ष के अंदर ही सूतक-पातक आ जाने के भय से प्रायः पहले दिन ही पीपल के पास रखे मोहरे पर तिलयुक्त जल के तीन सौ पैंसठ लोटे चढ़ा दिये जाते हैं। लोकविश्वास है कि यह जल मृतक के मुख में पड़ता है तो तिल भी बबरू के आकार जितना बड़ा होकर मृतक को भोजन के रूप में मिलता है। 'बत्ती' मृतक की राह में होनेवाले अँधेरे को दूर करती है। मृतक का मृत्यु संस्कार कर देने के बाद प्रतीक रूप में रखा जानेवाला मोहरा देवकुल का अंग बन जाता है।

मौउथड़ : (कु.) श्मशान। वह स्थान जहाँ हिन्दू लोग मुर्दे जलाते हैं। गाँवों में प्रत्येक गाँव या खानदान की अपनी-अपनी मौउथड़ होती है। लोक-विश्वास है कि श्मशान में प्रेतों का निवास रहता है और रात के बारह बजे यहाँ राक्षस नृत्य करते हैं। दोपहर के समय तथा रात को यहाँ जाने से भूत-प्रेत आदि के आक्रमण का भय रहता है। तांत्रिक रात के बारह बजे यहाँ

बैठ कर सिद्धि करते हैं। इसे **मशाण, मुड़दघाट** या **मड़वी** भी कहते हैं।

मौड़ बशांव : (कु.) घर से शव को जब श्मशान की ओर ले जाया जाता है तो अर्द्धमार्ग में, जो एक निश्चित स्थान होता है, बशांव अर्थात् विश्राम कराना अनिवार्य होता है। इस स्थान पर मृतक के निमित्त पिंडदान किया जाता है तथा शव को पत्तेदार हरी डाली से हवा की जाती है। एक प्रथा के अनुसार व्यक्ति के मरने पर पहले तूरी (वादक जाति विशेष) उस घर के पास ढोल-करनाल बजाने आते थे और शवयात्रा के साथ आधे रास्ते तक जाते थे। वहाँ शव को कंधे से उतार कर भूमि पर रखा जाता था। विश्राम करने के बाद इन पारम्परिक वादकों को भेड़ दी जाती थी। अब यह प्रथा समाप्त हो गई है। केवल कफ़न का कुछ भाग फाड़ कर मौड़बशांव वाले स्थान पर फेंका जाना अनिवार्य है। इसे **मड़बसां** या **मड़बसोह** भी कहते हैं।

मौड़ा : (कु.) दे. सिढ़ी।

मौत : मृत्यु। पाँच वर्ष की आयु से ऊपर के व्यक्ति की मृत्यु होने पर शव को गंगाजल युक्त पानी से स्नान करा कर 'मसरू' में लपेटा जाता है। मृतक यदि विवाहित हो तो उसके सिर पर उसकी शादी का सेहरा रख दिया जाता है। परिवार के सभी लोग व सम्बंधी तथा मित्र लाश पर दुशाले चढ़ाते हैं। मृतक की पत्नी लाश की उलटी परिक्रमा करके उसके पैरों के नीचे रुपए रख कर मत्था टेकती है। उसके बाद सभी स्त्रियाँ धर्मलकड़ी को 'मौली' से बाँध कर अरथी पर चढ़ाती हैं, क्योंकि वे श्मशान नहीं जातीं। वे ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाती हुई हाथों से अपने को पीटती हैं। तब शव को अरथी पर रख कर श्मशान ले जाया जाता है। उस समय शंख में सीधी फूँक भरी जाती है, जिससे आस-पास के लोगों को मृत्यु की सूचना मिल जाती है।

शवयात्रा में सभी सम्बंधी व गाँव के लोग जाते हैं। श्मशान जाते हुए अरथी के ऊपर से किशमिश, बादाम, खीलें, जौ-गेहूँ आदि अन्न और पैसे फेंके जाते हैं। यदि किसी की मृत्यु सूर्यास्त के बाद होती है तो शवदाह अगले दिन किया जाता है और उसे उठाने से पहले लोहे की कील शव के सिर के पास गाड़ दी जाती है, अन्यथा वर्ष के अंदर-अंदर उस घर में किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु हो सकती है, ऐसा लोक-विश्वास है। शव को रात को अकेले नहीं छोड़ा जाता। माना जाता है कि यदि शव अकेला छोड़ा जाए तो उसमें कोई दुष्टात्मा प्रवेश कर परिवारवालों को तंग कर सकती है।

शव का सिर उत्तर दिशा की ओर करके चिता पर रखकर बड़े बेटे द्वारा मुखाग्नि दी जाती है और यदि पुत्र न हो तो सगोत्रियों में से कोई व्यक्ति यह कार्य कर सकता है। पिंडदान करनेवाला व्यक्ति तब तक दिन में एक बार ही भोजन करता है तथा भूमि शयन करता है, जब तक शोक समाप्त नहीं हो जाता। शव के पूर्ण रूप से जल जाने के बाद अस्थिसंचय किया जाता है और उन अस्थियों को किसी वस्त्र में बाँधकर तब तक घर से बाहर किसी सुरक्षित स्थान पर रखा जाता है, जब तक उन्हें चन्द्रभागा या गंगा नदी में प्रवाहित नहीं कर दिया जाता। अंत्येष्टि के बाद घर के सारे वस्त्र धोए जाते हैं। जनजातीय क्षेत्रों में दूसरे दिन मृतक के वस्त्र धोकर सुखाए जाते हैं और तीसरे दिन उन्हें किसी ब्राह्मण या सगोत्री को दे दिया जाता है। इन तीन दिनों में किसी कन्या को मृतक के निमित्त भोजन कराया जाता है। तीसरे दिन लोगों को भी भोज कराया जाता है। इसके बाद मुख्य शोक समाप्त हो जाता है, परंतु वर्ष भर वह परिवार कोई भी त्योहार नहीं मनाता।

रस्म पगड़ी : दे. पाघा बाँधणा।

रात कटाणा : किसी की मृत्यु होने पर उस घर में नज़दीकी रिश्तेदार रात कटाने जाते हैं। यह दस दिनों के भीतर होता है, जब तक 'दीया' रखा जाता है। जो व्यक्ति रात कटाने जाता है वह दीयेवाले कमरे में ही सोता है और दीये का पहरा देता है। दीया बुझ न जाए इसलिए बीच-बीच में दीये में तेल डालता है।

रामसीढ़ी : दे. पाँजड़े।

रुआरुआ पौणा : (मं.) विलाप करना। किसी की मृत्यु पर परिवारजनों का एक साथ रोना। इससे आस-पड़ोस में मृत्यु का पता चल जाता है।

रोंडिणा : विधवा हो जाना। जब किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाती है तो क्रियावाले दिन उसके मायकेवाले उसके लिए सफेद वस्त्र लाते हैं, जिसे वे उस स्त्री को नहलाने के बाद पहना देते हैं। इसमें सिर से लेकर पैर तक सभी वस्त्र सफेद होते हैं। इन्हें पहनने के बाद पहले वह स्त्री साल-छह महीनों तक प्रायः घर के अंदर ही रहती थी। वह घर के आस-पास ही कार्य कर सकती थी। उसे इस रूप में देखना लोग अच्छा नहीं समझते थे। वह किसी के घर भी नहीं जा सकती थी। वह न तो किसी को अभिवादन कर सकती थी और न ही उसे कोई अभिवादन करता था।

लेकिन अब यह सब बदल गया है और विधवा स्त्री को यथाशीघ्र सामान्य स्थिति में लाने के प्रयास होते हैं और उसके पुनर्विवाह की प्रथा तो यहाँ आदिकाल से ही चली आ रही है।

लकड़ी पाणा : लकड़ी डालना। शवयात्रा में जितने भी व्यक्ति शामिल होते हैं वे सभी एक लकड़ी, चन्दन का टुकड़ा तथा आँवले का टुकड़ा चिता पर डालते हैं। इसे लकड़ी पाणा कहा जाता है। इसे बड़े पुण्य का काम माना जाता है।

लांबू : (क्यं.) चिता में आग लगाने हेतु जिस घास को जलाया जाता है, उस जलते हुए घास को लांबू कहते हैं।

लांभुलाणा : (चं.) दे. त्रिणी पाणी।

लिम्मणा : दे. घरालना।

लोटा छिदरना : (कु.) मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य जो 'गति' के दूसरे या तीसरे दिन किया जाता है। इस दिन नड़ जाति के व्यक्ति को बुलाया जाता है। यह हरिद्वार से लाए लोटे में पानी भर कर मृतक के पापों को नष्ट करने के लिए अपनी कुछ क्रिया करता है। उस दिन हलवा बनाया जाता है, जो पूजा में चढ़ाया जाता है। सगोत्रियों और मायकेवालों को भी इस दिन निमंत्रण दिया जाता है और उन्हें ब्रह्मभोज कराया जाता है।

लोहाओ देणा : दे. अधमारग।

ल्यारू : (चं.) दे. पारू।

वार : नियत समय। मृतक के शोक संतप्त परिवार को सांत्वना देने के लिए निश्चित दिन। ये वार हैं—सोमवार, बुधवार, शुक्रवार तथा शनिवार। मृत्यु के दस दिन तक वार मनाए जाते हैं। इन दिनों मृतक के सम्बंधी तथा बिरादरी के लोग शोक में सम्मिलित होने के लिए आते हैं। वार के दिनों में स्त्रियों का रोना हृदय विदारक होता है।

व्योराही : मृत्यु सम्बंधी सूचना देने के लिए नियुक्त व्यक्ति। इसका कार्य मृतक के सम्बंधियों और आस-पड़ोस के लोगों को मृत्यु के विषय में सूचित करना है।

शखरि : दे. कोटङ्।

शब्दयाउणो : (शि.) दे. स्यापा।

शांबल : (शि.) दे. फसका।

शाह ढाबणा : (कु.) दे. जेउड़ा शेटणा।

शिर्-ग्याग् : (ला.) स्वयं की मृत्यु के बाद के संस्कारों पर होनेवाले खर्च के लिए पूर्व रूप से किया गया प्रबंध। ज़िला लाहुल-स्पीति में यदि कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु के बाद के संस्कारों पर होनेवाले व्यय का बोझ किसी पर न डालना चाहे तो वह अपने मृत्यु संस्कार के लिए सारी आवश्यक सामग्री व धन का प्रबंध अपने जीवन-काल में ही कर लेता है।

शुगुरोटी : (ला.) दे. शुगुलामा।

शुगुलामा : (कि.) कागज़ जलाना। मृत्यु सम्बंधी एक अनुष्ठान, जो ऊपरी किन्नौर में 'छंटचामो' के दिन किया जाता है। इसमें पुरोहित लामा मृत व्यक्ति का नाम एक कागज़ पर लिखकर उसे सब लोगों की उपस्थिति में अग्निसात् कर देता है। विश्वास किया जाता है कि इसके बाद आत्मा उस घर को छोड़कर चली जाती है।

लाहुल में इसे **शुगुरोटी** कहा जाता है। वहाँ पर इसके लिए लामा लोग कागज़ पर मानवाकृति बनाते हैं। उसके हाथ में एक डंडा बनाया जाता है, उस पर आ (आत्मा) लिखा जाता है। इस कागज़ को लकड़ी के एक तीर जैसी तीली पर लगाकर मंत्रोच्चारण के साथ ज़ोर-ज़ोर से मृतक का नाम पुकार कर अग्नि को अर्पित किया जाता है। इसके पीछे धारणा यह है कि उस कागज़ को आग में जला देने से आत्मा को निर्वाण प्राप्त हो जाता है।

शुदाऊ : (शि.) दे. व्योराही।

शेखर : दे. कोटङ्।

शोटवारा : (सि.) नक्षत्र या तिथि का साठ घड़ी से ऊपर होना। इसे शुभ नहीं माना जाता। इस अवधि में मृत्यु होने पर मृतक के साथ कुशा से बनाए गए उनसठ पुतले जलाए जाते हैं। लोकविश्वास के अनुसार यदि ऐसा न किया जाए तो इतने ही व्यक्तियों के मरने की आशंका रहती है।

शौर : (शि.) चिता में चौड़ाई की ओर लगाई जानेवाली लकड़ियाँ जिनकी लम्बाई ढाई हाथ होती है, शौर कहलाती हैं।

शौली शोटणा : (कु.) मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य जो 'गति' की रात को किया जाता है। इसके लिए बड़े, चावल, गेहूँ की रोटी, सूर और घी को एक बड़ी परात में चौराहे पर ले जाते हैं। तीन या पाँच की संख्या में लोग शौली यानी बिरोजायुक्त लकड़ी की मशाल और इस परात को लेकर घर के अंदर से

निकलते हैं। इनमें से एक व्यक्ति के हाथ में गूर द्वारा अभिमंत्रित सरसों दी जाती है, जो इसे रास्ते में फेंकते हुए चलता है। उसके पास एक दराट भी होता है। बाहर से इनके साथ कुछ अन्य व्यक्ति भी शामिल होते हैं। जब ये घर से निकलते हैं तो इनके पीछे झाड़ू द्वारा कूड़ा एकदम बाहर फेंककर दरवाज़ा तुरंत बंद कर दिया जाता है। ये सभी श्मशान के रास्ते में किसी चौराहे पर जाते हैं। वहाँ मृतक के परिवार से आए पुरुषों को एक पंक्ति में भूमि पर बैठाया जाता है। अब जो खाद्य सामग्री घर से लाई होती है, उसमें से सबसे पहले एक रोटी पंक्ति के प्रथम व्यक्ति के हाथ में दी जाती है, वह इसे अगले के हाथ में देता है। इसी क्रम में आगे-आगे करते हुए अंत में बैठा व्यक्ति इसे नीचे रखता है। इस तरह पाँच या सात की संख्या में रोटियाँ रखी जाती हैं। इसके पश्चात् चावल के पिंड बना कर इसी विधि से रोटी के ऊपर रखे जाते हैं। इसी प्रकार सूर, घी और बड़े भी इनके ऊपर छोड़े जाते हैं। अंत में मशाल में से आधी शौली वहाँ छोडकर ये सभी वापिस आते हैं। जिसके हाथ में सरसों होती है, वह सरसों फेंक कर अंत में चलता है।

वापसी में कुछ रास्ता तय करके ये सभी बैठकर बची हुई खाद्य सामग्री को खाते हैं। खा चुकने के बाद ये बाकी शौली यहाँ छोड़ते हैं और भूमि पर दराट से एक रेखा खींच कर घर वापिस आते हैं। घर पहुँच कर ये बाहर से आवाज़ लगाते हैं कि हम आ गये हैं, दरवाजा खोलो। तभी घर के अंदर बैठे लोगों में से एक उठता है और दरवाजा खोलकर इन सब पर सरसों फेंकता है। तभी वे सब घर में प्रवेश करते हैं। इसके बाद भविष्य में घर की सुख-समृद्धि के लिए स्थानीय धूप जलाया जाता है। घर की 'ध्याइण' परिवार के पुरुष सदस्यों, जिन्होंने इतने दिनों तक शोक में टोपी उलटी करके पहनी होती है, उन के सिर में तेल लगा कर उन्हें टोपी सीधी करके पहनाती है। सभी उपस्थित स्त्री-पुरुषों के माथे पर तिलक लगाकर उनके चरण स्पर्श करती है। इसके साथ ही शोक समाप्त समझा जाता है। इस कार्य में सबसे अधिक महत्त्व शौली फेंकने का होता है। इसलिए इस कृत्य का नाम शौली शोटणा युक्ति संगत प्रतीत होता है।

श्णंशा : (शि.) दे. गोंठ।

श्राद्ध : पितरों की प्रसन्नता के लिए श्रद्धा पूर्वक दिया जानेवाला अन्न, वस्त्रादि का दान। मृतक के चतुर्वार्षिक के बाद प्रतिवर्ष आश्विन कृष्णपक्ष

में मृतक व्यक्तियों को उनकी मृत्यु की तिथि के अनुसार तर्पण किया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस अवधि में मृतात्माएँ भूलोक पर आकर अपने वंशजों से भोजन की अपेक्षा करती हैं। पितर के निमित्त विशेषतः ब्राह्मणों को तथा अन्य व्यक्तियों को भी भोजन करवाया जाता है। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मृतक के नाम से वही भोजन कराया जाए जो उसे प्रिय हो। अधिकांश लोग खीर-पूरी तथा दही-भल्ले बनाते हैं। इस अवसर पर लहसुन, प्याज तथा मांस का प्रयोग नहीं किया जाता। जिस पितर की मृत्यु-तिथि ज्ञात न हो, उसके श्राद्धादि का विधान अंतिम श्राद्ध के दिन क़िया जाता है। इस अवधि के बीच न तो कोई शुभ कार्य किया जाता है और न ही कोई नई वस्तु, वस्त्र आदि खरीदे जाते हैं।

श्राद्धापाणा : (मं.) श्राद्ध में डालना। मृत्यु के चार वर्ष तक मृतक का पार्वण श्राद्ध नहीं किया जाता। चतुर्वार्षिकी के उपरांत पंडित से तिथि निकलवाकर उसका श्राद्ध किया जाता है। उसे श्राद्धापाणा कहते हैं। उस दिन मृतक के निमित्त ब्राह्मण को सारा सामान दिया जाता है और भोज भी कराया जाता है।

संगतेरू : (शि.) दे. दग्याहरू।

संघारू : (चं.) दे. दग्याहरू।

सड़दाबणी : (शि.) दे. गभरुवटी।

सनौणी : (ह.) शोक संदेश। जब संचार साधनों का पर्याप्त विकास नहीं था तो निकट सम्बंधियों को किसी की मृत्यु की सूचना घर-घर जा कर दी जाती थी। यह कार्य विशेषतया नाई को सौंपा जाता था। लेकिन किसी कारणवश अगर नाई यह कार्य न कर सके तो उसके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति भेजा जाता था। जो शोक-संदेश नाई सुनाता था उसे सनौणी कहते हैं।

सपिंडी मेलन : मृत्यु सम्बंधी एक कृत्य। यह मृत्यु के ग्यारहवें दिन किया जाता है। इसमें मृतक के निमित्त एक पिंड बनाया जाता है तथा तीन अन्य पिंड बनाए जाते हैं। ये तीनों पिंड मृतक की तीन पीढ़ी के पितरों के निमित्त होते हैं। मृतक के निमित्त बनाए गए पिंड को तोड़कर अन्य तीन पिंडों में मिलाया जाता है। इसका तात्पर्य यह होता है कि मृतक अब पितरों की श्रेणी में मिल गया है।

सल़ : चिता। शव को जलाने के लिए जो लकड़ियाँ चिनी जाती हैं उन्हें सल़ की संज्ञा दी जाती है। मृतक को इस पर लिटा दिया जाता है और उसका

सबसे बड़ा पुत्र चिता को आग लगाता है। मंडी में इसे **सल्हा** या **सलेहा** कहा जाता है। चिता बनाते समय उसके बीच कोई भी काँटेदार लकड़ी या झाड़ी नहीं डाली जाती। इससे परलोक में भी मृतक के मार्ग में काँटे डालने की बात एवं दुःख-दर्द, समस्याओं, उलझनों का होना समझा जाता है।

सलूई : दे. मौउथड़।

सलेहा : (मं.) दे. सल़।

सल्हा : (मं.) दे. सल़।

साज़ा गल़ाणा : (कु.) त्योहार छोड़ना। लोक में साज़ा शब्द संक्रांति व त्योहार के लिए प्रयुक्त होता है और गल़ाणा शब्द सं. की गल् धातु से व्युत्पन्न हुआ है। गल् का अर्थ ओझल होना, अंतर्धान होना, हट जाना है। अतः दोनों शब्द मिल कर एक विशेष अर्थ त्योहार त्यागना के द्योतक हैं। जब घर में किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है तो परिवारवाले उसकी मृत्यु के बाद आनेवाला पहला त्योहार छोड़ देते हैं। उस दिन इस परिवार के सभी निकट सम्बंधी अपने घर से कुछ पकवान बना कर उनके घर लाते हैं और उन्हीं के यहाँ भोजन करते हैं।

सातू-पल्ली : (शि.) मृत्यु सम्बंधी रस्म। जिस घर में किसी की मृत्यु हुई होती है, वहाँ पर क्रिया से पहले आनेवाले सम्बंधी अनाज लेकर आते हैं, जिसे सातू कहा जाता है। इसी सातू के साथ कुछ पैसे भी दिए जाते हैं, जिसे पल्ली कहते हैं। इससे एक तरह से मृतक के परिवार की सहायता हो जाती है। शोकग्रस्त परिवार द्वारा दिए गए रुपए और अनाज का पूरा हिसाब रखा जाता है।

साध : एक जाति विशेष जो मृत व्यक्ति के वस्त्र और बिस्तर आदि लेती है। शुद्धि से पहले मृतक के निमित्त किया गया दान भी इन्हीं को दिया जाता है। दे. चारज।

सिढ़ी : अरथी। यह काठ अथवा बाँस के लगभग आठ फुट लम्बे दो डंडों के बीच में बाँस की चपटियों को रस्सी से बाँध कर बनाई गई सीढ़ी-सी है। कभी-कभी सीढ़ी के स्थान पर लकड़ी के तीन तख्तों को जोड़ कर संदूक की भांति भी अरथी बनाई जाती है। इस पर कपास, तिल आदि फेंक कर सफेद रंग का कपड़ा बिछाया जाता है, जिस पर मृतक को लिटा कर दाह के लिए ले जाते हैं। इसमें दो आदमी आगे और दो पीछे, अन्य लोग

दोनों ओर कंधा लगाते हैं। अरथी में कंधा लगाना पुण्य कर्म समझा जाता है। कांगड़ा क्षेत्र में सिढ़ी की लकड़ी पर विशेष नज़र रखी जाती है। क्योंकि यह माना जाता है कि ऐसे मौके पर इस लकड़ी से कई लोग जादू-टोना कर देते हैं।

सीहड़ गुंदणी : दे. सिढ़ी।

सुंधा : (मं.) व्यक्ति की मृत्यु के दसवें दिन दीपक उठाकर, कपड़े धोकर, लिपाई-पुताई करने के बाद सम्बंधियों व गाँववालों को खिलाया जानेवाला भोजन।

सुनवाणी : (सि.) दे. गोंठ।

सेजा : शय्या। उद्यापन, विवाह, वार्षिकी, चतुवार्षिकी आदि के अवसर पर पंडित को दान में दिये जानेवाले खाट-बिस्तर आदि। सेजा दान के बगैर कोई दान नहीं लगता ऐसी मान्यता है।

सोग : शोक।

सोग भनाणा : (कां.,मं.) शोक की समाप्ति। सोग भनाणा की व्युत्पत्ति शोकभग्न से की जा सकती है। शोक-भग्न यानी शोक को तोड़ना। धर्मशांति के दिन या मुहूर्त निकलने के बाद लड़की के मायकेवाले उसके घर आ कर सोग भनाते हैं और उनकी दाल, सब्जी में हींग डालते हैं, क्योंकि मृतक के घर मृत्यु से सोग भनाणे तक दाल-सब्जी में हींग, लहसुन, प्याज़ आदि नहीं डाला जाता, छौंक नहीं लगाया जाता। हींग डालने के बाद शोक की समाप्ति समझी जाती है।

सोढ़ : क्रिया के समय दान में दिया जानेवाला सामान। इस में चारज को वस्त्र-आभूषण, शय्या, छतरी, जूते आदि दिए जाते हैं।

सोह्ला : दे. तेरहवीं।

स्यापा : दे. पिटणा।

हाक : किसी की मृत्यु पर सूचना के लिए लगाई जानेवाली आवाज़। इसे शिमला के कुछ क्षेत्रों में **धाह्** भी कहते हैं और मृत्यु-सूचना की धाह् बहुत लम्बी आवाज़ में दी जाती थी। इसे सुनते ही लोग समझ जाते थे कि किसी की मृत्यु हो गयी। ऐसी धाह् के लिए हर गाँव में विशेषतया कुशल लोगों की अलग पहचान होती थी। अब मृत्यु की सूचना दूरभाष पर ही दी जाती है।जब कोई व्यक्ति मर जाता है तो खास रिश्तेदारों को विशेषकर

धी-ध्याइण तथा बहू के मायकेवालों को इसकी सूचना आवाज़ लगा कर दी जाती रही है। जिस व्यक्ति को आवाज़ लगाने का काम सौंपा जाता है, वह ऊँचे स्थान पर खड़ा होकर, जिसे मृत्यु की सूचना देनी है, उस घर के सबसे बुजुर्ग व्यक्ति का नाम ज़ोर से पुकारता है। इस बीच में सुननेवाला चाहे सुने या न सुने, लेकिन आवाज़ लगानेवाला व्यक्ति नाम पुकारने के बाद दो बार कहता है–अमुक व्यक्ति नहीं रहा, अमुक व्यक्ति नहीं रहा। जब किसी के बेटे या पोते की मृत्यु हो जाती है और दादा या बाप अभी ज़िंदा हो तो कहा जाता कि–फलां व्यक्ति का पोत्रु या बेटा नहीं रहा। इसी तरह यदि किसी सुहागिन औरत की मृत्यु हो जाती है तो कहा जाता है कि–फलां व्यक्ति की लाड़ी नहीं रही।

जिस व्यक्ति को सूचना देने के लिए हाक या धाह् दी जाती है उसके लिए भी यह नियम है कि वह घर के भीतर से आवाज़ न सुने, बल्कि अपने घर के बाहर आ कर केवल एक बार आवाज़ सुने। लेकिन उसका उत्तर न दे। 'हाँ' तो कहे, लेकिन उसके बाद 'अच्छा जी' न कहे।

हाख ढकणा : आँख ढकना। मृत्यु होने पर रोने की एक विधि। इसके अंतर्गत घर में किसी की मृत्यु होने पर महिलाएँ आँख ढक कर रोती हैं। इसमें मृतक की पिछली बातें याद करके रोया जाता है। आँख ढक कर रोने के कारण ही इसका नाम हाख ढकणा पड़ा। मृत्यु के पश्चात् दस दिनों तक आँख ढकी जाती है।

हाखी प्रेतणी : आँखों का स्थिर होना। आँखों का खुला होकर स्थिर हो जाना आदमी के मरने की पहचान माना जाता है।

हींग चखाणा : मृत्यु सम्बंधी यह कृत्य धर्मशांति के दिन किया जाता है। यदि इस दिन न हो तो साइत देख कर अगला दिन निकाला जाता है। इस दिन बहू के मायकेवाले या तो अपने घर से हींगवाली रोटी बनाकर लाते हैं या सम्बंधित घर में आ कर बड़े और रोटी बना कर सभी परिवारवालों को खिलाते हैं। इस दिन के बाद यह परिवार लहसुन, प्याज आदि खाना आरम्भ करता है। हींग खिलाने के कारण ही इसका नाम हींग चखाणा पड़ा है।

परामर्श

एम.आर.ठाकुर, तोबदन, विद्यासागर नेगी, डॉ. ओमप्रकाश, सारस्वत, सुशील कुमार, अश्विनी कुमार गर्ग, चंचल सरोलवी, **अरुण** भारती, केशव राम शर्मा, जयदेव विद्रोही, अश्विनी कुमार, रूपेश्वरी शर्मा, सुदर्शन डोगरा, ध्यान सिंह भागटा, अमरदेव आंगीरस।

शब्द संकलन सहयोग

अमर सिंह रणपतिया, चंचल सरोलवी (चम्बा)
संसार चंद प्रभाकर, प्रवीण शर्मा (कांगड़ा)
सीतावती (ऊना)
बी.आर.मुसाफिर, अजीत दीवान (हमीरपुर)
रामलाल पाठक (बिलासपुर)
केशव चंद्र, प्रताप सिंह ठाकुर, रूपेश्वरी शर्मा (मंडी)
एम. आर. ठाकुर, दीपक शर्मा (कुल्लू)
पुष्पा शासनी (लाहुल-स्पीति)
डॉ. ओम् प्रकाश राही, लायक सिंह चौहान (सिरमौर)
नरेन्द्र अरुण (सोलन)
रवीन्द्र चौहान, नागेन्द्र शर्मा, भूपरंजन (शिमला)
विद्यासागर नेगी (किन्नौर)